मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका

एकादशम् अंक (2016–17)

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

शुष्क क्षेत्र बागवानी को समर्पित संस्थान

मुख्य ध्येय

1 शुष्क एवं अर्धशुष्क बागवानी फसलों में टिकाऊ उत्पादकता और गुणवत्ता व उपयोग बढ़ाने के लिए आधारभूत, नीतिगत और व्यावहारिक अनुसंधान करना।

2 शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र की बागवानी फसलों का 'आनुवंशिक संसाधन एवं वैज्ञानिक जानकारी' का भण्डार।

3 प्रौद्योगिकियों के प्रभावों का आकलन, तकनीकी हस्तांतरण और क्षमता संधारण।

4 शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र की फल फसलों से संबंधित प्रौद्योगिकियों की पुष्टि और समन्वित अनुसंधान।

संस्थान द्वारा शुष्क क्षेत्रीय फल व सब्जियों की विकसित उन्नत किस्में

फल	
बेर	थार सेविका, थार भुभराज, गोमा कीर्ति, थार मालती
आंवला	गोमा ऐश्वर्या
बेल	गोमा यशी, थार दिव्या, थार नीलकंठ
अनार	गोमा खट्टा (अनारदाना)
जामुन	गोमा प्रियंका, थार क्रांति
इमली	गोमा प्रतीक
लसोड़ा	थार बोल्ड
चिरोंजी	थार प्रिया
खिरनी	थार रितुराज
करोंदा	थार कमल
शहतूत	थार लोहित, थार हरित
महुवा	थार मधु
फालसा	थार प्रगति
सब्जियां	
मतीरा	एएचडब्लू–19, एएचडब्लू–65, थार माणक
लौकी	थार समृद्धि
काचरी	एएचके–119, एएचके–200
फूटककड़ी (स्नेपमेलोन)	एएचएस–10, एएचएस–82
ककड़ी	एएचसी–2, एएचसी–13
खेजड़ी	थार शोभा
ग्वारफली	गोमा मंजरी, थार भादवी (एएचजी–13)
स्वार्डबीन	थार माही
सेम फली	थार कार्तिकी, थार माघी
तोरई	थार करणी

उन्नत प्रजातियों के बीज व पौधों हेतु सम्पर्क करें–

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर–334006
दूरभाष– 0151–2250960 फेक्स– 0151–2250145 ई–मेल ciah@nic.in, वेब ciah.ernet.in

मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका

एकादशम् अंक (2016–17)

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)

एकादशम् अंक

वर्ष 2016–17

प्रकाशक

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज

निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीकानेर–334006 (राज.)

दूरभाषः 0151–2250147, 2250960 फैक्सः 0151.2250145

ई–मेलः ciah@nic.in

वेबसाईटः www.ciah.ernet.in

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज

सह–सम्पादक

डॉ. राकेश भार्गव

डॉ. आर. एस. सिंह

डॉ. हरेकृष्ण

डॉ. एस.एम.हलधर

डॉ. मुकेश बेरवाल

प्रेम प्रकाश पारीक

परिकल्पना/छायांकन

श्री संजय पाटिल

प्रारुपण एवं मुद्रण

मै. रॉयल ऑफसेट प्रिन्टर्स, ए–89/1, नारायणा औद्योगिक क्षेत्र, फेस–1, नई दिल्ली–110028

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।

अनुक्रमणिका

क्र सं.	विषय	पृष्ठ सं.
	राजभाषा खण्ड	
1.	भारत सरकार की राजभाषा नीति और कार्यान्वयन –श्रीमती सीमा चोपड़ा	3
2.	हम और हमारी हिंदी –डॉ. उषा किरण सोनी	7
3.	हिंदी कार्यशाला क्यों और कैसे –प्रेम प्रकाश पारीक	9
4.	संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की संक्षिप्त रिपोर्ट	12
5.	कविताए –डॉ. उषा किरण सोनी	14
	बागवानी अनुसंधान	
6.	भारत में शुष्क बागवानी : एक परिदृश्य –प्रो. पी. एल. सरोज	17
7.	शुष्क बागवानी द्वारा किसानों की आय दोगुनी करना –प्रो. पी. एल. सरोज, डॉ. आर एस सिंह, डॉ आर.के. मीना	23
8.	शुष्क क्षेत्र में खजूर की खेती – डॉ. आर. एस. सिंह एवं डॉ. रामकेश मीना	27
9.	बेल की उन्नत बागवानी –डॉ. ए. के. सिंह, डॉ. संजय सिंह, डॉ विकास यादव, प्रो. पी.एल..सरोज	31
10.	जामुन की खेती – डॉ. संजय सिंह, डॉ. डी. एस. मिश्रा, डॉ. ए. के. सिंह	37
11.	शुष्क क्षेत्रों में अनार की खेती –डॉ. रमेश कुमार, डॉ. रामकेश मीना, डॉ. बी. डी. शर्मा	39
12.	शुष्क फल वृक्षों की उन्नत पौध कैसे तैयार करें ? –डॉ. डी. के. सरोलिया, डॉ बी. आर. चौधरी	45
13.	फल वृक्षों के साथ अंतरसस्य से अधिक लाभ अर्जित करें –डॉ. हरे कृष्ण प्रो. पी. एल. सरोज, लोकेश कुमार	47
14.	पोषणता से भरपूर शहतूत –डॉ. धुरेन्द्र सिंह, डॉ. हरे कृष्ण, डॉ. कमलेश कुमार, प्रो. पी. एल. सरोज	52
15.	खेजड़ी आधारित बागवानी फसल उत्पादन प्रणाली –डॉ. दिलीप कुमार समादिया	55
16.	शुष्क क्षेत्रों में लो–टनल तकनीक से कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती –डॉ. बी.आर. चौधरी, डॉ. ए.के. वर्मा, डॉ. धुरेन्द्र सिंह	63
17.	पोषक तत्व समृद्ध एवं औषधीय महत्व की फसल कैक्टस पियर –कमलेश कुमार, धुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	67
18.	शुष्क क्षेत्रीय सब्जी फसल बीज उत्पादनः एक परिचय –डॉ. डी. के. समादिया, डॉ. एस. एम. हलधर, डॉ ए.के. वर्मा	73

क्र सं.	विषय	पृष्ठ सं.
19.	गर्म शुष्क क्षेत्र की व्यावसायिक फसल–काचरी –शिव राम मीना एवं दिलीप कुमार समादिया	77
	पादप संरक्षण एवं विकसित तकनीक	
20.	शुष्क फल व सब्जियों में प्रमुख कीट और व्याधि तथा उनकी रोकथाम –डॉ. एस.के. माहेश्वरी, डॉ. एस.एम. हलधर	83
21.	बागवानी फसलों में लघु सिंचाई द्वारा उर्वरक प्रबंधन –डॉ. बी. डी. शर्मा, रविकांत स्वामी	91
22.	स्वास्थ्यवर्धक आंवला आधारित मुखवास –डॉ. वी. आर. रेड्डी एस., डॉ आर.के. मीना, डॉ. डी. के. सरोलिया	95
	विविध	
23.	सॉयल हैल्थ कार्ड : कृषि क्रांति के लिये वरदान –डॉ. अनिता मीना, डॉ. एम.के. जाटव, आर.सी. बलाई, डॉ. बी.डी. शर्मा	99
24.	किसानों का संबल : कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल –डॉ. के. लता, डॉ. जे एस जादव, डॉ. बी.एस. खद्दा, डॉ. ए.के. रॉय, डॉ. राजकुमार, डॉ. एस. खजूरिया	106
25.	गंगरेनः शुष्क मरुस्थल की बहुउपयोगी झाड़ी –डॉ. जे.पी. सिंह, डॉ. वेंकटेशन के., डॉ. महाराज सिंह, डॉ. डी. सिंह	110
27.	शुष्क बागवानी के विकास में प्रसार गतिविधियां – डॉ. एस.आर. मीना	113
28.	स्वच्छ भारत अभियान एवं भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान का योगदान –रामदीन	118

सत्यमेव जयते

CHHABILENDRA ROUL

छबिलेन्द्र राउल

ADDITIONAL SECRETARY, DARE &
SECRETARY, ICAR

अपर सचिव, डेयर एवं सचिव, आई.सी.ए.आर.

भारत सरकार
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग
कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001

GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH AND EDUCATION
KRISHI BHAWAN, NEW DELHI-110001

संदेश

राजभाषा हिन्दी की प्रगति को बढ़ाने के क्रम में भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन कर रहा है। यह पत्रिका शुष्क बागवानी फसलों की सूचनाओं को राजभाषा हिन्दी के माध्यम से किसानों एवं आमजनों तक पहुँचाने का कार्य करती है। मैं आशा करता हूँ कि इसका यह अंक भी पाठकों को रुचिकर लगेगा।

राजभाषा के प्रचार–प्रसार के लिए संस्थान के मुख्य उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर निकाली गयी यह पत्रिका अपने योगदान में सफल रहे ऐसी कामना करता हूँ।

छ. राऊल

(छबिलेन्द्र राऊल)

डॉ. आनन्द कुमार सिंह
उप महानिदेशक (बागवानी विज्ञान)
बागवानी विज्ञान संभाग
Dr. Anand Kumar Singh
Deputy Director General (Hort. Sci.)
Horticultural Science Division

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन–II
पूसा, नई दिल्ली –110 012
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAWAN-II
PUSA, NEW DELHI-110 012
दूरभाष सं.: 91-11-25841976, फैक्स न.: 91-11-25841976
Ph.: 91-11-25842068(O), Fax: 91-11-25841976
E-mail: ddghort@gmail.com; aksingh36@yahoo.com

संदेश

अपनी भाषा में बात करना और लिखना दोनों अधिक सरल हैं। भारत एक बहुभाषी देश है और प्रत्येक प्रांत की अपनी एक राज्यभाषा है। इन सभी प्रांतीय भाषाओं के रहते हुए भारत में हिंदी इन सभी प्रातों के मध्य एक संपर्क भाषा के रूप में प्रचलित है। हिंदी आज वैश्विक स्तर पर भारत देश की पहचान है और इसको लिखने व पढ़ने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

आज यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि हिंदी भाषा का प्रयोग अब जनसाधारण की दैनिक आवश्यकता बन चुका है और इसके प्रयोग के बिना आज का ज्ञान–विज्ञान पूर्ण नहीं होता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के संस्थानों में हिंदी की प्रगति और उसका प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह पत्रिका उसी प्रगति की परिणति है। केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर की राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' की गुणवता और विषय–सामग्री में उत्तरोत्तर सुधार हुआ हैं। गर्म शुष्क क्षेत्रों के किसानों को शुष्क बागवानी के प्रति यह पत्रिका रूचि उत्पन्न करती प्रतीत होती है और शुष्क बागवानी में हो रहे अनुसंधानपरक तकनीकों को उन तक पहुँचाने एवं किसानों की आय में वृद्धि करने में इस पत्रिका की अहम् भूमिका हो सकती है।

मैं, इसके एकादशम् अंक के प्रकाशन के लिये संस्थान को बधाई और लेखकों को अपनी शुभकामनाएं देता हूँ।

(आनन्द कुमार सिंह)

सीमा चोपड़ा
Seema Chopra

निदेशक (राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि भवन, नई दिल्ली–110011

DIRECTOR (Official Language)
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI BHAWAN, NEW DELHI-110 011

संदेश

कृषि अनुसंधानों द्वारा विकसित तकनीकियां कृषकों तक पहुंचना हमेशा बड़ी चुनौती रही है। अतः ऐसे प्रयास किए जाने जरूरी हैं जिससे कि विकसित कृषि तकनीकियां उचित माध्यम से कृषकों तक पहुंचे ताकि वे इससे अधिक लाभ अर्जित कर सकें। संस्थान द्वारा निकाले जाने वाले प्रकाशन ऐसे प्रयासों की श्रृंखला की एक कड़ी है। यह हर्ष का विषय है कि भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' का प्रकाशन नियमित रूप से किया जा रहा है।

मरु बागवानी पत्रिका में प्रकाशित लेख कृषकों एवं अनुसंधानकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि संस्थान अपने नियमित अनुसंधान कार्यों के अतिरिक्त राजभाषा को प्रोत्साहित एवं उसके कार्यान्वयन में अपने दायित्वों का भली–भांति पालन करता रहेगा।

मैं, पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करती हूँ और आशा करती हूँ कि भविष्य में भी इसी तरह के प्रकाशन किए जाएंगे।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

(सीमा चोपड़ा)

प्रो. (डॉ.) पी. एल. सरोज
निदेशक

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)
ई मेलः ciah@nic.in
दूरभाषः 0151 2250147 फैक्सः 0151–2250145

संदेश

हिंदी की प्रगति का जितना महत्व कार्यालयीन कामकाज में है, उससे कहीं अधिक महत्व कृषि अनुसंधान कार्य के प्रसारण में है। संस्थान द्वारा कई वर्षों से राजभाषा हिन्दी में ''मरु बागवाणी'' नामक एक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका न केवल राजभाषा हिंदी को बढ़ावा देने हेतु एक कदम है अपितु शुष्क बागवानी फसलों के तकनीकी नवान्वेषों को जन साधारण तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम भी बनती जा रही है। हिंदी में कृषि के अनुसंधान को व्यक्त करना कठिन है, परन्तु यदि निरन्तर इस दिशा में प्रयास करते रहें तो यह अत्यंत ही सरल हो जाता है तथा इससे दूसरों को भी हिंदी में अपनी बात कहने की प्रेरणा मिलती है। राजभाषा का प्रयोग एक संवैधानिक दायित्व है जिसका पालन करना हम सभी की जिम्मेदारी है। अंक दर अंक इस पत्रिका में प्रकाशित हो रहे लेखों की गुणवत्ता में बदलाव व सुधार किया जाता रहा है।

बागवानी फसलों के अनुसंधान की विभिन्न तकनीकियों की बारीकियों को इसके लेखों में स्थान दिया गया है। आप सभी सुधी पाठकगणों से इसकी गुणवत्ता को संवारने में योगदान की अपेक्षा निरंतर रहेगी। राजभाषा पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन हेतु मैं संस्थान को बधाई देते हुए इसमें सहयोगी अधिकारियों/कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ ।

शुभकामनाओं के साथ।

पी.एल.सरोज

(पी. एल. सरोज)

राजभाषा खण्ड

भारत सरकार की राजभाषा नीति और कार्यान्वयन

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है और किसी भी प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उस देश का राजकाज जनता की भाषा में हो। भारत में कई भाषाएं बोली जाती हैं जिनमें से 22 भारतीय भाषाओं को संविधान में मान्यता दी गई है। भारत की संविधान सभा ने 14.9. 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकारा है क्योंकि यह देश के अधिकांश वर्ग द्वारा बोली व समझी जाती है। इसके साथ भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं।

संविधान के तीन भागों–5, 6 और 17 के कुल 11 अनुच्छेदों में राजभाषा से संबंधित प्रावधानों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भाग 5 के अनुच्छेद 120 में संसद में प्रयोग की भाषा तथा भाग 6 के अनुच्छेद 210 में विधान मण्डलों में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में निर्देश दिए गए हैं। जबकि भाग 17 में संघ की राजभाषा उच्च न्यायालयों की और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा और हिन्दी के विकास के लिए निर्देशों का उल्लेख किया गया है।

अनुच्छेद–120

इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गई है कि संसद का कार्य हिन्दी अथवा अंग्रेजी में किया जायेगा। जो सांसद हिन्दी अथवा अंग्रेजी में अपने विचार नहीं व्यक्त कर सकते हैं वे लोक सभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा के सभापति की अनुमति से अपनी मातृभाषा में अपने विचार सदन में रख सकते हैं।

अनुच्छेद–210

यह व्यवस्था की गई है कि राज्य के विधान मण्डल का कामकाज उस राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं अथवा हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाएगा। परन्तु यदि कोई सदस्य उपर्युक्त सभी भाषाओं में से किसी भी भाषा में अपने विचार प्रस्तुत नहीं कर सकते हों, उन्हें विधान सभा अध्यक्ष या विधान परिषद के सभापति द्वारा अपनी मातृभाषा में अपने विचार सदन में रखने की अनुमति प्रदान की जा सकती है।

अनुच्छेद 343 संघ की राजभाषा।

अनुच्छेद 343(1) के अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा होगी और इसकी लिपि देवनागरी होगी।

अनुच्छेद 343(2) के अनुसार संविधान लागू होने के 15 वर्ष की अवधि तक अर्थात 25 जनवरी, 1965 तक संघ सरकार के कार्यों में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था की गई थी।

अनुच्छेद 343(3) में संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह अधिनियम पारित करके 26 जनवरी, 1965 के बाद भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के बारे में व्यवस्था कर सके। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए राजभाषा अधिनियम 1963 पारित किया गया, जिसे 1967 में संशोधित किया गया। तत्पश्चात राजभाषा अधिनियम के अधीन राजभाषा नियम वर्ष 1976 में बनाए गए।

अनुच्छेद–344

राजभाषा आयोग एवं संसदीय राजभाषा समिति। राष्ट्रपति महोदय द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्यों में से आयोग का गठन किया जाएगा जो कि राजभाषा विषयक विभिन्न पक्षों के संबंध में अपनी सिफारिश देगा। राजभाषा आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशों की समीक्षा करने के लिए 30 सदस्यीय संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया जाएगा जिसमें 20 लोकसभा के और 10 राज्य सभा के सदस्य होगें।

अनुच्छेद–345

यह व्यवस्था की गई है कि राज्य का विधान मंडल कानून बनाकर उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक अथवा अधिक भाषाओं को या हिन्दी को उस राज्य के सभी या कुछ खास प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा अर्थात उस राज्य की भाषा के रूप में अंगीकार कर सकेगा।

अनुच्छेद–350

यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यक्ति संघ या राज्य सरकार के पदाधिकारी को संघ या उस राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अपना अभिवेदन दे सकता है।

संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल की गई भाषाए:

1. असमिया	2. उड़िया	3. उर्दू
4. कन्नड़	5. कश्मीरी	6. गुजराती
7. तमिल	8. तेलगु	9. पंजाबी
10. बंगला	11. मराठी	12. मलयालम
13. संस्कृत	14. सिंधी	15. हिन्दी
16. नेपाली	17. कोंकणी	18. मणिपुरी
19 डोगरी	20 मैथली	21 बोडो और
22 संथाली।		

राजभाषा अधिनियम 1963

पन्द्रह वर्ष की अवधि के दौरान केन्द्रीय सरकार के कार्य प्रणाली में हिन्दी के प्रयोग के लिए सभी व्यवस्थाएं की जानी थीं। संवैधानिक व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिए संसद ने 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया जिसे राजभाषा अधिनियम 1963 कहा जाता है। इसके अंतर्गत 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को भी संविधान सम्मत बनाए रखा गया। 1967 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और कुछ विशिष्ट कार्यों में हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी का प्रयोग भी रखा गया जिसे 1963 की धारा 3(3) कहा जाता है जिसमें निम्नलिखित 13 कागजात शामिल हैं :–

1. संकल्प (Resolution)
2. अधिसूचना (Notification)
3. सामान्य आदेश (General Orders)
4. नियम (Rules)
5. प्रशासनिक एवं अन्य रिपोर्ट (Administrative other reports)
6. प्रेस विज्ञाप्तियां (Press release)
7. संविदाएं (Contract)
8. एग्रीमैंटस (aAgreements)
9. परमिट (Permit)
10. लाइसेंस (Licence)
11. टेंडर नोटिस (Tender Notice)
12. टैंडर फार्म (Tender Forms)
13. संसद के सदन या दोनों सदनों में प्रस्तुत प्रशासनिक या अन्य रिपोर्टें।

सामान्य आदेशों में सभी प्रकार के आदेश विभागीय प्रयोग वाले या स्थाई प्रकार के निर्णय, कर्मचारियों के लिए सभी आदेश, अनुदेश, पत्र, ज्ञापन, नोटिस, विभागीय प्रयोग या सरकारी कर्मचारियों के लिए सभी परिपत्र शामिल हैं।

राजभाषा नियम 1976

1976 में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गए जिन्हें राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम 1976 कहा जाता है। ये नियम तमिलनाडु राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू हैं। इसके तहत कुल 12 नियम बनाये गए हैं।

नियम–1: राजभाषा संबंधी संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ।

नियम–2: राजभाषा से संबंधित सभी परिभाषाएं इसमें शामिल की गई हैं।

नियम–3 और **नियम 4:** केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से क, ख, और ग क्षेत्र में स्थित राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से तथा राज्यों और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों से पत्राचार किस भाषा में किया जाएगा।

'क' क्षेत्र: हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली एवं अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह

'ख' क्षेत्र: महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब और चण्डीगढ़

'ग' क्षेत्र: उपर्युक्त राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्य तथा संघ शासित क्षेत्र

नियम–5 हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर: नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे।

नियम–6 हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग: अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में तैयार किए जाएं, निष्पादित किए जाएं और जारी किए जाएं।

नियम 7: के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी कर्मचारी अपना आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में प्रस्तुत कर सकता है। हिन्दी में हस्ताक्षरित आवेदन, अपील या अभ्यावेदन का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाएगा।

नियम 8: यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसे उस कर्मचारी पर लागू किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसी भाषा में उपलब्ध करवाई जाएगी। इस नियम में यह भी प्रावधान है कि केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है हिन्दी के किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का हो। कौन सा दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है इसका निर्णय विभाग या कार्यालय प्रमुख द्वारा किया जाएगा।

नियम 8(4): के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि जिन कार्यालयों को भारत सरकार के गजट में नियम 10(4) के अंतर्गत हिन्दी कार्यालय के रूप में अधिसूचित किया जा चुका है उन कार्यालयों के प्रवीणता प्राप्त अधिकारियों/कर्मचारियों को अपना समस्त प्रशासनिक कार्य अर्थात नोटिंग और ड्राफटिंग हिन्दी में ही करने के लिए व्यक्तिशः आदेश जारी किया जाए।

नियम 9 हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त : किसी भी कर्मचारी/अधिकारी के बारे में समझा जाएगा कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है यदि उसनेः–

- मैट्रिक परीक्षा या उसके समकक्ष या उससे उच्चतम कोई परीक्षा हिन्दी को माध्यम के रूप में अपनाकर उत्तीर्ण की है; अथवा
- स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा के समकक्ष या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को उसने एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया था, अथवा
- यदि वह प्रोफार्मा में यह घोषणा करता है कि उसे प्रवीणता प्राप्त है।

नियम 10 हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान

- किसी कर्मचारी के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, यदि उसनेः–
- मैट्रिक परीक्षा या उसके समकक्ष या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण की है; अथवा
- केन्द्रीय सरकार की हिन्दी शिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट वर्ग के पदों के संबंध में निर्धारित निम्नस्तर परीक्षा उत्तीर्ण की हैं; अथवा
- केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित विनिर्धारित कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या
- यदि वह प्रोफार्मा में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

नियम 10(4) में यह व्यवस्था है कि जिन कार्यालयों के 80 प्रतिशत या उससे अधिक अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है उन्हें भारत सरकार के राजपत्र (गजट) में अधिसूचित किया जाएगा।

नियम 11 मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि

- केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषी रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।
- केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के शीर्ष और शीर्ष नाम हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।
- केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगीः
- परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा आवश्यक समझती है तो वह साधारण या विशेष आदेश द्वारा केन्द्र सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

नियम 12 अनुपालन का उत्तरदायित्व

(1) केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वहः–

- यह सुनिश्चित करें कि अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए

गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है और;

- इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करें।

(2) केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक् अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय–समय पर आवश्यक निर्देश जारी कर सकती है।

- राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी किए वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार हिन्दी में पत्राचार किया जाना चाहिए। वर्ष 2017–18 के वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार लक्ष्य निम्न प्रकार हैं :
- हिन्दी में मूल पत्राचार 'क' क्षेत्र
  1. 'क' से 'क' क्षेत्र के साथ – 100 प्रतिशत
  2. 'क' से 'ख' क्षेत्र के साथ – 100 प्रतिशत
  3. 'क' से 'ग' क्षेत्र के साथ – 65 प्रतिशत
- हिन्दी में मूल पत्राचार 'ख' क्षेत्र
  1. 'ख' से 'क' क्षेत्र के साथ – 90 प्रतिशत
  2. 'ख' से 'ख' क्षेत्र के साथ – 90 प्रतिशत
  3. 'ख' से 'ग' क्षेत्र के साथ – 55 प्रतिशत
- हिन्दी में मूल पत्राचार 'ग' क्षेत्र
  1. 'ग' से 'क' क्षेत्र के साथ – 55 प्रतिशत
  2. 'ग' से 'ख' क्षेत्र के साथ – 55 प्रतिशत
  3. 'ग' से 'ग' क्षेत्र के साथ – 55 प्रतिशत
- हिन्दी में टिप्पण
  1. 'क' क्षेत्र – 75 प्रतिशत
  2. 'ख' क्षेत्र – 50 प्रतिशत
  3. 'ग' क्षेत्र – 30 प्रतिशत
- **हिन्दी प्रशिक्षण (भाषा, टंकण, आशुलिपि)**

  – 100 प्रतिशत
- सभी प्रकार के विज्ञापनों को हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाए तथा हिंदी में विज्ञापनों पर राशि अंग्रेजी के बराबर होनी चाहिए।
- कार्यालय के प्रयोग में लाए जाने वाले कोड/मैनुअल द्विभाषी रूप में खरीदे जाएं तथा यदि कार्यालय का अपना कोई कोड/मैनुअल है तो उसे अंग्रेजी के साथ साथ हिंदी में भी तैयार करवाया जाए। इनके अनुवाद हेतु केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की सहायता ली जा सकती है।
- सभी संस्थानों की वेबसाइट अनिवार्य रूप से (हिन्दी और अंग्रेजी में) द्विभाषी और अद्यतन होनी चाहिए।
- सभी प्रकार के नागरिक चार्ट तथा जन सूचना बोर्डों का प्रदर्शन (हिन्दी और अंग्रेजी में) द्विभाषी रूप में किया जाना चाहिए।
- कार्यालय के सभी साईनबोर्ड, नामपट्ट, सूचना पट्ट, मोहरें, रजिस्टरों के शीर्षक, पत्रशीर्ष आदि अनिवार्य रूप से द्विभाषी/त्रिभाषी रूप में बनवाए जाएं।
- प्रत्येक संस्थान द्वारा पुस्तकालय के लिए आबंटित किए गए कुल बजट में से 50 प्रतिशत राशि हिन्दी पुस्तकों की खरीद की जाए। इसमें संदर्भ ग्रंथों तथा अनुसंधान पत्रिकाओं को छूट प्राप्त है।

हिन्दी भाषा का ज्ञान राजभाषा कार्यान्वयन का आधार है। अतः सभी प्रकार के प्रशिक्षणों में हिन्दी भाषा के प्रशिक्षण का भी एक सत्र आवश्यक रूप से रखा जाना चाहिए। संसदीय राजभाषा समिति आपके संस्थान का राजभाषा निरीक्षण कर सकती है। अतः जब भी निरीक्षण हो, राजभाषा विभाग की वैबसाइट (www.rajbhasha.nic.in) से संसदीय राजभाषा समिति की निरीक्षण प्रश्नावली को डाउनलोड कर उसे स्पष्ट, संगत और सही रूप में प्रस्तुत किया जाए।

सीमा चोपड़ा
निदेशक (राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि भवन, नई दिल्ली

हम और हमारी हिंदी

मनोभावों और विचारों के आदान प्रदान के माध्यम या साधन को भाषा कहते हैं, जो मुख से निकलने वाले ध्वनि संकेतों की व्यवस्थित व सार्थक अभिव्यक्ति है। इन ध्वनियों को निश्चित किए गए चिह्नों अर्थात लिपि द्वारा स्थायित्व प्रदान किया जाता है। भाषा बनाने से नहीं बनती, इसका विकास जनता व भाषाविदों द्वारा सामान्य रूप से होता है।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन में दो भाषाओं से सामना होता है–मातृभाषा और राष्ट्रभाषा। उसका प्रथम परिचय मातृभाषा से होता है जिसमें वह परिवार व आस–पास के समाज से आदेश–अनुदेश प्राप्त करता है और अपनी इच्छाएं व जिज्ञासाएं शांत करता है। दूसरी है राष्ट्रभाषा, जिसका राष्ट्र के समस्त निवासी संपर्क करने के लिए प्रयोग करते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व जन–जन के हृदय में अलख जगाने और पूरे देश को एक सूत्र में बांधने का कार्य हिंदी ने किया था, अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत संपर्क भाषा के रूप में पनपी हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा बनी, उस काल में हिंदी का प्रबल पक्ष लेने वाले और हिंदी आंदोलन चलाने वाले अधिकांश देशभक्त अहिंदी भाषी थे। इनमें मुख्य थे– नेताजी सुभाषचंद्र बोस, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, काका कालेलकर और राजगोपालाचारी। लोकतंत्र की स्थापना, शिक्षा के प्रचार–प्रसार और मुद्रणकला के आविष्कार से खड़ी बोली के रूप में हिंदी विकसित तथा मानक रूप में प्रतिष्ठित हुई। श्रेष्ठ साहित्य रचा गया और 14 सितम्बर, 1949 को हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई। सन् 1953 से हिंदी दिवस मनाना प्रारंभ हुआ। मुख्य रूप से पारसी व आर्यों के मिलाप से हिंदी का जन्म हुआ था।

तकनीकी विकास के कारण कम्प्यूटर जैसे उपकरणों द्वारा लेखन व लिखित प्राचीन साहित्य का संरक्षण संभव और सहज हो गया है। इंटरनेट द्वारा पुस्तकों, आलेखों व शोधपत्रों को विश्वभर में कहीं भी, कभी भी भेजना व पाना सुविधाजनक हो गया है। प्राचीनतम व नवीनतक अनुसंधानों के विवरण आसानी से मिल जाते हैं। केवल हिंदी जानने वाला व्यक्ति भी, यदि मूलभूत सिद्धांतों व तकनीकी शब्दावली से परिचित है तो वह, सरलता से विषय को समझ सकता है। उसे अपने खोजपरक दृष्टिकोण का विकास करना होगा।

यहां यह उल्लेख समीचीन है कि साधारण बोलचाल की भाषा से बाजार की भाषा, भाषण की भाषा से शिक्षण की भाषा और साहित्य की भाषा से कामकाज (विशेषकर सरकारी) की भाषा भिन्न होती है। शिक्षण, साहित्य और राजकीय कामकाजी भाषा के शब्दों के सटीक अर्थ एवं व्याकरण सम्मत प्रयोग का विशेष महत्व होता है। यह पूर्णतया वैज्ञानिक भाषा है। बाएं से दाएं लिखी–पढ़ी जाती है। जो बोला जाता है वही लिखा जाता है।

आज विश्वपटल पर दूसरी सबसे बड़ी विश्वभाषा के रूप में स्थापित है हमारी हिंदी। पहली है मंडरिन (चीनी)। अंग्रेजी का तीसरा स्थान आता है। संसार में हिंदी भाषियों की संख्या लगभग 60 करोड़ (भारत के अलावा) आंकी गयी है। एशिया में नेपाल, भूटान, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, रूस, चीन, यूरोप में फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, नीदरलैंड, आदि, उ. अमरीका में संयुक्त राज्य अमरीका, कनाड़ा, कैलिफोर्निया, आदि, द. अमरीका में गुयाना, कोलंबिया, सूरीनाम, आदि, अफ्रिका में घाना, नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रिका, त्रिनीदाद, आदि तथा आस्ट्रेलिया में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, आदि अर्थात संसार के सभी महाद्वीपों में हिंदी भाषा–भाषी बड़ी संख्या में हैं और इनी संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। खाड़ी देशों में अरब और कतर में बहुत से हिंदी भाषा निवास करते हैं।

प्रसार के प्रमुख कारण

हिंदी के बढ़ते दायरे के बहुत से कारण गिनाये जा सकते हैं। यहां कुछ प्रभावशाली कारणों की विवेचना करेंगेः–

1. शिक्षा पाने व देने के लिये छात्रों व विद्वानों का विभिन्न देशों में जाना और वहां की नागरिकता लेकर वहीं बस जाना।
2. काम की तलाश में खाड़ी देशों व समृद्ध देशों में मजदूरों का जाना व ले जाया जाना। विशेषकर गिरमिटिया मज़दूरों का मारीशस व सूरीनाम जाना।
3. हिंदी फिल्में, उनके गीत–संगीत तथा हिंदी चैनल। ब्रिटेन, सं.रा. अमरीका, कनाड़ा, नीदरलैंड, आदि देशों में हिंदी फिल्में ही चलती हैं। विदेशों में भी राजकपूर, नरगिस, दिलीपकुमार, अभिताभ बच्चन, देवानंद, शाहरूख खान, आदि फिल्म कलाकारों को

बहुत पसंद किया जाता है। इनके अलावा ऐश्वर्या राय, प्रियंका चौपड़ा, आदि महिला कलाकारों को भी बहुत पसंद किया जाता है। बी.बी.सी, रेडियो सिलोन, डिस्कवरी, स्टार जैसे रेडियो व दूरदर्शन के चैनलों से भी हिंदी कार्यक्रम पूरे विश्व में प्रसारित किये जाते हैं। संसार भरके मैडम तुसाद संग्रहालयों में लगे अभिनेताओं के पुतले भी हिंदी फिल्मों यानी हिंदी भाषा को बढ़ावा देते हैं।

हिंदी भाषियों के साथ भारतीय संस्कृति भी इन देशों में पहूँची अतः–

1) उन्नीसवीं शताब्दी से ही अनेक देशों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन प्रारंभ हो चुका था। आज 218 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जाती है।

2) अनुवाद कार्य ने महान कार्य किया – सूरपद, कबीर, तुलसी मानस, नंददास, प्रेमचंद, यशपाल, अज्ञेय, मुक्तिबोध, विष्णु प्रभाकर, आदि की कृतियां अनुवादित हुई।

3) अब तक हुए 10 विश्व हिंदी सम्मेलनों में से सात विदेशों में हुए जिनमें से न्यूयार्क (2007) तथा सूरीनाम (2003) के सम्मेलन बहुचर्चित रहे। विदेशों में हुए अन्य सम्मेलन मारीशस (1976, 1993), त्रिनिदाद व टुबैगो (1996), लंदन(1999) तथा जोहंसबर्ग (2012) हैं। शेष तीन सम्मेलन भारत में नागपुर (1975), दिल्ली (1983) तथा भोपाल (2015) हुए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा को पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा पहली बार हिंदी में संबोधित कर भाषण देना एक सशक्त कदम था। आज भी संयुक्त राष्ट्र संघ में कार्यरत (आरएएनए) राजस्थान एसोसिएशन आफ नार्थ अमेरिका की सेवाएं हिंदी की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा रही हैं।

डॉ. (श्रीमती) उषा किरण सोनी
ज्ञानकुंज, 307, गांधीनगर, लालगढ़– बीकानेर

हिन्दी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है
जिसने मात्र विदेशी होने के कारण
किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया

–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, भारत के प्रथम राष्ट्रपति

हिंदी कार्यशाला क्यों और कैसे?

भूमिका

संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा देवनागरी में लिखित हिंदी है। इसी के अनुसार राजभाषा हिंदी में कार्य करना और करवाना दोनों हमारे संवैधानिक दायित्व के दायरे में आते हैं। संविधान में जो प्रावधान राजभाषा के लिये बनाये गये थे उनमें समय–समय पर विभिन्न संशोधन किये गये और इन्हीं संशोधनों में एक राजभाषा अधिनियम वर्ष 1967 में संसद द्वारा पारित किया गया था। दिसम्बर 1967 में संसद के दोनों सदनों ने जो भाषा संबंधी संकल्प पारित किया था उसमें भारत सरकार से अपेक्षा रखी गयी थी कि वह संघ के राजकार्य के लिए हिंदी के प्रयोग हेतु एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार करे और उसे कार्यान्वन में लाने के प्रयास करे। इसलिये ही विभिन्न सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिये केन्द्र सरकार द्वारा निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं।

राजभाषा की निरंतर प्रगति के लिये कार्यशालाएं आयोजित करने की बात सर्वप्रथम 5 सितम्बर 1969 को आयोजित संयुक्त सचिवों की समन्वय समिति की बैठक में रखा गया था। समिति की सिफारिश के आधार पर गृह, विदेश, रेल, शिक्षा, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालयों तथा डाक विभाग में कार्यशालाएं शुरू करने का प्रस्ताव पारित किया गया था। दिनांक 28 दिसम्बर, 1969 को हिंदी सलाहकार, भारत सरकार की अध्यक्षता में आयोजित बैठक में कार्यशालाओं के आयोजन की विस्तृत रूपरेखा तैयार की गयी और ऊपर दर्शाए गये मंत्रालयों में से विदेश मंत्रालय को छोड़कर बाकी में फरवरी 1970 से कार्यशालाएं आरंभ की गयीं। आरंभ में इन कार्यशालाओं में हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया गया। कार्यशालाओं के आयोजन में आरंभिक रूप से जो कठिनाईयां सामने आयी उनके निवारण के लिये दिसम्बर 1970 में एक उच्चस्तरीय बैठक का आयोजन किया गया। इन सभी बातों पर विचार करते हुए गृह मंत्रालय ने अपने 11 मार्च 1971 के कार्यालय ज्ञापन के द्वारा भारत सरकार के सभी मंत्रालयों / विभागों को निर्देशित करते हुए हिंदी में काम करने वाले कर्मचारियों की सहायता के लिये हिंदी कार्यशालाओं के आयोजन हेतु लिखा। यह ज्ञापन केवल दिल्ली में स्थिति कार्यालयों के लिये ही जारी किया गया था।

दिनांक 23 नवम्बर, 1972 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में हिंदी सलाहकार समिति की बैठका का आयोजन किया गया था। बैठक में तय किया गया कि दिल्ली के बाहर स्थित केन्द्रीय कार्यालयों में भी हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। गृह मंत्रालय ने इस आधार पर दिनांक 01 अक्टूबर, 1973 को अपने आदेश में सभी मंत्रालयों/विभागों को निर्देश दिया कि उनके अधीन सभी हिंदी भाषी राज्यों के कार्यालयों में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाए। राजभाषा विभाग के वर्गीकरण के आधार पर 'ख' क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय कार्यालयों के लिये 06 जुलाई 1974 को जारी कार्यालय ज्ञापन में हिंदी कार्यशालाएं आयोजित करने के निर्देश दिये गये थे। इसके बाद अगस्त 1979 में अन्य हिंदीत्तर भाषी प्रदेशों के लिये भी निर्देश जारी करते हुए कहा गया था कि मंत्रालय/विभाग हिंदीत्तर राज्यों में स्थित अधिनस्थ कार्यालयों में भी कार्यशालाएं संचालित करने के आदेश दे सकते हैं। इस प्रकार वर्ष 1979 के बाद से देशभर के सभी केंद्रीय कार्यालयों में कर्मचारियों की सहायता के लिए हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की जा रही हैं। हिंदी संबंधित तिमाही प्रगति रिपोर्ट से संबंधित सूचनाओं में कार्यशाला आयोजित करने का विवरण मांगा जाता है। वर्तमान में प्रत्येक तिमाही में कार्यालय के स्तर पर एक हिंदी कार्यशाला आयोजित करने के आदेश हैं। इस प्रकार वर्ष में कुल 4 कार्यशालाओं का आयोजन अनिवार्य है।

उद्देश्य

हिंदी कार्यशालाओं का मुख्य उद्देश्य हिंदी में कार्य करने की झिझक को दूर कर हिंदी में कार्यालयीन कामकाज का वातावरण तैयार करना। कर्मचारियों में हिंदी के प्रति लगन और आत्मविश्वास पैदा करना और हिंदी में उन्हें जितना ज्ञान है उसी के अनुसार उन्हें हिंदी में कार्य करने की प्रेरणा देना ही कार्यशालाओं का एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए। कार्यशालाओं में सरकारी कामकाज में प्रयुक्त होने वाली व्यावहारिक हिंदी का अभ्यास करवाया जाना चाहिए ताकि इनमें भाग लेने वाले कर्मचारी तथा अधिकारी मौलिक रूप से टिप्पणिया और पत्रादि राजभाषा में लिख सके। इन कार्यशालाओं का उद्देश्य न तो कर्मचारियों को देवनागरी लिपि का ज्ञान करवाना है और न ही उन्हें अनुवाद सिखाना है।

कार्यशालाओं में उन्हें हिंदी सिखाने का कार्य भी नहीं करवाना चाहिए। कर्मचारियों के बीच हिंदी का वातावरण बनाना आवश्यक है। जहां हिंदी का कार्य केवल अनुवाद के भरोसे चल रहा है वहां के कार्मिकों के बीच यह धारणा बन जाती है कि हिंदी से संबंधित कार्य केवल हिंदी अनुभाग का ही है और बाकी लोगों को अंग्रेजी में ही कार्य करना है। कार्यशालाओं में अनुवाद आदि का अभ्यास करवाने से इस प्रकार की धारणा को बल ही मिलता है। अतः कार्यशालाओं की सफलता के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि आयोजकों के समक्ष इन कार्यशालाओं का उद्देश्य भलीं–भाँति स्पष्ट रहे।

कार्यशाला का उपयुक्त समय

कार्यशाला के लिये समय का निर्धारण करना बहुत महत्वपूर्ण है। कार्यालयों में अत्यधिक कामकाज के दिनों में कार्यशाला का आयोजन नहीं करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि हम मार्च के दूसरे पखवाड़े में कार्यशाला आयोजित करना चाहते हैं तो यह उपयुक्त समय नहीं हो सकता है, क्योंकि इन दिनों में वित्तीय वर्ष की समाप्ति समय होता है और कार्यालय में सभी लोग आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहते हैं। इसी प्रकार हमारे किसी संस्थान में किसी महत्वपूर्ण बैठक अथवा संगोष्ठी की तैयारियां चल रही हों, तो अनेक अधिकारी उसके कार्यों में व्यस्त रहेंगे। यदि इस दौरान कार्यशाला का आयोजन किया जाए तो उसमें सम्मिलित होने वाले कार्मिकों की संख्या कम होगी। ऐसे में कार्यशाला का उद्देश्य सफल नहीं हो सकेगा। अतः हिंदी कार्यशाला के आयोजन से पूर्व उचित समय का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। इसी प्रकार कार्यशाला का स्थान का चुनाव भी सावधानी पूर्वक ही करना चाहिए, ताकि सभी लोग वहां समय पर पहुंच सके। कार्यशाला के दिन प्रतिभागियों को दो–तीन बार कह कर बुलाना पड़ता है। इसके लिये केवल परिपत्र जारी करने ही पर्याप्त नहीं होता है। अतः इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिन्हें कार्यशाला में आमंत्रित करना हो उन्हें व्यक्तिगत रूप से इसकी सूचना मिल चुकी है और उन्हें दिन और समय का स्मरण है। जिन विभागों में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित होते हैं वहां कार्यशालाओं का संचालन सुचारू रूप से होता है। कार्यशालाओं का आयोजन प्रायः उन्हीं स्थानों पर किया जाना चाहिए जहां सभी कार्मिकों के बैठने की व्यवस्था अच्छी हो, ताकि वह कुछ बिन्दुओं को लिख भी सके। जहां पर बैठने की व्यवस्था अच्छी नहीं है वे विभाग अपनी कार्यशाला दूसरे विभागों के समिति कक्ष में आयोजित कर सकते हैं।

कार्यशाला के विषय का चुनाव

विषय का चुनाव किसी भी कार्यशाला के लिये महत्वपूर्ण होता है। इसमें भाग लेने वाले प्रतिभागियों की संख्या इसके विषय एवं व्याख्याता पर भी निर्भर करती है। इसलिये विषय का चुनाव रुचिकर एवं सबके समझ और आवश्कता के अनुसार होना चाहिए। आरंभिक रूप में कार्यशालाओं का विषय पूर्णरूप से प्रशासनिक रहता था, जो कालान्तर में बदलकर हिंदी के इतिहास और भाषा पर केन्द्रित होता गया। भाषा पर आधारित विषयों में व्याख्यानकर्ता के चयन का विशेष महत्व होता है। वह उस भाषा का अच्छा जानकार तो होना ही चाहिए परन्तु यदि वह किसी महाविद्यालय अथवा विद्यालय में हिंदी का अध्यापन कार्य करवा रहे हैं तो अति उत्तम होता है। ऐसे प्रशिक्षक उस विषय की बारीकियां बता सकता है जिससे प्रशिक्षणकर्त्ता को तुरंत ज्ञान हो जाता है। जैसे किसी संस्थान में वैज्ञानिकों के लिये कार्यशाला का आयोजन किया जाना है तो उसका विषय 'हिंदी भाषा में वैज्ञानिक लेख कैसे लिखें' अथवा 'वर्तनी शुद्धता' आदि पर हो सकता है। आजकल कम्प्युटर पर हिंदी में कार्य करने पर भी विषय बनाया जा सकता है। प्रशासनिक कार्मिकों के लिये कार्यशाला के आयोजन में कम्प्युटर पर कार्य करने से लेकर हिंदी भाषा की सरलता तथा इसमें कार्य करने के लिये टिप्पण लेखन आदि पर विषय रखे जा सकते हैं। सभी प्रकार के कार्मिकों की कार्यशाला में साधारण विषयों को लिया जा सकता है।

कार्यशाला में भाग लेने वाले प्रतिभागियों को यह बताया जाना चाहिए कि आप कार्यालयीन कामकाज में हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। किसी साहित्यिक विषय पर आपको नहीं लिखना है। अतः इसमें यदि वर्तनी की गलती होती है तो उसको लेकर हिंदी में कार्य करना नहीं छोड़ें। अभ्यास से गलतियां अपने आप मिट जाती हैं। इन सब के अलावा किसी कार्यशाला में क्या विषय रखें जाएं यह इस पर निर्भर करता है कि इसमें भाग लेने वाले कार्मिकों का कार्य कौनसा है। उन्हें किन विषयों पर कार्य करना होता है। कार्यशाला का विषय उसकी अवधि पर भी निर्भर करता है। लघु अवधि में बड़ा विषय और दीर्घ अवधि में छोटा विषय रखने से बचना चाहिए। कार्यशाला के विषय को रोचक बनाने एवं कर्मचारियों को बांधे रखने के लिये इसके आरंभ एवं अंत में प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम भी रखा जा सकता है। प्रश्नोत्तरी के दौरान अच्छा प्रदर्शन करने वाले कर्मचारी को पुरस्कृत भी किया जा सकता है।

आयोजन का स्वरूप

राजभाषा विभाग के वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार प्रत्येक विभाग/कार्यालय को हर एक तिमाही में एक हिंदी कार्यशाला का आयोजन करना अनिवार्य है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अन्तर्गत आने वाले संस्थानों में प्रत्येक तिमाही में प्रायः एक कार्यशाला का आयोजन किया जाना होता है। इन कार्यशालाओं में हिंदी में कार्य करने के प्रति कर्मचारियों में भावना जागृत करनी होती है। एक वर्ष में आयोजित की जाने वाली कार्यशालाओं के विषयों का चयन कर्मचारियों की रूचि और वक्ता की उपलब्धता पर निर्भर करता है। साधारणतः चारों कार्यशालाओं में विषय अलग ही होते हैं। इसे हम चार भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं। पहले हम वैज्ञानिकों के लिये हिंदी में कार्यशाला कर सकते हैं। दूसरी कार्यशाला प्रशासनिक वर्ग के लिये और तीसरी कार्यशाला तकनीकी वर्ग के लिये आयोजित की जा सकती है। अंत में चौथी कार्यशाला में सामान्य विषय रखते हुए हम सभी कार्मिकों के लिये कर सकते हैं। इस प्रकार चारों कार्यशालाओं में विषय भी अलग हो सकते हैं। इसी प्रकार से संस्थान के आधार पर इसमें कुछ परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। जहां कार्मिकों की संख्या कम है उन संस्थानों ने सभी कार्मिकों एक साथ बुलाकर कार्यशाला आयोजित करना अच्छा रहेगा। इन कार्यशालाओं में सामान्य विषय रखे जा सकते हैं। इसमें हिंदी में टिप्पण लेखन, पत्राचार लेखन, शोध लेखन, समीक्षा लेखन, आदि का अभ्यास करवाया जा सकता है। वर्ष में एक कार्यशाला हिंदी में कार्य करने पर मिलने वाले प्रोत्साहनों की जानकारी पर भी की जा सकती है।

उपसंहार

इस प्रकार की शुरूआत से हम निरंतर कार्यशालाओं का आयोजन कर सकते हैं। कार्यशालाओं की सार्थकता तभी हो सकती है जब हम इनकी निरंतरता को बनाए रखें और इसमें रूचिकर पाठ्यसामग्री/विषय रखें। प्रत्येक कार्यशाला के अंत में प्रतिक्रिया जानने के लिये प्रतिभागियों को कुछ समय दिया जाना चाहिए। इसके लिये या तो कोई प्रतिक्रिया प्रश्नोत्तरी फार्म तैयार किया जा सकता है अथवा मौखिक रूप से ही प्रश्न पूछ कर उनकी प्रतिक्रिया को जाना जा सकता है। राजभाषा विभाग, नई दिल्ली के द्वारा फरवरी 2016 में जारी कार्यालय ज्ञापन के अनुसार कार्यशाला की अवधि एक दिवसीय होनी चाहिए। परन्तु छोटे कार्यालयों के मामले में यह आयोजन कठिन होता है। इस बाबत भी विभाग को सोचना होगा। कार्यशाला में बाहर से बुलाये वक्ताओं को नियमानुसार मानदेय भी दिया जाना है और इस बाबत विभाग के दिशा निर्देशों के अनुसार ही मानदेय की राशि का निर्धारण किया जाना चाहिए। कार्यशाला आयोजित करने से पूर्व इसमें भाग लेने वाले कार्मिकों की सूची बना कर उनके हिंदी ज्ञान के आधार पर प्राथमिकता देते हुए उनका चयन किया जाना चाहिए। इन सब विषयों को सोचते हुए कार्यशाला का आयोजन सफल होगा इसमें में कोई संशय नहीं है।

प्रेम प्रकाश पारीक
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (राजभाषा)
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है !

–राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की संक्षिप्त रिपोर्ट

हिन्दी चेतना सप्ताह 2016: भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान बीकानेर, में दिनांक 14 से 21 सितम्बर 2016 के मध्य मनाया गया। उद्घाटन के अवसर पर प्रख्यात वैज्ञानिक और इंजीनियर और बीकानेर तकनीकी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. एच. पी. व्यास मुख्य अतिथि थे। उन्होंने कहा कि हिन्दी को किसी एक विशेष दिवस पर याद करने के बजाय प्रतिदिन आदत बनाएं। हिन्दी में विज्ञान की शिक्षा सरलता से दी जा सकती है अतः सभी को इस प्रकार के प्रयास करने चाहिए। हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता को सिद्ध करते हुए उन्होंने कहा कि यह भाषा पूर्ण रूप से वैज्ञानिक और मानव जीवन पर आधारित है। उन्होंने संस्थान के वैज्ञानिकों से कहा कि हिन्दी में शोध साहित्य का सृजन कर आप हिंदी की सेवा कर सकते हैं। संस्थान के प्रभारी निदेशक डॉ. धुरेन्द्र सिंह ने कहा कि हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए भारत सरकार के प्रेरणा और प्रोत्साहन कार्यक्रम पर बल दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि कल्पना हिन्दी में और क्रियान्वयन अंग्रेजी में नहीं चल सकता है। जब कल्पना हिंदी में है तो उसका क्रियान्वयन भी हिंदी में ही किया जाना चाहिए। वयोवृद्ध किसान श्री दामोदर शर्मा और स्टूडियो एबीसीडी, मुम्बई के श्री सखा मित्र अश्विनी ने भी अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि हिंदी भाषा के 240 शब्द ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में ज्यों के त्यों समाहित किये गये हैं। हिन्दी चेतना सप्ताह आयोजन समिति के सदस्य डॉ. दिलीप कुमार समाधिया ने अतिथियों का स्वागत किया।

समापन अवसर पर डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर के हिंदी विभाग की अध्यक्ष डॉ. शालिनी मूलचंदानी मुख्य अतिथि थीं। उन्होंने कहा कि हिन्दी अपने आप में एक सुदृढ़ भाषा है, इसे अनुवाद की भाषा बनाकर प्रयोग नहीं करना चाहिए। निरन्तर अभ्यास से हिंदी का प्रयोग बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि हिंदी को हीनता की भाषा न समझें। हिंदी में भी उपार्जन के समुचित अवसर हैं। केवल दिवस मनाकर अपने कार्य की इति श्री न समझें। हिंदी में दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनाने की शक्ति है तो, यह दूसरी भाषा को अपने शब्द देने का सामर्थ्य भी रखती है। अतः हिंदी को किसी भी रूप में कमतर न आंके। आधुनिक दौर में हिंदी का प्रचार–प्रसार मन में उत्साह भर देता है। संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. ब्रजेश दत्त शर्मा ने कहा कि हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए भारत सरकार के प्रेरणा और प्रोत्साहन कार्यक्रम पर बल दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि हिन्दी सजग और सरल भाषा है। अपनी भाषा में कार्य करने में हिचक नहीं करनी चाहिए। इससे डरें नहीं यह हम सब की मातृभाषा है। हमें हिंदी में कार्य करने का माहौल तैयार करने की आवश्यकता है।

चेतना सप्ताह के दौरान आयोजित की गयी विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान किए। विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पर डॉ. शिवराम मीना, डॉ. बालूराम चौधरी, श्री संजय पाटिल, श्री रामदीन, डॉ. दीपक कुमार सरोलिया और श्री भोजराज खत्री, द्वितीय स्थान पर डॉ. रामकेश मीना, श्री छुट्टन लाल मीना, डॉ. मुकेश कुमार, डॉ. विजय राकेश रेड्डी और डॉ. श्रवण हलधर रहे और तृतीय स्थान पर श्री स्वरूप चंद राठौड़, डॉ. अजय कुमार वर्मा। डॉ. एस. के. महेश्वरी ओर डॉ. हरे कृष्ण को विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

हिन्दी कार्यशाला आयोजन : इस अवधि के दौरान प्रथम तिमाही की कार्यशाला का आयोजन दिनांक 24 जून, 2016 को, दूसरी कार्यशाला दिनांक 27 सितम्बर, 2016 को किया गया जिसमें "हिन्दी वाईस सॉफ्टवेयर" की जानकारी देते हुए उस पर कार्य करने करने के तरीके बताये गये थे। तीसरी तिमाही कार्यशाला का आयोजन दिनांक 27 दिसम्बर, 2016 को किया गया था। इसमें साइबर क्राइम एक्सपर्ट श्री उम्मेद मील ने साइबर क्राईम पर व्याख्यान दिया। तिमाही की चौथी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 30 मार्च, 2017 को किया गया। इसमें राजभाषा नियम और अधिनियम की जानकरी मण्डल रेल कार्यालय के राजभाषा अधिकारी श्री अनिल कुमार शर्मा ने दी थी।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक : इस अवधि के दौरान संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही के आधार पर आयोजित की जाने वाली बैठकों में पहली बैठक का आयोजन दिनांक 24 जून, 2016 को, दूसरी दिनांक 27 सितम्बर, 2016 को तीसरी बैठक का आयोजन दिनांक 27 दिसम्बर 2016 तथा चौथी बैठक का आयोजन दिनांक 28 मार्च 2017 को किया गया।

संस्थान से वर्ष 2016 के दौरान प्रकाशित **हिन्दी प्रकाशनों** की सूची :–

1. वार्षिक प्रतिवेदन 2015–16 (संस्थान)
2. वार्षिक प्रतिवेदन 2015–16 (अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना 'एक्रिप')
3. केशुबासं समाचार (छःमाही)
4. हिन्दी बुलेटिन :–
    1. मतीरा
    2. शुष्क क्षेत्र में कद्दुवर्गीय सब्जियों के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन
    3. काचरी

हिन्दी चेतना सप्ताह में सम्बोधित करते हुए अतिथि और समापन समारोह में पुरस्कार प्राप्त करते हुए अधिकारी

हिन्दी कार्यशाला में सम्बोधित करते हुए संस्थान के निदेशक प्रोफेसर पी.एल.सरोज

उप वेजलपुर (गोधरा)

राजभाषा कार्यन्वयन समिति बैठक

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 30.06.2016, 20.09.2016, 31.12. 2016 एवं 23.03.2017 को किया गया। जिसमें केन्द्र की राजभाषा की प्रगति की समीक्षा की गई एवं कार्यान्वयन में आ रही कठिनाईयों को दूर करने के लिए विचार विमर्श करके हिन्दी की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाये।

हिन्दी कार्यशाला

केन्द्र में कार्यरत अधिकारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार दिनांक 20.09.2016 को "देश की एकता और अखंडता में राजभाषा हिन्दी का योगदान" विषय पर आयोजित इस कार्यशाला का आयोजन किया गया।

हिन्दी सप्ताह का आयोजन

केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, वेजलपुर (गोधरा) में दिनांक 14.09.16 से 19.09.16 तक हिन्दी सप्ताह मनाने का आयोजन किया गया था। हिन्दी सप्ताह दौरान यह निर्णय लिया गया की सभी कर्मचारी एवं अधिकारियों अपना महत्म कार्य हिंदी में ही करने का प्रयास करे।

दिनांक 14.09.2016 को हिन्दी कार्यान्वयन में वक्ता अथवा व्याख्याता की प्रभावी भूमिका के गुर विषय पर आयोजित हिन्दी दिवस पर कार्यक्रम की शुरूआत में श्री मकवाणा ने बताया कि निम्न लिखित बिंदु पर ज्यादा ध्यान देना अति आवश्यक है (1) व्याख्यान देने की शैली (2) विषय वस्तु का समुचित ज्ञान (3) स्पष्ट्ता (4) अंतिम पडाव (5) समय सीमा का ध्यान (6) आंगिक अभिव्यक्ति (7) व्याख्यान का प्रारंभ, मध्य और चरम।

अन्य गतिविधियां

केन्द्र द्वारा समय–समय पर किसान प्रशिक्षणों आयोजित किए जाते हैं। इन किसान प्रशिक्षणों में केवल हिन्दी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र वेजलपुर पर आत्मा के सहयोग से दाहोद जिले गुजरात के पीपलोद और वन्दार गांव से किसानों और महिला किसानों को "ग्रामीण विकास के लिए अर्ध–शुष्क बागवानी" प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया जो हिन्दी में ही आयोजित किया गया था।

कविताएं

आओ हिंदी दिवस मनाएं

भारत के माथे की बिंदी
जन–जन की भाषा है हिंदी
कोई धर्म और जाति हो कोई
हम हिंदी हैं और हमारी भाषा हिंदी
देवनागरी के स्वागत में, आओ सारा नगर सजाएँ
आओ हिंदी दिवस मनाएं।

सूर, कबीर, तुलसी की प्यारी
रहिमन औ रसखान दुलारी
विद्यापति भूषण मन भायी
मीरा के प्राणों की प्यारी
भावों की भाषा का, आओ मिलकर पावन पर्व मनाएं
आओ हिंदी दिवस मनाएं।

भारतेंदु ने इसे उबारा
शुक्ल द्विवेदी के हाथों परवान चढ़ी
प्रेमचंद के गले लगी यह
और शिवानी से दुल्हन सी सजी
देवोपम रूपसी दुल्हन का, हृदय पटल पर रूप सजाएं
आओ हिंदी दिवस मनाएं।

वामा महादेवी ने रची यामा
कामायनी जयशंकर के मन बसी
मैथिलीशरण विचरे साकेत में
तो दिनकर के उर में बसी उर्वशी
बच्चन की मधुशाला में चह हाला पी आनंद मनाएं
आओ हिंदी दिवस मनाएं।

अंग्रेजी की सज़ा

यूं तो हम आजाद हो गए, पर न मिली आजादी
जाते–जाते अंग्रेजों ने हमको, अंग्रेजी की सजा दी।

इसीलिए ग़र हिंदी बोले तो, हम पिछड़े कहलाते
पलकों पर बैठाते उनको, जो अंग्रेजी में बतियाते।

बहुत पुराने मीत अचानक, अगर कहीं मिल जाते
वंदन नमन भूलकर सारे, हाय–हाय चिल्लाते।

परम पूज्या माताजी को, मामा, मॉम बुलाते
मुझे बुलाया या बहना को, सुन मामाजी चकराते।

भैया–दीदी ब्रो–सिस बनकर, लघुता–महता खो बैठे हैं
अंकल–आंटी में समेट, सब रिश्तों की मिठास हम धो बैठे हैं।

परम पिता हम सबका था जो, गॉड बना चुप बैठा है
पूज्य पिताश्री से नीचे गिर, मनुज डैड बन ऐंठा है।

अपने ही घर में देखो, बेटी हो रही अनादृत
भाग्य चक्र देखो हिंदी, जग में हो रही समादृत।

विदेशों में होता देखो, विश्व हिंदी सम्मेलन
हिंद निवासी तोड़ सके न, अब तक अंग्रेजी का बंधन।

हिंदी भाषा मात्र नहीं है, हिंद की संस्कृति संवाहक है
सक्षम सुता देववाणी की, हर सर की गायक है।

डॉ. उषा किरण सोनी
'ज्ञानकुंज' 307, गांधीनगर कालोनी (लालगढ़)
बीकानेर

बागवानी अनुसंधान

भारत में शुष्क बागवानी : एक परिदृश्य

बागवानी के क्षेत्र में भारत ने अभूतपूर्व प्रगति की है और विश्व परिदृश्य में बागवानी फसलों के उत्पादन में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है। वर्तमान में भारत में लगभग 23.42 मिलियन हेक्टेयर बागवानी क्षेत्र से कुल 283.50 मिलियन टन पैदावार हो रही है जो भारत के खाद्यान्न फसलों की पैदावार से भी ज्यादा है। प्रमुख बागवानी फसलें जैसे फल, सब्जियां, पुष्प एवं अलंकृत पौधे, कन्दवर्गीय फसलें, रोपण फसलें, औषधीय एवं सुगंधित पौधे, मशरूम आदि में से केवल फलों द्वारा ही 88.97 मिलियन टन एवं सब्जियों से 168.30 मिलियन टन की पैदावार हो रही है। भारत में बागवानी फसलों की औसत उत्पादकता 12.1 टन प्रति हेक्टेयर है, जिसमें फलों की उत्पादकता 13.9 टन प्रति हेक्टेयर तथा सब्जियों की 17.7 टन प्रति हेक्टेयर है। उत्पादकता की दृष्टि से भारत में आम, अंगूर, अनार, चीकू, केला, पपीता, आलू, प्याज, आँवला आदि की उत्पादकता विश्व में सबसे ज्यादा है। देश में बागवानी फसलों का उत्पादन बढ़ने से जहाँ गुणवत्तायुक्त पोषण में सुधार होगा वहीं उत्पादक की आय में वृद्धि होगी, रोजगार के अवसर बढ़ेगें, निर्यात बढ़ेगा एवं आयात पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत होगी। इसके अतिरिक्त बागवानी फसलें ज्यादातर बहुवर्षीय होती है जिसका पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण में विशेष योगदान है।

यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि विश्व के कई देश ऐसे हैं, जैसे– यू.एस.ए., ब्राजील, इन्डोनेशिया आदि जहाँ पर फलों की उत्पादकता भारत से भी ज्यादा है। इसलिए यदि हमें भारत में बागवानी फसलों की उत्पादकता एवं उत्पादन को और बढ़ाना है तो उत्पादन की नई तकनीकों के साथ–साथ उन क्षेत्रों में बागवानी फसलों का क्षेत्रफल बढ़ाना होगा, जो अभी तक उपेक्षित रहें हैं। यदि प्राकृतिक संसाधनों यथा मरुस्थलीय क्षेत्र, वर्षा आधारित क्षेत्र, कम वर्षा वाले क्षेत्र, अधिक गर्मी एवं सर्दी वाले क्षेत्र, मृदा क्षरण से प्रभावित क्षेत्र, कम उपजाऊ, बंजर क्षेत्र, क्षारीय एवं अम्लीय मृदा प्रभावित क्षेत्र, पठारी एवं बाढ़ प्रभावित क्षेत्र, वायु एवं जल अपरदन प्रभावित क्षेत्र आदि पर दृष्टि डाली जाय तो देश के भूभाग का एक बड़ा क्षेत्रफल इस समस्याओं से ग्रसित है। ऐसे क्षेत्रों की फसल उत्पादकता बहुत कम है तथा इसी प्रकार की समस्याओं वाले शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों की स्थिति और विकट है। देश का लगभग 12.2 प्रतिशत भूभाग शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत आता है जिसमें 31.71 मिलियन हेक्टेयर गर्म शुष्क क्षेत्र तथा 7.83 मिलियन हेक्टेयर शीत शुष्क क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। सम्पूर्ण गर्म शुष्क क्षेत्रफल का लगभग 49.61 प्रतिशत अकेले राजस्थान में फैला हुआ है। गर्म एवं शीत शुष्क क्षेत्रफल का वितरण निम्न तालिका क्रमांक 1 में दिया गया है।

शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियाँ विकट हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों में वर्षा बहुत कम (150 मिमि–450 मिमी/वर्ष) होती है, लगभग हर 3–4 साल में एक बार सूखा, गर्मियों में अत्यधिक तापमान (42–50 सेन्टीग्रेट), जाड़े में कभी–कभी बहुत कम तापमान (0–10 सेन्टीग्रेट), वातावरण में कम आर्द्रता, बलुई एवं कम उर्वता वाली भूमि, वायु द्वारा मृदा अपरदन की समस्या, सिंचाई के सीमित संसाधन आदि। इन्हीं दशाओं के कारण खेती करना कठिन है एवं उत्पादकता बहुत कम है किन्तु यदि वैज्ञानिक विधि से बागवानी की जाय तो निश्चित ही अत्यधिक गुणवत्तायुक्त फल, सब्जियों, मशालों एवं औषधीय पौधों की खेती सम्भव है। यहां पर यह भी स्पष्ट करना है कि शुष्क क्षेत्रों में कृषि एवं बागवानी फसलों की खेती में कठिनाइयों के बावजूद इन क्षेत्रों में अपार सम्भावनायें भी है जैसे खेती हेतु जमीनों की उपलब्धता, खेती में कीड़े एवं बीमारियों का कम प्रकोप, पशुधन की अच्छी संख्या, खेती हेतु मजदूरों की तुलनात्मक अच्छी उपलब्धता एवं गुणवत्तायुक्त उत्पाद आदि। उक्त सम्भावनाओं को देखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा 1993 में केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान की स्थापना राजस्थान के बीकानेर में की गई, जिससे कृषकों की बागवानी से संबंधित समस्याओं का समाधान हो सके एवं उनकी आर्थिक दशा में भी सुधार हो। अर्धशुष्क क्षेत्रों की समस्याओं के लिए गुजरात के वेजलपुर (गोधरा) में एक बागवानी परीक्षण केन्द्र को सन् 2000 में इस संस्थान से सम्बद्ध किया गया। शुष्क एवं अर्धशुष्क बागवानी के शोध का लाभ क्षेत्र के किसानों को मिले इसके लिए सन् 2008 में गुजरात के पंचमहल जिले में एक कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई। बागवानी की क्षेत्रीय समस्याओं के शोध एवं प्रसार के लिए शुष्क क्षेत्रीय फलों हेतु एक अखिल भारतीय समन्वित परियोजना, जिसके देश में 18 केन्द्र हैं, का भी संचालन इस संस्थान द्वारा किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि

तालिका–1 भारत में शुष्क क्षेत्र की स्थिति

क्षेत्र	क्षेत्रफल (मि. हे.)	भारत के कुल शुष्क क्षेत्र का प्रतिशत	भारत के कुल भूभाग का प्रतिशत	प्रमुख जिले
(अ) गर्म शुष्क क्षेत्र	31.71	80.20	9.64	
(क) उत्तर पश्चिमी भारत	28.56	72.26	8.68	
पश्चिमी राजस्थान	19.61 (196150)	49.61	5.96	बीकानेर, बाडमेर, जेसलमेर, जोधपुर, श्रीगंगानगर, चूरू, पाली, जालोर, नागौर, अजमेर, सीकर, झुंझुनु,
उत्तर पश्चिमी गुजरात	6.22 (62180)	15.73	1.89	कच्छ, अम्रेली, सुरेन्द्रनगर, जूनागढ़, बनासकांठा, मेहसाना, जामनगर
दक्षिण पश्चिमी पंजाब	1.45 (14510)	3.67	0.44	फिरोजपुर, भटिंडा
दक्षिण पश्चिमी हरियाणा	1.28 (12840)	3.25	0.39	हिसार, रोहतक
(ख) दक्षिणी भारत	3.15	7.94	0.96	
आंध्र प्रदेश	2.16 (21550)	5.45	0.66	अनन्तपुर, कुडप्पा, करनूल
कर्नाटक	0.86 (8570)	2.17	0.26	धारवाड़, चित्रदुर्ग, बेलारी, रायचूर
महाराष्ट्र	0.13 (1290)	0.32	0.04	धूलिया, नासिक, सोलापुर, सतारा
(ब) शीत शुष्क क्षेत्र	7.83	19.80	2.38	
जम्मू एवं कश्मीर	7.00	17.70	2.13	लेह, कारगिल
हिमाचल प्रदेश	0.83	2.10	0.25	लाहोल–स्पिति, चम्बा, किन्नोर
कुल (अ+ब)	**39.54**	**100.00**	**12.02**	

कोष्ठक में दी गई संख्या वर्ग किलो मीटर क्षेत्र हैं। (स्त्रोतः सरोज एवं अन्य, 2004)

देश में प्रचलित अनार की भगवा प्रजाति, आँवला की एन.ए. 7 प्रजाति एवं सरीफा की अर्का सहन प्रजाति इसी परियोजना की देन है।

राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी विकास के लिए आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्व रखता है। अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की स्थिति नहीं है कारण कि घटते जल संसाधन और लगातार पड़ने वाले अकाल की स्थिति को देखते हुए सबका ध्यान शुष्क बागवानी पर टिका है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में रहने वाली जनसंख्या के सर्वागींण विकास के लिए तथा मरू भूमि को और अधिक अनुपजाऊ व खराब होने से बचाने के लिए भी इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। कम वर्षा, घटते जल स्त्रोत, महंगे होते संसाधन, जलवायु परिर्वतन एवं सूखा पड़ने से फसल उत्पादन किसानों के लिए दिनों दिन चुनौती बनता जा रहा है।

इन परिस्थितियों में बागवानी फसलों की खेती करना लाभप्रद है, क्योंकि इसके द्वारा खाद्य, पोषण, रोजगार व जीवन यापन के हर पहलुओं का संचालन संभव है। आज बढ़ती हुई आबादी के लिए उनकी मांग के अनुसार फल, सब्जियों एवंम मसाला का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है जो कि अभी भी लक्ष्य से बहुत कम है। शुष्क क्षेत्र में उपलब्ध जनन द्रव्यों का उपयोग, उन्नत किस्मों का विकास एवं उत्पादन खर्च में कमी कर फलोत्पादन बढ़ाने

के साथ–साथ गुणवत्ता तथा आय बढ़ाने की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

राजस्थान में लगभग 41 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल से 65.10 हजार मीट्रिक टन फल का उत्पादन होता है। इसी प्रकार 1.95 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 20. 21 लाख मीट्रिक टन सब्जियों की पैदावार होती है जो कि प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मांग से बहुत कम है। इसलिये बागवानी फसलों का क्षेत्र एवं उत्पादन बढ़ाना नितांत आवश्यक है ताकि बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग को पूरा किया जा सके।

बेर, ऑवला, अनार, खजूर, बेल, शहतूत, फालसा, करौंदा, लसोड़ा इत्यादि के अतिरिक्त किन्नों, मौसमी, नीबू, अमरूद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में उन्नत विधियों द्वारा पैदा किए जा सकते है। इसके अतिरिक्त इनके जनन द्रव्य संग्रह, प्रक्षेत्र में संरक्षण कर मूल्यांकन किया जा रहा है (तालिका 2)। स्थानीय वनस्पतियाँ जैसे कैर, सांगरी, लसोडा, पीलू, इत्यादि में भी सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है जो सूखे व मौसम परिवर्तन की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने में सक्षम है।

वर्तमान में बदलते मौसम में भी मूलतः रूप से पाई जाने वाली वनस्पतियों में कम तापमान व पाला सहन करने की क्षमता देखी गई है जैसे बेर, खेजड़ी, पीलू इत्यादि। कुछ फलदार पौधे जैसे आँवला, लसोड़ा आदि अत्यधिक सर्दी व पाले के प्रकोप से प्रभावित होते हैं इन पौधों के लिए कम तापमान व पाला सहिष्णु प्रजाति को चिन्हित कर उनका मूल्यांकन तथा किस्में विकसित करने की आवश्यकता है।

तालिका 2: भाकृअनुप–केशुबासं, बीकानेर में जननद्रव्य संग्रह, संरक्षण एवं मूल्यांकन

फसलें	जनन द्रव्य संख्या	फसलें	जनन द्रव्य संख्या
बेर	318	अनार	150
आंवला	20	खजूर	64
बेल	17	कैक्टस पीयर	20
फालसा	06	अंजीर	02
शहतूत	15	केर	05
करौंदा	06	लसोड़ा	20
कैंथ	03	जामुन	02

शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन के आंकड़े तालिका– 3 से स्पष्ट है कि राजस्थान में मसालों की खेती का क्षेत्रफल सबसे अधिक है। फल व सब्जियों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन को और बढ़ाने की आवश्यकता है जिसके विस्तार की संभावना शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र में है।

तालिका–3 राजस्थान में शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

फसलें	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)	उत्पादन (लाख मीट्रिक टन)
फल	0.41	6.51
सब्जियाँ	1.95	20.21
मसाले	10.02	10.50
फूल	0.03	0.06
औषधीय एवं सुगन्ध पौधे	3.69	1.86

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे तरबूज, खरबूजा, ककड़ी, तुरई, लौकी, काचरी, मतीरा, टिण्डा तथा टमाटर, मिर्च, ग्वारफली, सहजन एवं पत्तीदार सब्जियां जैसे मैथी, पालक बहुतायत से पैदा किए जा सकते हैं। स्थानीय वनस्पतियां जैसे काचरी, फूट ककड़ी, मतीरा, ग्वारफली, ग्वारपाठा इत्यादि के उत्पादन तकनीक में सुधार करके व्यावसायिक खेती की जा सकती है क्योंकि इन फसलों में सूखा सहने की अपार क्षमता होती है तथा इनकी बारानी खेती शुष्क जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। शुष्क क्षेत्र में स्थापित इस संस्थान ने सर्वप्रथम स्थानीय सूखा सहिष्णु वनस्पतियों की ओर ध्यान दिया है और इसी क्रम में संस्थान ने कई उन्नत किस्में विकसित की है (तालिका 4)। इन किस्मों का उपयोग कर बारानी क्षेत्र के किसान लाभान्वित हो रहे है। इस क्षेत्र में कई औषधीय गुणवत्ता वाली वनस्पतियां भी पायी जाती है जिनका व्यावसायिक उत्पादन संभव है जैसे कि ईसबगोल, अश्वगंधा, गुग्गल, सनाय (सोनामुखी) इत्यादि जीरा, धनिया, मैथी, सौंफ जैसे मसाले वाली फसलों का भी इस प्रदेश में मुख्य स्थान है। राजस्थान में अच्छी गुणवत्ता के धनिया, मेथी, जीरा, सौंफ, अजवायन इत्यादि का उत्पादन तथा बीजीय मासलों का निर्यात भी किया जाता है।

ऐसा अनुमान है कि यदि कुपोषण से छुटकारा है तो इन फसलों का उत्पादन आने वाले बीस वर्षों में लगभग पांच गुणा बढ़ाना पड़ेगा। अतः इस क्षेत्र की जनसंख्या को

संतुलित आहार प्रदान करने के लिए इस ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। फल वृक्षों की खेती से पौष्टिक फल, ईंधन, चारा तथा अन्य उपयोगी वस्तुऐं प्राप्त होती हैं। फलों का सेवन स्वस्थ्य शरीर व विकास के लिए जरूरी है। कई रोगों के निदान में फलों के सेवन की अहम भूमिका होती है। फलों में अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं जैसे– बेल का शरबत गर्मी में शीतलता देने के अलावा दस्त, पेचिस एवं पेट के विकारों के लिए अचूक औषधि है तथा दशमूल का मुख्य घटक है। बेल के फल के अलावा इसकी पत्तियां, तना, छाल व जड़े भी आयुर्वेदिक औषधि में काम आती है। इसी प्रकार आँवला अत्यधिक विटामिन 'सी' युक्त पौष्टिक, शक्ति वर्धक च्यवनप्राश का मुख्य घटक है। आँवला के फल एवं उत्पाद के सेवन से विटामिन सी की पूर्ति होती है। शुष्क क्षेत्र में बाग विकास के लिए फल एवं उपयुक्त उन्नत किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए जैसे कि बेर की गोला, सेव, मुंडिया, उमरान, कैथली, बनारसी कड़ाका, गोमाकीर्ति; आँवला के एन.ए. 7 (नीलम), कृष्णा, कंचन, चकैया, एन. ए. 6 (अमृत); बेल की एन.बी. 5, एन.बी. 9; गोमा यशी, अनार की जालौर सीडलैस, मृदुला, गणेश, जी 137, फूले अरक्ता, भगवा एवं खजूर की हलावी, बरही, मेडजूल, जाहिदी, खलास, शामरान, खुनेजी किस्में उत्पादन एवं गुणवत्ता में अच्छी पाई गई हैं। खजूर के पोधों पर पाला/कम तापमान का प्रभाव नहीं पड़ता है नर व मादा पौधे अलग अलग होते हैं तथा परागण के लिए बाग में नर पौधे (5–10 प्रतिशत) अवश्य लगाने चाहिए। उन्नत किस्म के बीज, पौधे, सघन रोपण बागवानी, संरक्षित खेती, जलसंरक्षण, समेकित कीट–रोग प्रबन्धन, मूल्य संवर्धन, इत्यादि नवीन तकनीकों का प्रयोग कर उपज एवं आय में वृद्धि की जा सकती है।

शुष्क क्षेत्र में पोषण एवं आय में वृद्धि कर समाजिक स्तर को सुधारने में शुष्क बागवानी की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन फसलों से प्रति एकड़ उपज दूसरी फसलें की तुलना में अधिक होती है। प्रति एकड़ अधिक उपज बढ़ने पर अधिक आमदनी भी प्राप्त होती है और वर्षभर कार्य के अवसर उपलब्ध होते रहते हैं। इन फसलों पर आधारित कई प्रकार के लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं जैसे फल–सब्जी–मसाला परिरक्षण एवं संशोधन उद्योग जिसमें मसाले, अचार, चटनी, सूखे पाउडर, मुरब्बा, कैण्डी इत्यादि आते हैं। इन उद्योग स्थापना से अन्य उद्योगों को भी बढ़ावा मिलेगा जैसे कांच, प्लास्टिक, पैकिंग, वैक्सींग, लकड़ी, कण्टेनर, डिब्बा बन्दी, मोम उद्योग इत्यादि।

शुष्क क्षेत्र बागवानी में उत्पादन की गुणवत्ता श्रेष्ठ होने के कारण भविष्य में उत्पादों के निर्यात की संभावनाऐं हैं। बागवानी फसलें जैसे कि सूखा सहिष्णु बेर, गूंदा, आंवला, बेल, इत्यादि तथा काचरी, मतीरा आदि तो सूखा के प्रति बीमित (इन्श्योरड) फसलें हैं क्योंकि अन्य फसलें सूखे की स्थिति में उत्पादन न दें पर इनसे तो कुछ न कुछ उत्पादन तथा पशुधन के लिए चारा मिल जाता है जिससे अकाल के समय में भी किसान को जीवकोर्पाजन हेतू मदद मिल जाती है। फल वृक्षों के साथ साथ कई प्रकार के उपयोगी एवं पोष्टिक घास व चारा, औषधीय एवं सुगन्ध, मसाले वाली फसलें उगाना लाभप्रद हो सकती हैं। जिससे कि भूमि का समुचित उपयोग होकर प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आय प्राप्त की जा सके। इसके लिए अन्तः फसलों के चयन करने में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है तांकि फल वृक्षों के उत्पादन पर विपरित प्रभाव न पडे।

फल वृक्षों की विशिष्टता, एकरूपता एवं स्थायित्व परीक्षण केन्द्र

संदर्भ संकलन उदाहरण किस्मों के अनुरक्षण तथा प्रगुणन और संबंधित फसलों के डीयूएस दिशानिर्देशों के अनुसार डीयूएस विवरणों हेतु डेटाबेस के सृजन के लिए प्राधिकरण ने विभिन्न फसलों के लिए देश में 52 डीयूएस परीक्षण केन्द्र स्थापित किए हैं। संस्थान तथा इसके उप केन्द्र, वेजलपुर, गोधरा–गुजराज में पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण द्वारा वित्त पोषित निम्न फलं/सब्जियों डीयूएस परीक्षण केन्द्र डाटाबेस बनाने के लिए चल रहे है (तालिका 5)। जिससे डीयूएस विवरणिका तैयार की जायेगी। कृषकों को इनका लाभ किस्म पंजीकरण कराने में मिलेगा।

तालिका 5: संस्थान में डीयूएस परीक्षण केन्द्र

सं.	फसलें	केन्द्र (डस केन्द्र)
1.	बेर	सी.आई.ए.एच, बीकानेर
2.	खजूर	सी.आई.ए.एच, बीकानेर
3.	खरबूज और तरबूज	सी.आई.ए.एच, बीकानेर
4.	बेल	के.बा.प.के., वेजलपुर, गोधरा–गुजरात
5.	जामुन	के.बा.प.के., वेजलपुर, गोधरा– गुजरात (सह नोडल केन्द्र)
6.	आँवला	के.बा.प.के., वेजलपुर, गोधरा– गुजरात (सह नोडल केन्द्र)
7.	चिरौंजी व इमली	के.बा.प.के., वेजलपुर, गोधरा–गुजरात

तालिका 4: भाकृअनुप–केशुबास द्वारा विकसित की गई बागवानी फसलों की किस्में

फसल	उन्नत किस्म	फसल	उन्नत किस्म
बेर	थार–भुभराज, थार–सेविका, थार मालती	मतीरा	ए.एच.डब्ल्यू–19, ए.एच.डब्ल्यू–65, थार–मानक
अनार	गोमा खट्टा (अनार दाना)	काचरी	ए.एच.के.–119, ए.एच.के.–200,
आंवला	गोमा ऐश्वर्य	फूट ककड़ी	ए.एच.एस.–10, ए.एच.एस.–82
इमली	गोमा प्रतीक	सलाद ककड़ी	ए.एच.सी.–2, ए.एच.सी.–13
बेल	गोमा यशि, थार दिव्या, थार नीलकंठ	जामुन	थार प्रियंका, थार क्राति
खेजड़ी	थार–शोभा	लौकी	थार–समृद्वि
ग्वार फली	थार–भादवी, गोमा मंजरी	स्वार्ड बीन	थार माही
सेम फली	थार–कार्तिकी, थार माघी	चिरौंजी	थार प्रिया
शहतूत	थार लोहित एवं थार हरित	लसोड़ा	थार बोल्ड
करौंदा	थार कमल	खिरनी	थार रितुराज
महुआ	थार मधु	फालसा	थार प्रगति
कददू	थार कवि	सहजन	थार हर्ष
तोरई	थार करणी		

इस प्रकार शुष्क क्षेत्र के विकास में आर्थिक स्थायित्व ही नहीं उनकी आर्थिक, सामाजिक उन्नति के लिए भी बागवानी की अहम भूमिका है। अतः आज के परिपेक्ष्य में जनन द्रव्य संकलन संरक्षण, उन्नत किस्मों का विकास कर शुष्क बागवानी फसलों का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। जिससे क्षेत्र में बागवानी, स्व–रोजगार, कृषि उद्योग, भण्डारण, विपरण इत्यादि के क्षेत्र में विकास के साथ ही आर्थिक स्थिति भी मजबूत हो सके।

शुष्क बागवानी हेतु कुछ सुझाव

- शुष्क बागवानी से तात्पर्य केवल वर्षा आधारित गर्म शुष्क क्षेत्र से ही नहीं, अपितु इसके अन्तर्गत शीत शुष्क क्षेत्र एवं गर्म शुष्क क्षेत्रों का सिंचित क्षेत्र भी आता है। अतः क्षेत्र एवं संसाधनों की दशा के अनुसार फसल एवं तकनीकी का चुनाव करें।
- जब भी किसी नये गर्म शुष्क क्षेत्र में बागवानी करना है तो सबसे पहले बलुई मिट्टी के टीलों एवं धोरों को आवश्यकतानुसार समतल कर लें तथा अनावश्यक रूप से उग रही झाड़ियों को उखाड़ दें। किन्तु यदि खेजड़ी के पौधे प्राकृतिक रूप से उगे हैं, और दूर–दूर हो, तो उन्हें रहने दें।
- खेत के चारों तरफ जल्दी बढ़ने वाले पौधे जैसे– सहतूत, लसोड़ा, सीसम, सिरस, कुमुट, बेल, करौंदा आदि की बाड़ लगाये एवं समय–समय पर काट–छांट करते रहें।
- गर्म शुष्क क्षेत्रों में जाड़े के मौसम में पाला पड़ने की सम्भावना रहती है अतः आँवला, इमली, जंगल जलेबी, लसोड़ा, आम, अमरूद आदि न लगायें क्योंकि इन पौधों की पाला सहने की शक्ति कम होती है।
- कुछ फलों जैसे अनार एवं बेल की खेती गर्म शुष्क क्षेत्रों में करने पर फल फटने की समस्या अधिक रहती है अतः ड्रिप द्वारा सिंचाई करके मृदा की उचित नमी बनाये रखें।
- शुष्क बागवानी में अन्तराशस्य फसलों की अपार सम्भावनायें हैं अतः बगीचों में कम पानी चाहने वाली फसलों जैसे मोठ, ग्वार, काचरी, सरसों, चना आदि की खेती करें।
- बलुई मृदाओं की उर्वरता एवं जल धारण क्षमता बहुत कम होती है अतः देशी खाद/कम्पोस्ट खाद/हरी खाद का प्रयोग अवश्य करें। रासायनिक खादों का प्रयोग 2–3 बार में करें।
- सिंचाई हेतु पानी का समुचित उपयोग एवं वैज्ञानिक तरीके जैसे ड्रिप प्रणाली से करें। ज्यादा सिंचाई करना न तो लाभदायक है और नही तर्कसंगत।

- सामान्यतया शुष्क बागवानी में कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है अतः किसी भी कीटनाशी या रासायनिक दवाओं का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही करें।
- फलों एवं सब्जियों की अनुमोदित प्रजातियों को प्रमाणित नर्सरी से खरीद कर ही रोपित करें।
- रोपण के बाद, पौधों की उचित काट–छांट करते रहे एवं एक उचित प्रकार का छत्रप निर्धारण करें।
- कुछ फलों जैसे खजूर एवं ऑवला की बागवानी करते समय 5–10 प्रतिशत परागकर्ता किस्में अवश्य लगायें।

कुछ अनसुलझे पहलू

- खजूर में अगेती किस्मों की नितान्त कमी है, जो वर्षा आरम्भ होने से पहले पक कर तैयार हो जाय।
- खजूर में ऊतक संर्वधन द्वारा तैयार पौधे की अत्यधिक माँग की पूर्ति न हो पाना।
- खजूर में परागकर्ता किस्मों की कमी एवं किसानों को परागण के बारे में तकनीकि जानकारी का अभाव।
- फल वृक्षों की पाला अवरोधी किस्मों की नितान्त कमी।
- शुष्क क्षेत्रों में अनार एवं बेल में फल फटने की समस्या।
- तुड़ाई उपरान्त बनाये जाने वाले पदार्थों हेतु लधु उद्योगों की कमी।
- बेर एवं सब्जियों के खेती में फल मक्खी से नुकसान तथा तना बेधक कीड़ों के कारगर रोकथाम की कमी।

शुष्क बागवानी : एक सार्थक प्रयास

- इस संस्थान में शुष्क क्षेत्रीय फलों (998) एवं सब्जियों (530) के सबसे अधिक जननद्रव्यों का राष्ट्रीय प्रक्षेत्र संकलन बीकानेर (राजस्थान) एवं वेजलपुर (गुजरात) में किया गया है।
- अभी तक संस्थान द्वारा 12 शुष्क क्षेत्रीय फलों एवं 17 सब्जियों की प्रजातियां विकसित की गई है।
- विश्व में पहली बार खेजड़ी–थार शोभा, चिरौंजी–थार प्रिया, खिरनी–थार रितुराज एवं लसोड़ा–थार बोल्ड प्रजातियों का चयन इस संस्थान द्वारा किया।
- उच्च तापक्रम को सहन करने वाली शुष्क सब्जियों बैंगन–थार रक्षित, तोरी–थार करणी, लौकी–थार समृद्धि नामक प्रजातियॉ विकसित की है।
- मध्यम वृद्धि एवं कम कांटे वाली बेल की गोमा यशी प्रजाति की मांग सघन बागवानी हेतु एवं जामुन की गोमा प्रियंका की मांग कृषकों की बीच बढ़ती जा रही है।
- संस्थान द्वारा विकसित काचरी की प्रजाति ए.एच.के.–119 किसानों के बीच आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है और लगभग आठ हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई जा रही है।
- बेर एवं ऑवला आधारित फसल प्रणाली से किसानों को अनेक उत्पाद एवं अधिक आमदनी प्राप्त हो रही है।
- कम लागत वाली 'लो टनल तकनीकी' भी जाड़े के मौसम में शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों को उगाने हेतु किसानों द्वारा अपनाई जा रही है।
- अत्यधिक गर्म शुष्क क्षेत्रों के सिंचित प्रक्षेत्रों में किन्नों, अनार, मौसमी, नीबू को यह संस्थान बढ़ावा दे रहा है।
- इस संस्थान ने शुष्क क्षेत्रों में फोव्वारा पद्धति से सिंचाई करके उच्च गुणवत्ता वाली आलू पैदा करने में सफलता प्राप्त की है।
- इस संस्थान ने ऑवला की सघन बागवानी, किन्नों में ड्रिप फर्टीगेशन, चीकू एवं ऑवला हेतु ड्रिस नार्म, खजूर में परागण आदि तकनीकों का विकास किया है।
- व्यावसायिक स्तर पर ऑवला, बेल, चिरौंजी, खेजड़ी, जामुन आदि के प्रवर्धन की वानस्पतिक तकनीकि विकसित किया गया है।
- ऑवला, बेल, खजूर, काचरी, खेजड़ी, लसोड़ा, ग्वारपाठा आदि से विभिन्न प्रकार के गुणवत्तायुक्त खाद्य पदार्थ बनाये गये हैं।

प्रो. पी. एल. सरोज
निदेशक,
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान,
बीकानेर.–334 006 राजस्थान

शुष्क बागवानी द्वारा किसानों की आय दोगुनी करना

देश में किसानों की आय का स्रोत बढ़ाने के लिए बागवानी, डेयरी, पशुपालन, कृषि–वानिकी, मुर्गी, मछली, एवं मधुमक्खी पालन इत्यादि गतिविधियों के लिए सरकार द्वारा आर्थिक मदद की जा रही है। जिससे की उत्पादन में वृदि होकर कृषको को अच्छा लाभ मिल सके बागवानी क्षेत्र में भी किसानों को सहायता प्रदान करने के लिए बागवानी मिशन के अन्तर्गत कई योजनाएं शुरू कर रखी है। जिससे वर्ष 2022 तक आय दोगुना हो सके। शुष्क क्षेत्र में भी बागवानी का विकास व विस्तार करके किसानों की आय में बढ़ोतरी की जा सकती है। क्योंकि शुष्क क्षेत्र में उत्पाद गुणवता से परिपूर्ण होते है तथा कीट एवं रोग का प्रकोप बहुत कम होता है। सौर ऊर्जा की अधिक उपलब्धता का उपयोग विभिन्न यन्त्रों एवं उत्पाद को सुखाने के लिए किया जा सकता है।

भारत का लगभग 12 प्रतिशत भू–भाग शुष्क क्षेत्र के अर्न्तगत आता है। इस क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भाग या तो कृषि योग्य नहीं है या फिर बंजर परती भूमि है। यह भूभाग लगभग दो करोड़ हेक्टेयर है जिसमें बागवानी विकास की अपार संभावनाएं हैं। राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी विकास के लिए आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्व रखता है। फसलों की खेती के अपेक्षाकृत बागवानी से अधिक उपज एवं आय प्राप्त होती है। फलदार पौधों के बाग कृषकों के लिए आय का स्थाई स्त्रोत भी माना जाता है क्योंकि अनुकूल परिस्थितियां न होने पर भी फल वृक्षों से आशातीत उत्पादन मिल जाता है। अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की स्थिति नहीं है कारण कि घटते जल संसाधन और सूखे स्थिति को देखते हुए सबका ध्यान शुष्क बागवानी पर टिका हुआ है। इसके अतिरिक्त लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के सर्वांगीण विकास के लिए शुष्क क्षेत्र में बागवानी पर ध्यान देना आवश्यक है। फलों की बागवानी से सन्तुलित पोषण, आर्थिक लाभ, पर्यावरण सुरक्षा के अलावा वर्ष भर कार्य के अवसर एवं अनेक प्रकार की वस्तुएं प्राप्त हो सकेगी। काष्ठ कला उद्योग, लकड़ी, ईधन, चारा, परिरक्षित पदार्थ, मधुमक्खी पालन व अन्य कुटीर उद्योग स्थापित होंगे। बागवानी फसलों की उन्नत किस्में एवं नवीन उत्पादन तकनीकों को अपनाकर किसानों की आय में अनुपातिक बढ़ोतरी की जा सकती है।

फलोत्पादन के क्षेत्र में विश्व में भारत का दूसरा स्थान है। वर्तमान में लगभग 7.21 मिलियन हेक्टेयर बागवानी क्षेत्र से कुल फलों का लगभग 88.97 मिलियन टन पैदावार होता है। तथा फलों की उत्पादकता भी 10.70 से बढ़कर 12.30 टन प्रति हेक्टेयर वर्ष 2015 में आंकी गई है। फल उत्पादन बढ़ने से पोषक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता,रोजगार के अवसर, आय स्त्रोत एवं निर्यात की सम्भावनाएं बढ़ेगीं तथा आयात पर होने वाले विदेशी मुद्रा खर्च में भी कमी होगी। विश्व में प्रति व्यक्ति फल खपत का औसत 73 किलोग्राम वर्ष है जबकि भारत में 123 किलोग्राम प्रति व्यक्ति सालाना की खपत होती है।

आज बढ़ती हुई आबादी के लिए उनकी मांग के अनुसार फल, सब्जियों एवंम मसाला का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है जो कि अभी भी लक्ष्य से बहुत कम है। शुष्क क्षेत्र में उपलब्ध जनन द्रव्यों का उपयोग, उन्नत किस्मों का चयन कर फलोत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ गुणवत्ता की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

राजस्थान में लगभग 41 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल से 65.13 हजार मीट्रिक टन फल का उत्पादन होता है। इसी प्रकार 1.9 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 20.2 लाख मीट्रिक टन सब्जियों की पैदावार होती है। यह उत्पादन प्रति व्यक्ति प्रति दिन मांग से बहुत कम है। इस दिशा में उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की आय बढ़ाना भी आवश्यक है।

बेर, आंवला, अनार, खजूर, बेल, शहतूत, फालसा, करौंदा, लसोड़ा इत्यादि के अतिरिक्त किन्नों, मौसमी, नीबू, अमरूद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में उन्नत विधियों द्वारा पैदा किए जा सकते है। स्थानीय वनस्पतियाँ जैसे कैर, सांगरी, लसोडा, पीलू, इत्यादि में भी सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है जो सूखे व मौसम परिवर्तन की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने में सक्षम है।

वर्तमान में बदलते मौसम में भी मूलतः रूप से पाई जाने वाली वनस्पतियों में कम तापमान व पाला सहन करने की क्षमता देखी गई है जैसे बेर, खजड़ी, पीलू इत्यादि। कुछ फलदार पौधे जैसे आंवला, लसोड़ा आदि अत्यधिक सर्दी व पाले के प्रकोप से प्रभावित होते हैं इन पौधों के लिए कम तापमान व पाला सहिष्णु प्रजाति को

चिन्हित करने की आवश्यकता है जिससे समस्या का समाधान हो सके।

शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन के आंकड़े से स्पष्ट है कि राजस्थान में सबसे अधिक मसालों की खेती का क्षेत्रफल लगभग 100.1 लाख हेक्टेयर है। इसी प्रकार फल व सब्जियों के क्षेत्रफल एवंम उत्पादन और बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि बढ़ती हुई लगभग 130 करोड़ आबादी की मांग की पूर्ति की जा सके।

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे तरबूज, खरबूजा, ककड़ी, तुरई, लौकी, काचरी, मतीरा, टिण्डा तथा टमाटर, मिर्च, ग्वारफली, सहजन एवं पत्तीदार सब्जियां जैसे मैथी, पालक बहुतायत से पैदा किए जा सकते हैं। स्थानीय वनस्पतियां जैसे काचरी, फूट ककड़ी, मतीरा, ग्वारफली, ग्वारपाठा इत्यादि के उत्पादन तकनीक में सुधार करके व्यावसायिक खेती की जा सकती है क्योंकि इन फसलों में सूखा सहने की अपार क्षमता होती है तथा इनकी बारानी खेती शष्क जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। शुष्क क्षेत्र में स्थापित इस संस्थान ने स्थानीय सूखा सहिष्णु वनस्पतियों की ओर ध्यान दिया है और शोध कर फल एवं सब्जियों की कई उन्नत किस्में विकसित की है। इन किस्मों का उपयोग कर बारानी क्षेत्र के किसान लाभान्वित भी हो रहे है। शुष्क क्षेत्र में कई औषधीय गुणवत्ता वाली वनस्पतियां भी पायी जाती है जिनका व्यावसायिक उत्पादन संभव है जैसे कि ईसबगोल, अश्वगंधा, गुग्गल, सनाय (सोनामुखी) इत्यादि। जीरा, धनिया, मैथी, सौंफ जैसे मसाले वाली फसलों का भी इस प्रदेश में मुख्य स्थान है। राजस्थान में अच्छी गुणवत्ता के धनिया, मेथी, जीरा, सौंफ, अजवायन इत्यादि का उत्पादन तथा बीजीय मासलों का निर्यात भी किया जाता है। इनका बीज उत्पादन कर अच्छा लाभ कमा सकते हैं।

उन्नत किस्मों का उपयोग

शुष्क क्षेत्र में बाग विकास के लिए फल एवं उपयुक्त उन्नत किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए जैसे कि बेर की गोला, सेव, मुंडिया, उमरान, कैथली, बनारसी कड़ाका, गोमाकीर्ति; आँवला के एन.ए. 7 (नीलम), कृष्णा, कंचन, चकैया, एन.ए. 6 (अमृत); बेल की एन.बी. 5, एन.बी. 9; गोमा यशी, अनार की जालौर सीडलैस, मृदुला, गणेश, जी 137, फूले अरक्ता, भगवा एवं खजूर की हलावी, बरही, मेडजूल, जाहिदी, खलास, शामरान, खुनेजी किस्में उत्पादन एवं गुणवत्ता में अच्छी पाई गई हैं। खजूर के पौधों पर पाला/कम तापमान का प्रभाव नहीं पड़ता है नर व मादा पौधे अलग–अलग होते हैं तथा परागण के लिए बाग में नर पौधे (5 प्रतिशत) अवश्य लगाने चाहिए। कई फल व सब्जियों की संकर किस्में उपलब्ध है जिसे लगाकर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

तलिका : बागवानी फसलों की उन्नत किस्में

फसल	उन्नत किस्म	फसल	उन्नत किस्म
बेर	गोमा–कीर्ति, सेब, उमरान, कैथली, थार सेविका	खजूर	हलावी, बरही, खुनैजी, खलास, मैडजुल
अनार	भगवा, सुपर भगवा, फूले अरक्ता, मृदुला, जी–137	करौंदा	थार कमल, मनहर, सुदर्शन, कौंकन बोल्ड
आंवला	एन ए 7, एन ए 6, बलवंत	खिरनी	थार ऋतुराज
इमली	गोमा प्रतीक, योगेश्वरी, प्रतिष्ठान	महुआ	थार मधु
बेल	गोमा यशी, एन.बी. 9, एन.बी. 16, एन.बी. 17, थार दिव्या	जामुन	गोमा प्रियंका, कोंकन बाहडोली, धुपदल
खेजड़ी	थार–शोभा	नींबू	विक्रम सांईशर्वती, प्रमालिनी, पंत लेमन–1
सीताफल	अर्का सहन, ए.पी.के. (सी.ए.–1)	फालसा	शरबती, थार प्रगति

ग्रामीण क्षेत्र में पोषण एवं समाजिक स्तर को सुधारने में भी बागवानी की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन फसलों

से प्रति एकड़ उपज दूसरी फसलें की तुलना में अधिक होती है। प्रति एकड़ अधिक उपज बढ़ने पर अधिक आमदनी प्राप्त होती है और वर्षभर कार्य के अवसर उपलब्ध होते रहते हैं। इन फसलों पर आधारित कई प्रकार के लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं जैसे फल–सब्जी–मसाला परिरक्षण एवं संशोधन उद्योग जिसमें मसाले, अचार, चटनी, सूखे पाउडर, मुरब्बा, कैण्डी इत्यादि आते हैं। इन उद्योग स्थापना से अन्य उद्योगों को भी बढ़ावा मिलेगा जैसे कांच, प्लास्टिक, पैकिंग, वैक्सींग, लकड़ी, कण्टेनर, डिब्बा बन्दी, मोम उद्योग इत्यादि।

सघन रोपण बागवानी एवं छत्रक प्रबंधन

फलों के बाग से अधिक उत्पादन लेने के लिए सघन रोपण बागवानी को अपनाना आवश्यक है इसमें कम दूरी 2 से 4 मीटर प्रति हेक्टेयर अधिक पौधे लगाये जाते हैं। इसके लिए फलों की बौनी किस्में कम फैलाव वाली उपयुक्त होती है। कई बार अधिक उपज देने वाली किस्मों में बाग प्रबंधन खासकर छत्रक का प्रबन्धन करते है।

छत्रक–प्रबन्धन करके प्रति है. फल उपज में वृद्धि की जा सकती है। अलग–अलग पौधों के किस्म में 10–25 प्रतिशत काट–छांट कर प्रबंधन किया जाता है। जिससे नयी वृद्धि शाखाओं पर अधिक संख्या में फूल एवं फल लगें। बेर, अंगूर के पौधों में प्रति वर्ष कटाई–छंटाई की जाती है।

जल प्रबन्धन

शुष्क बागवानी फसलों में जल प्रबन्धन करना अति आवश्यक है क्योंकि शुष्क क्षेत्र में सिंचाई के लिए पानी सीमित है। फसल की आवश्यकतानुसार समय पर विभिन्न आधुनिक तकनीकों का प्रयोग एवं जल बचत करके अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। फलदार पौधों में सिंचाई के लिए बूदं बूंद प्रणाली सबसे उपयुक्त पाई गई है इसी प्रकार अन्य फसलों में स्प्रींकलर द्वारा सिंचाई करने पर पानी की बचत की जा सकती है। सिंचाई के लिए खारे पानी का उपयोग टपक विधि द्वारा किया जा सकता है। बूंद बूंद सिंचाई पद्धति में समतल जमीन के अलावा ऊंचाई एवं निचाई क्षेत्र के लिए भी उपयुक्त है। इस विधि द्वारा लगभग 30–40 प्रतिशत पानी की बचत कर अधिक क्षेत्र में सिंचाई की जा सकती है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन –

शुष्क क्षेत्र की मृदा में पोषक व कार्बनिक तत्वों की कमी पाई जाती है। अतः मृदा जांच करके उचित पोषक तत्वों की उचित मात्रा का प्रयोग कर व लागत खर्च में कमी कर अच्छा उत्पादन किया जा सकता है। बूंद बूंद सिंचाई के माध्यम से ही उर्वरकों का प्रयोग भी आसानी से किया जा सकता है। फलदार पौधों में आयु के अनुसार प्रतिवर्ष एक अथवा दो बार में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

जैविक खेती

आजकल स्वास्थय के प्रति जागरूकता बढ़ने से जैविक उत्पादों का महत्व बढ़ गया है। जैविक फल एवं सब्जी उत्पादन से अन्य की तुलना में थोड़ा कम मिलता है परन्तु इस उत्पादन का बाजार में अधिक मूल्य मिलता है। रोग एवं कीटनाशी दवाओं का प्रयोग न करके उनके स्थान पर प्राकृतिक, हर्बल तथा वानस्पतिक उत्पाद का प्रयोग कर रोग एवं कीटों नियंत्रण किया जा सकता है। आजकल जैविक फल एवं सब्जियों का प्रचलन काफी तेजी से बढ़ रहा है। जैविक तरीके से फल एवं सब्जी का उत्पादन कर किसान अच्छी आय प्राप्त कर सकता है। इस दिशा में सही फसल व अन्य सामग्री के बारे में जानकारी के लिए विभिन्न संस्थानों में किसानों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है। लागत खर्च में कमी कर किसानों की आय दोगुनी करने के लिए बागवानी के क्षेत्र में जैविक खेती करना अच्छा विकल्प हो सकता है।

पौध एवं बीज उत्पादन

बागवानी फसलों की खेती के लिए अच्छी गुणवत्ता के पौद्य एवं बीज की आवश्यकता होती है। आजकल बागवानी के क्षेत्र में पौधशाला, बीज उत्पादन आय की दृष्टि से अच्छा विकल्प है। किसानों को बीज उत्पादन संस्थान से जुड़ कर सब्जी, मसाला एवं फूलों के बीज तैयार कर अच्छा लाभ कमा सकते है।

विविध फसल–प्रणाली

बागवानी के क्षेत्र में उपलब्ध संसाधन का समुचित उपयोग करने के लिए फसल–प्रणाली अपनाने की आवश्यकता है। विभिन्न फसल प्रणाली में वर्ष भर उत्पादन देने वाली फसल एवं किस्मों का चयन करना उपयुक्त होता है। बेर के साथ बीजीय मसालों वाली फसलें उगाना लाभप्रद पाया गया है। फलदार बाग में मधुमक्खी पालन करने से अच्छी फलत (परागण) के अलावा शहद उत्पादन होता है। इसी प्रकार सिंचाई डिग्गी में मछली पालन भी कर सकते है। इस प्रकार समेकित फसल उत्पादन करके किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है।

मूल्य संवर्धित उत्पाद

बागवानी फसलों से अच्छा मुनाफा प्राप्त करने के लिए मूल्य संवर्धित उत्पादन बनाये जाते है। शुष्क क्षेत्रीय फलों से विभिन्न उत्पाद बनाने का प्रशिक्षण लेकर कुटीर उद्योग स्थापित कर सकते हैं या किसी संस्थान से जुड़ कर अपने उत्पाद को बेचकर लाभ कमा सकते है। कुल उत्पादन का लगभग 35 से 40 प्रतिशत फल एवं सब्जियां नष्ट होती है जिसे परिरक्षित पदार्थ बनाकर तथा अच्छी प्रकार से भण्डारण करके कम कर सकते है। शुष्क क्षेत्र में धनिया, मैथी, पालक, मिर्च, सांगरी, लसोडा, काचरी इत्यादि को सुखा कर व पैक कर अधिक समय तक संरक्षित किया जा सकता है। फल एवं सब्जियों को सुखाकर, परिरक्षित पदार्थ बनाकर बे–मौसम उपयोग किया जा सकता है।

उत्पाद एवं विपणन

बागवानी फसल उत्पाद की समय पर तुड़ाई एवं छंटाई कर अच्छी पैकिंग करने पर अच्छा मूल्य मिलता है इसके अलावा बाजार पर अच्दा मूल्य मिलता है। इसके इलावा बाजार में मांग के अनुसार फसल एवं किस्मों का चयन करके उगाना भी शामिल है। उत्पाद क अच्छी पैकिंग के अलावा लेवल (फसल, किस्म, वनज, मूल्य) लगाना भी आवश्यक होता है। खेत से लेकर बाजार तक उत्पाद को अच्दी अवस्था में विक्रय के लिए वाहन सुविधा, मंडी, भण्डार शीत गृह, आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। तभी उत्पाद से अच्छी आया प्राप्त की जा सकती है।

इस प्रकार बागवानी के क्षेत्र में उन्नत किस्मों, नवीन उत्पादन तकनीकों का उपयोग करके अच्छी गुणवत्ता के उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है। आय बढ़ाने में लागत खर्च में कमी तथा विपणन की समुचित व्यवस्था का मुख्य स्थान है। किसानों को उन्नत बीज, तकनीक, कम लागत खर्च में अधिक उत्पादन लेने के गुर की जानकारी देकर आय में वृद्धि की जा सकती है।

तालिका: फसलें एवं उनसे बनाए जाने वाले प्रमुख उत्पाद

क्र.सं.	फसलें	उत्पाद	क्र.सं.	फसलें	उत्पाद
1.	बेर	जैम, स्कैवश, कैंडी	8	लसोड़ा	अचार
2.	खजूर	छुआरा, पिंड, अचार	9	अनार	पेय पदार्थ, अनारदाना
3.	खरबूज और तरबूज	कैंडी, स्कैवश	10	फालसा	स्कैवश, पेय पदार्थ
4.	बेल	कैंडी, शर्बत, पाउडर	11	खिरनी	सूखमेवा
5.	जामुन	शर्बत	12	कैर	अचार, सब्जी
6.	आंवला	मुरब्बा, कैंडी, शर्बत, अचार	13	पीलू	पेय पदार्थ
7.	किन्नों	पेय पदार्थ	14	खेजड़ी	अचार (सांगरी), सब्जी

प्रो. पी. एल. सरोज, आर.एस. सिंह एवं रामकेश मीणा
भाकृअनुप– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर–राजस्थान

शुष्क क्षेत्र में खजूर की खेती

खजूर एक प्राचीन फल वृक्ष है तथा ऐसा माना जाता है कि फलों की खेती में खजूर की खेती सबसे पहले शुरू हुई थी। ईराक में 'उर' नामक जगह इसकी उत्पत्ति के साक्ष्य मिलते है वैसे उत्पत्ति स्थान फारस की खाड़ी माना जाता है। आजादी से पूर्व हमारे देश में पंजाब प्रांत में इसकी खेती बहुतायत में होती थी। अब गुजरात के कच्छ क्षेत्र में अधिकाशतः खजूर उगाया जाता है। इसके अलावा पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में खेती होती है। गर्म–शुष्क जलवायु में उगाया जाने वाला एरीकेसी कुल का फल वृक्ष है, जिसका वानस्पतिक नाम *फीनिक्स डेक्टीलीफेरा* है। खजूर के पौधे एक बीज पत्रीय होने के कारण मूसला जड़ें नहीं होती हैं लेकिन जड़ें एक से दो मीटर भी गहराई तक जमीन में जाती है। इसके पौधों में सूखा, लवणता तथा अत्यधिक शुष्क गर्म वातावरण सहने की क्षमता होती है। परन्तु अच्छी गुणवत्ता के फल उत्पादन के लिए समुचित सिंचाई व्यवस्था आवश्यक होती है। खजूर पौधों के सिंचाई के लिए लवणीय पानी उपयोग में लिया जा सकता है।

खजूर के फल बहुत पौष्टिक व शक्तिवर्धक होते हैं। फलों के गूदे में लगभग 20 प्रतिशत नमी के अतिरिक्त 60–65 प्रतिशत शर्करा, लगभग 2.5 प्रतिशत रेशा, 2.5 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत से कम वसा व खनिज तत्व तथा विटामिन ए, विटामिन बी–1 (थायमीन), विटामिन सी, नियासिन तथा विटामिन बी–2 (राइबोफ्लेबिन) पाए जाते हैं। एक किलोग्राम खजूर के फलों से लगभग 3100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। खजूर के फलों का सेवन रक्तवर्धक तथा कब्ज दूर करने में सहायक होता है। पौष्टिकता के अलावा इसमें औषधीय गुण भी पाये जाते है। इसके फल प्रायः पूर्ण पके अवस्था (पिण्ड) में खाए जाते हैं। कुछ किस्मों के फलों को अधपकी अवस्था (डोका) में जिसमें सर्वाधिक मिठास होने से ताजे फल के रूप में प्रयोग किये जाते है। डोका अवस्था के फलों से अच्छी गुणवत्ता के छुहारे व अन्य मूल्य संर्वधित उत्पाद बनाये जाते हैं। चटनी, स्क्वैस (आर.टी.एस. व अचार, जैम, सीरप बनाया जा सकता है। पूर्ण पके फलों से शर्करा, स्टार्च, सिरका, अर्क, रस, टाफियाँ, मदिरा इत्यादि अनकों उत्पाद बनाए जाते है। डोका अवस्था के फलों से गुठली का उपयोग पशु आहार बनाने के रूप में होता है तथा खजूर की पत्तियों से टोकरी, पखें, झाड़ू व रस्सी इत्यादि बनाने के काम में आती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व जोधपुर क्षेत्र खजूर उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इन जिलों के अतिरिक्त चूरू, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़ व नागौर जिलों के कुछ भाग, पंजाब में अबोहर, फाजिल्का, भंटिडा, हरियाणा में सिरसा, भिवानी, हिसार व गुजरात के कच्छ क्षेत्र में इसकी खेती की व्यापक संभावनाएं हैं। इसकी महत्वता को देखते हुए अभी विदेश से आयातित उत्तक सवंर्धित पौधे शुष्क क्षेत्र कें कई जिलों में लगभग 833 हेक्टेयर क्षेत्र में लगाये गये है। जिनमें बीकानेर जिले में लगभग 250 हेक्टेयर क्षेत्र में खजूर की बरही, मेडजूल, खुनैजी, जामली, सगाई व खलास किस्मों के पौधे लगाये गये हैं जिनमें फलत भी आरम्भ हो चुकी है। तमिलनाडू राज्य के कुछ क्षेत्र जैसे डिंडिगुल, रामनाथपुरम, धरमापुरी में खजूर के पौधे लगभग 809 हेक्टेयर क्षेत्र में लगाये गये है जो फलत में है। गुजरात के कच्छ क्षेत्र में उतक संवर्धित अधिकतर बरही किस्म के पौधे लगाये गये है जो फल उत्पादन अवस्था में हैं। देश के गुजरात राज्य में सबसे अधिक क्षेत्र लगभग 17658 है. में लगे पौधों से लगभग 165632 मिट्रिक टन खजूर फल का उत्पादन होता है। अभी भारत में खजूर फल की मांग के अनुसार पैदावार कम होने के कारण इसका आयात लगभग 31157 मिलियन टन अरब के देशों से होता है वहीं विश्व में मिश्र सबसे अधिक खजूर का उत्पादन व निर्यात करने वाला देश है। खजूर की अधिकांश किस्में, सउदी अरब, ओमान, ईराक, इरान, मिस्त्र, देशों से आयात की गई हैं। गुजरात में कुछ अच्छे पौधो का चयन करके जैसे सलेक्शन 9, 13 कोठो, सोपारी, याकूबी, इत्यादि किस्में निकाली की गई है।

प्रमुख किस्में:

- **हलावी**:– फल डोका अवस्था में पीले, मीठे, औसत वजन 10.6 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होता है। फल जल्दी पक कर तैयार होते हैं। औसत उपज 60–80 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है। फल ताजा खाने एवं मूल्य संर्वधित उत्पाद बनाने के लिए प्रयोग होता है।
- **बरही**:– फल डोका अवस्था में सुनहरे पीले रंग के मीठे एवं स्वादिष्ट होते हैं। औसत वजन 13.7 ग्राम,

कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 31.5 प्रतिशत होता है फल अगस्त के प्रारम्भ से मध्य तक पकते हैं। उपज 80–100 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष।

- **मेडजूलः**– फल डोका अवस्था में पीला नांरगीपन लिए हुए, कसैले, काफी बड़े एवं आकर्षक होते है। औसत वजन 22.7 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 34.5 प्रतिशत तथा फल देरी से पकते हैं। औसत उपज 70–80 कि. ग्रा. प्रति वृक्ष।
- **जाहिदीः**– फल डोका अवस्था में पीले एवं कसैले, काफी ठोस तथा उनका छिलका काफी चिकना एवं सख्त होता है। फल वर्षा होने पर आसानी से खराब नहीं होते हैं। पिंड अच्छे बनते हैं। औसत वजन 9.0 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 35.5 प्रतिशत होता हैं। फल देरी से पककर तैयार होते हैं। औसत उपज 100–125 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष।
- **खलासः**– फल डोका अवस्था में पीले एवं मीठे औसत वजन 15.2 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 25 प्रतिशत तथा परिपक्वता की अवधि मध्यम होती है। औसत उपज 75 कि. ग्रा. प्रति वृक्ष।
- **खुनैजीः**– फल डोका अवस्था में गहरा लाल, मीठे, गूदा कुरकुरा एवं स्वादिष्ट होता है। औसत वजन 10.2 ग्राम तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 43 प्रतिशत होता है फल जल्दी पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 50–60 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष होती है।
- **खदरावीः**– फल डोका अवस्था में पीला–हरापन लिए हुए कसैले, औसत वजन 12.9 ग्राम, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 36 प्रतिशत होती है। परिपक्वता अवधि मध्यम होती है। डोका अवस्था व उसके बाद की अवस्था में फलों को वर्षा व अधिक वातावरणीय नमी से बहुत अधिक हानि होती है। छुहारा व पिंड खजूर के लिए उपयुक्त, वृक्ष बौना एवं औसत उपज 50–60 किग्रा प्रति वृक्ष होती है।

खजूर फलों की वृद्वि एवं विकास अत्यधिक गर्मी पड़ने वाले अप्रैल–मई माह में होता है। इसके पश्चात जून–जुलाई में फल परिपक्व होकर किस्मानुसार तुड़ाई के लिए तैयार होते है। हमारे देश में अधिकांशतः फलों के गुच्छों को अधिकतर डोका (खलाल) अवस्था में ही वृक्षों से काट लिया जाता है। कम वर्षा वाले क्षेत्र में प्रायः डांग अवस्था में कटाई की जाती है। जबकि अरब देशों में खजूर के फल पूर्ण परिपक्व (पिंड अथवा 'तमर') होने पर वृक्ष से काटकर उतारे जाते हैं। उन देशों की भूमध्य सागरीय जलवायु में वर्षा अक्टूबर–नवम्बर के बाद होती है अतः वृक्ष पर ही पूर्ण फल पकने की क्रिया पूरी होकर पिण्ड अवस्था (तमर) आ जाती है। जबकि भारत में फल पकने के समय (जुलाई माह) वर्षा प्रारंभ हो जाने से वृक्ष पर पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता हैं। कभी–कभी वर्षा देरी होने पर जैसलमेर क्षेत्र में वृक्ष पर ही पिण्ड अवस्था आ जाती हैं। कुछ किस्मों के फल डोका अवस्था पर कसैले होते हैं। जिनका उपयोग मूल्य सवंर्धित उत्पाद बनाने में किया जाता है। वैसे भी डोका फल थोड़ा कठोर होने के कारण ताजे फल के रूप में अधिक मात्रा में नहीं खाये जा सकते हैं।

पौध प्रर्वधन एवं रोपण

पौधों का प्रवर्धन वांछित किस्म के अच्छी गुणवत्ता वाले मादा मातृ वृक्षों के सकर्स (अंतःभूस्तारी) द्वारा किया जाता है जिससे कि नव विकसित पेड़ भी मातृ वृक्षों जैसी गुणवत्ता वाले ही हों। खजूर का बीज द्वारा भी प्रवर्धन होता है। लेकिन नर व मादा पुष्प अलग–अलग पौधों पर आते हैं। बीजू पौधों से प्रवर्धन व्यवसायिक तौर पर नहीं होता क्योंकि इसके बीजू पौधें में नर व मादा लगभग 50 प्रतिशत अनुपात में होते है तथा देरी से फलन् तथा उपज व गुणवत्ता में भिन्नता होती है। खजूर के पौधों पर बहुत कम तापमान/पाला का प्रभाव नहीं देखा गया हैं।

उन्नत किस्में	आवश्यक अपेक्षित गुण	उपयोग
हलावी, बरही, खलास, खुनैजी, सेवी, ब्रेम	डोका अवस्था में मिठास का होना।	डोका अवस्था के फल ताजे खाने के लिए
हलावी, जाहिदी, शामरान, खलास	फल तुड़ाई के समय पूर्ण डोका/डांग अवस्था में हों।	पिण्ड खजूर बनाने के लिए
मेडजूल, शामरान, खाद्ररवी, दयारी	फलों में गूदे की मात्रा अधिक हो।	छुआरा के लिए
जगलूल, हयानी, अमसोक, ब्रेम, सदामी, सूरिया, अन्य स्थानीय किस्में।	आकर्षक रंग, रसीला, महक वाले लाल व पीले रंग के फल। ताजे हरे व पीले फल (सब्जी व अचार के लिए)	खजूर के पेय एवं परिरक्षित उत्पाद जैम, चटनी अचार बनाने के लिए

बाग के किनारे बीजू पौधों की रोपाई का उपयोग फसल सुधार/किस्म चयन तथा पराग कण उत्पादन के लिए किया जा सकता है।

खजूर के पौधों को उचित दूरी पर लगाना बहुत आवश्यक हैं क्योंकि इसका वृक्ष कम से कम 40–50 वर्षों तक फलत देता है। पौधों को प्रायः कतार तथा पौधे से पौधे की 8x8 मीटर की दूरी पर लगाते है। वैसे पौधें से पौधे की दूरी आठ से दस मीटर तक रखा जा सकता है, जिससे कि पौधों का समुचित फैलाव तथा कतारों के बीच में किये जाने वाले कृषि क्रियाएं आसानी से की जा सके इस प्रकार एक हैक्टेयर खेत में लगभग 160 पौधें लगाये जा सकते है। खेत में परागण हेतू नर किस्मों के पौधों का होना अति आवश्यक है इसके लिए बाग में लगभग 5 प्रतिशत नर पौधे अवश्य लगाये जाने चाहिए। पौधों की रोपाई सिंचाई सुविधा होने पर फरवरी–मार्च माह में किया जा सकता है लेकिन खजूर के पौध रोपण का उचित समय अगस्त/सितम्बर उपयुक्त पाया गया है। नव रोपित पौधों का समय–समय पर सिंचाई, निराई गुड़ाई करने से पौधें अच्छी प्रकार से पनपते है। खजूर के पौधों में प्रतिवर्ष सड़ी हुई गोबर की खाद तथा नाइट्रोजन, फासफोरस व पोटाश पौधे की आयु अनुसार देना तथा नत्रजन की मात्रा को दो भाग में बांटकर अक्टूबर–नवम्बर व फरवरी–मार्च में देना चाहिए।

सिंचाई – खजूर के वृक्षों की समय – समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सर्दियों में सप्ताह में 1 बार तथा गर्मियों में सप्ताह में 2 बार सिंचाई करनी चाहिए। पुष्पन से 15 दिन पहले सिंचाई बहुत आवश्यक है तथा फल बनने से फल पकने तक नियमित रूप से सिंचाई ड्रिप प्रणाली द्वारा करनी चाहिए अन्यथा फलों के आकार, वजन एवं गुणवता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोलिथिन अथवा पलवार (मल्च) बिछाने से भूमि में मृदा नमी संरक्षण के साथ–साथ फलों की गुणवता में सुधार देखा गया है।

पोषण– खजूर के वृक्षों से उचित उपज एवं गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त करने हेतु समुचित पोषण की अत्यधिक आवश्यकता है। इस हेतु पूर्ण फलत में आए हुए 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के वृक्षों को प्रति वर्ष भूमि में बने थावलों में 1.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 0.75 कि.ग्रा. फास्फेट, 0.5 कि.ग्रा. पोटेशियम, 50–60 कि.ग्रा. गोबर का सड़ी हुई खाद देना चाहिए। नाइट्रोजन हेतु यूरिया, फास्फेट हेतु सिंगल सुपर फॉस्फेट, पोटेशियम हेतु म्यूरेट आफ पोटाश प्रयोग में लाया जा सकता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं अन्य उर्वरकों, गोबर की खाद एवं कल्चर मिश्रण की पूरी मात्रा अक्टूबर–नवम्बर माह में देवें तथा नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फरवरी/मार्च के महीने में देवें। उर्वरक एवं गोबर की खाद मुख्य तने से 1–1.5 मीटर दूरी पर 30 से.मी. गहरी खाई खोदकर मिट्टी में मिलाकर देवें।

अन्तः फसलें उगाना– खजूर के पौधों के कतारों के बीच में दलहनी/मसाला, फूल, सब्जियां इत्यादि उगाई जा सकती है। शुष्क क्षेत्र में बाग में वर्षा आधारित फसलें जैसे ग्वार, मोठ आदि उगाकर भूमि कि उर्वकता बढाने के साथ ही अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

परागण– खजूर के पौधों में फरवरी–मार्च में नर व मादा पुष्पगुच्छ अलग–अलग पौधों पर आते हैं तथा अच्छी फलत के लिए परागण कराना अतिआवश्यक होता है। परागकण के लिए नर किस्म जैसे घनामी, एल इन सिटी या बीजू पौधे बाग में लगभग पांच प्रतिशत होने चाहिए। खजूर में नर एवं मादा पुष्पक्रम अलग–अलग फल वृक्षों पर होते हैं तथा परागण कृत्रिम रूप से किया जाता है। इसके लिए परागकणों को रूई के फाहों की सहायता से मादा पुष्पक्रमों पर पुष्पों के खिलने के तुरन्त पश्चात प्रातःकाल छिड़क कर अथवा नर पुष्प क्रमों के साथ बांध कर किया जाता है। इस क्रिया को 2–3 दिन तक दोहराना चाहिए। विकल्प के तौर पर नर पुष्पक्रम की लड़ियां खुले मादा पुष्पक्रम में उल्टी करके हल्की से बांध दी जाती हैं तथा इस प्रकार धीरे–धीरे परागकण मादा पुष्पक्रम पर गिरते रहते हैं।

वृक्षों की सधाई एवं कॉट–छांट– खजूर के पौधों में प्रायः सधाई की आवश्यकता नहीं होती। इसमें तना सीधा बढ़ता है तथा शाखाएं भी नहीं निकलती हैं। समय – समय पर आवश्यकतानुसार अधिक पुरानी अथवा सूखी, रोग व कीट ग्रसित पत्तियों का निकालने रहना चाहिए। पुरानी पत्तियों में प्रकाश संशलेषण क्षमता कम हो जाती है। अच्छी फलत हेतु एक वृक्ष पर लगभग 80–100 पत्तियॉं होनी चाहिए। जैसे– 2 पौधे की आयु बढ़ती है मुख्य तने से पौधे की पत्तियां काट देनी चाहिए जिससे कि वह उद्यान में विभिन्न अन्तःशस्य क्रियाओं में बाधक न बने। पत्तियों की कटाई का समय फलों की तुडाई के पश्चात दिसम्बर तक होता हैं। पत्तियों की कटाई के अलावा वृक्ष के समुचित विकास हेतु उसमें से निकलने वाले अन्तःभूस्तारी को पूर्ण रूप से विकसित होने के पश्चात शीध्र से शीध्र निकाल देना चाहिए तथा उन्हें खजूर के नये उद्यान विकसित करने में लगाना चाहिए। ऐसा करने से खजूर का वृक्ष उनके द्वारा लिए अतिरिक्त आवश्यक तत्वों के पोषण से मुक्त हो जाता है। खजूर में पुष्प गुच्छों के विकसित होने के पश्चात पत्तियों के डठलों

से कांटे निकालना आवश्यक है इससे उनके आस–पास के विभिन्न कार्य जैसे परागण, फल गुच्छों की छटाई, डंठल मोडना, छिड़काव, थेलियां लगाना, फल कटाई इत्यादि सुगमता की जा सके।

कीट एवं व्याधि नियन्त्रण– खजूर के वृक्षों को दीमक, स्केल कीट इत्यादि से हानि पहुंचती है। स्केल कीट पत्तियों का रस चूसकर हानि पुहंचाते है इसके नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावित/पत्तियों को काट देना चाहिए तथा डाई मिथोएट 1.5 मि. ली. प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। दीमक के नियन्त्रण हेतु क्लोरोपइरीफोस 1 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से जमीन में थावलों में देना चाहिए। फल पकने के समय मैना, तोता, बुलबुल, इत्यादि पक्षी बहुत हानि पहुंचाते हैं। इनके नियन्त्रण हेतु फल गुच्छों को डोका अवस्था प्रारम्भ होने पर जालियों (3x3 मि.मी जाल से बनाएं), बाजार में उपलब्ध ग्रो–कवर/नेट की थैलियों में ढकने से नुकसान को कम किया जा सकता है। खजूर में ग्रेफिओला लीफ स्पाट या स्मट बीमारी अधिक आर्द्रता वाली स्थिति में होती है। पत्तियों को दोनों सतह पर अंसख्य भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं तथा पत्तिया सूख जाती है प्रभावित पत्तियों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए तथा कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के धोल का 2–3 छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

फलों की तुड़ाई एवं उपज– खजूर फल वृक्ष को पूर्णफलत में आने में 5–6 वर्ष का समय लग जाता है तथा इसके पौधों से 40–50 वर्षों से अधिक समय तक उत्पादन लिया जा सकता है। खजूर के फल पूर्ण डोका अवस्था अथवा उसके पश्चात तुड़ाई योग्य होते हैं। जब पूरा गुच्छा परिपक्व हो जाता है तो उसे डंठल समेत काट लिया जाता है। अपरिपक्व फल तुड़ाई के पश्चात नहीं पकते पूर्ण रूप से फलत में आए वृक्ष से (10 वर्ष अथवा अधिक आयु) औसत प्रति वृक्ष प्रति वर्ष 60–120 कि.ग्रा. ताजे फलों की उपज प्राप्त की जा सकती है जो किस्म, जलवायु तथा बाग–प्रबधंन पर निर्भर करता है।

फलों का मूल्य संवर्धन

खजूर से जैम, स्क्वैश, आ. टी. एस, चटनी एवं छुहारा बनाने के लिए भी फलों को पूर्ण डोका अवस्था में ही तोड़ा जाता है। डोका फल के गूदे से स्वादिष्ट चटनी, जैम, स्क्वैस (पेय) अचार आदि परिरक्षित पदार्थ तैयार कर अधिक समय तक भण्डारित कर रख सकते हैं जब कि डोका फल दो–तीन दिन में ही अधिक नमी के कारण खराब होने लगते हैं। शर्करा की अधिक मात्रा होने के कारण पिण्ड खजूर और छुहारा को लम्बे समय तक सुरक्षित रख कर उपयोग में लाया जाता है। खजूर के फलों से मदिरा भी बनाई जाती हैं। फल गूदे को सूखाकर इससे बेकरी उत्पाद, स्वादिष्ट, पौष्टिक बिस्कुट भी बनाया जा सकता है।

इस प्रकार उन्नत तकनीक से खजूर की खेती कर बागवानी विकास, पर्यावरण संरक्षण के साथ ही अच्छा मुनाफा प्राप्त कर सकते है।

आर. एस. सिंह एवं रामकेश मीणा
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान,
बीकानेर–334006

राष्ट्रभाषा राष्ट्र की धरोहर होती है !

बेल की उन्नत बागवानी

बेल एक औषधीय गुणों से भरपूर फल वृक्ष है, जो कि भारत का देशज है। प्रतिकूल जलवायु में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। आज के इस बदलते परिवेश में भारत के लोग औषधीय फलों के प्रति अधिक जागरुक हो गये है। ऐसे में बेल की बागवानी अधिक उपयोगी हो गई है। अतः इसकी बागवानी को बढावा देने की आवश्यकता है। बेल भारत के प्राचीन फलों में से एक है। बेल के पंचांग (जड, छाल, पत्ते, शाख एवं फल) औषधी के रुप में एक बहुत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण फलवृक्ष है। बेल के औषधीय गुणों का वर्णन यजुर्वेद, जैन साहित्य, उपवन विनोद, चरक संहिता और बृहत संहिता में विस्तृत रूप से मिलता है। बेल में 100 से अधिक रासायनिक प्रदार्थ पाये जाते है जैसे की मार्मलोसीन, सोरोलीन, कोमरीन, सिटाल, मार्मीन इत्यादि जोकि विभिन्न रोगों में लाभदायक है। परीक्षणों के परिणाम से यह निष्कर्ष निकला कि बेल शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र के लिए एक महत्त्वपूर्ण फलवृक्ष है। बेल को श्रीफल एवं दिब्य फल के नाम से भी जाना जाता है। बेल के फलों के सेवन करने से ह्रदय को ताकत और दिमाग को ताजगी मिलती है। बेल के सेवन से पेट से संबंधित अनेक बिमारियों से बचा जा सकता है।

बेल अपनी विशेषताओं, जैसे प्रति इकाई उच्च उत्पादकता, विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि में उगाने हेतु उपयुक्तता, पोषण तथा औषधीय गुणों से भरपूर होना, विभिन्न प्रकार की परिरक्षित पदार्थ बनाने हेतु उपयुक्त होना एवं अधिक समय तक भण्डारण क्षमता के कारण 21वी सदी में प्रमुख फल के रुप में स्थापित किया जा सकता है। उत्तर भारत में इस का उपयोग गर्मी के महीने में बहुतायत से किया जाता है। लेकिन पश्चिमी भारत के लोग ज्यादातर इस का उपयोग धार्मिक रुप से ही करते है जबकि इसकी वृद्धि, विकास, फलन एवं उत्पादन के मुल्यांकन से यह ज्ञात हुआ कि बेल की बागवानी वर्षा आधारित अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

प्रस्तुत आलेख में शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र में बेल की वर्षा आधारित बागवानी का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

भूमिः बेल किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, परन्तु उपयुक्त जल निकास युक्त बुलई दोमट भूमि, इसकी खेती के लिये अधिक उपयुक्त है। क्षतिग्रस्त जमीन, जैसे–ऊसर, बंजर, कंकटीली, खादर एवं बीहड़ भूमि में भी इसकी खेती सफलजापूर्वक की जा सकती है। वैसे तो बेल की खेती के लिए 6–8 पी.एच. मान वाली भूमि अधिक उपयुक्त होती है, परन्तु एसी भूमि में, जिसमें विनमयशील सोडियम 20–30 प्रतिशत क्षारीयता स्तर (पी. एच.) मान 9 तथा विद्युत चालकता 6 म्होज प्रति सें.मी. तक हो, बेल की व्यावसायिक खेती की जा सकती है।

जलवायुः बेल एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है, फिर भी इसकी बागवानी उष्ण जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1200 मीटर ऊँचाई तक और 4–46 डिग्री सेल्सियस तापमान तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। प्रायः

इसके पेड की टहनियों पर काँटे पाये जाते है। अप्रैल–मई की गर्मी के समय इसकी पत्तियाँ गिर जाती है, जिससे पौधों में शुष्क जलवायु के सहन करने की क्षमता बढ जाती है। एसे क्षेत्र जहाँ पाला पडता हो या जहाँ पर जमीन में पानी एकत्रित होता हो एसी जगहों पर इनकी खेती करने में कठिनाई होती है।

किस्मे: बेल में अत्यंत जैव विविधता पाई जाती है। कृषि विश्वविद्यालयों एवं भा.कृ.अनु.प.के अनुसंधान संस्थाओं की चयनित किस्मों के प्रचलन में आने के कारण पूर्व में विकसित किस्मों, जैसे सिवान, देवरिया बडा, कागजी इटावा, चकिया, मिर्जापुरी, कागजी, गोण्डा आदि के रोपण की संस्तुति अब नहीं की जा रही है। अर्धशुष्क क्षेत्र में कुछ प्रमुख किस्मों का वृद्धि विकास, उपज तथा फल के गुणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित प्रकार से है।

नरेन्द्र बेल– 5 : इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए होते है। फल सिरे पर थोडा चपटे, मध्यम आकार (11.50–12.00सें.मी.), मीठे स्वाद (32–36^{0} ब्रिक्स) तथा कम बीज वाले होते हैं। इनका छिलका (1.7मि.मी.) बहूत पतला होता है। गूदा कम पतले रेशेयुक्त, मुलायम और अच्छे स्वाद वाला होता है। फलों का औसत वजन 900–1200 ग्रा. तक होता है। अर्धशुष्क क्षेत्र में आठ साल के पौधे से औसत उपज 58.25 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक होती है।

नरेन्द्र बेल –7 : इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई तथा अपेक्षाकृत अधिक फैलाव लिए होते है। फल के सिरे गोल चपटे काफी बडे आकार (18.25x22.50 सें.मी.) के होते है। फलों का वनज 2.5 –4.5 कि.ग्रा. तक का होता है। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है। आठ साल के पौधें से औसत उपज 42.70 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक होती है। यह फल परिरक्षित पदार्थ बनाने के लिये उपयुक्त पाई गई है।

नरेन्द्र बेल–9 : इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिए घने होते है। फल मध्यम आकार में (16.00x13.50 सें.मी.) गोल, अण्डाकार तथा अधिक मिठास युक्त (34–40^{0} ब्रिक्स) होते हैं। फलों का औसत वजन 1.2–1.8 कि.ग्रा. तक होता है तथा फलों का छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है। गूदे में रेशे एवं बीज की मात्रा कम पायी जाती है। अर्धशुष्क क्षेत्र में आठ साल के पौधे से औसत उपज 70–80 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक होती है।

पंत सिवानी: इस किस्म के पेड ऊपर की तरफ बढने वाले फैलावदार एवं घने होते है। फल लम्बे अण्डाकार (18.50x15.00 सें.मी.), प्रति फल भार 1.5–2.5 कि.ग्रा., मध्यम पतला छिलका, गूदा अधिक (70–72%), रेशा अधिक, अच्छी मिठास (34–35^{0} ब्रिक्स) एवं स्वादिष्ट होते है। फलों की भंण्डारण क्षमता अपेक्षाकृत अच्छी होती है तथा आठ साल के पौधें से औसत उपज 54.12 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक पायी जाती है। इस पेड़ पर काँटे बहुत कम या तो नहीं पाये जाते हैं।

पंत अर्पणा: इस किस्म के पेड घने तथा मध्यम ऊँचाई लिए होते है। इसकी शाखायें नीचे की तरफ लटकती रहती है। पत्तियाँ बडी, गहरे रंग एवं नाशपाती की तरह होती है। पेडों पर काँटे भी कम पाये जाते है। फल गोलाकार (13.00 x 12.00 सें.मी.) एवं 0.8 से 1.10 कि.ग्रा. भार के पतले छिलके वाले होते है। पकने पर फलों का रंग हल्का पीला होता है। लिसलिसा पदार्थ तथा बीज अलग थैलियों में बंधा होता है, जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। अतः यह किस्म प्रोसेसिंग के लिए ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। फलों का गूदा मध्यम मीठा (34^{0} ब्रीक्स) स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है। आठ साल के पौधे से औसत उपज 51.23 कि.ग्रा. तक प्राप्त होता है।

पंत उर्वशी : इस किस्म के पेड घने, वृद्धियुक्त एवं लम्बे होते है। यह एक मध्यम समय (मई) में पकने वाली किस्म है। फलों का आकार गोल (14.50 सें.मी ग 17.10 सें.मी.) तथा औसत प्रति फल भार 1.9 कि.ग्रा. तक होता है। छिलका मध्यम पतला, गूदा मीठा (32^{0} ब्रिक्स) स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 68.5 प्रतिशत एवं रेशे की मात्रा कम होती है। आठ साल के पौधें से औसत उपज 40.65 कि.ग्रा. तक की होती है।

पंत सुजाता: इस किस्म के पेड मध्यम आकार, घने एवं फैलने वाले होते है। यह किस्म मई में पकती है। फल गोल तथा दोनों सिरे चपटे होते है। फलों का औसत भार 0.9–1.2 कि.ग्रा., छिलका हल्का पीला एवं पतला, गूदा मीठा (30^{0} ब्रिक्स) तथा कम रेशायुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 70 प्रतिशत तक पायी जाती है। आठ साल के पौधें से औसत उपज 76.13 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक होती है।

सी.आई.एस.एच.बी–1: इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई तथा उपर की तरफ बढने वाले एवं कम फैलाव लिये होते है। फल, आकार में अण्डाकार गोल, लम्बाई 15–17 सें.मी., गोलाई 39–41सें.मी. तथा अधिक मिठासयुक्त (35–38^{0} ब्रिक्स) होते है। फलों का औसत वजन 1.10 कि.ग्रा. तथा छिलका पतला (0.17– 0.18 सें.मी.) होता है। फलों में रेशे कम और बीज की मात्रा

सी.आई.एस.एच.बी–1 के फल

अधिक पायी जाती है। आठ साल के पौधें से औसत उपज 68. 27 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जा सकती है।

सी.आई.एस.एच.बी –2: इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई वाले एवं अधिक फैलाव लिये होते है। फल, आकार में बडे, लम्बाई 16.00 सें.मी. एवं गोलाई 14.00 सें.मी. एवं लम्बे गोल होते है। फलों का वजन 1.7–2.5 कि.ग्रा. तक होता है। फल अधिक मिठासयुक्त (30–34^0 ब्रिक्स) एवं मोटे छिलके वाले होते है। फलों में रेशे एवं बीज की मात्रा काफी कम होती है। इस किस्म के आठ साल के पौधे की औसत उपज 48.75 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जा सकती है। यह किस्म अर्धशुष्क क्षेत्रों में जून में पकना प्रारंभ करती है। इसमें फलों को सितम्बर तक पेड़ पर रखा जाता है।

गोमा यशी : इस संस्थान ने बेल की एक उत्तम प्रजाति का चयन पद्धति से विकास किया है जिसके पौधे का आकार अपेक्षाकृत बौना है इस पेड पर काँटे बहुत कम या तो नही पाये जाते है। फल का वजन अनुरुप लगभग 1.41 कि.ग्रा. है। इस के फलों का टी.एस.एस. 35–39 ब्रिक्स है। बीज एवं रेशे की मात्रा बहुत कम तथा

गोमा यशी :फलों से लदी हुई डाली

छिलका बहुत पतला (0.16 सें.मी.) है। गूदा पकने के बाद छिलके से अलग हो जाता है। जिसको आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है। अर्धशुष्क क्षेत्र में बारानी खेती से आठ साल के पौधे से 65–75 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते है। गूदे की मात्रा 72–76 प्रतिशत है। फल स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होते है और इसके गुदे को चम्मच से भी खाया जा सकता है।यह प्रजाति बारानी खेती में सघन बागवानी (5मी.x5मी.) के लिए उपयुक्त पाई गई है।

थार दिव्य : जिसके पौधे ओजस्वी तथा पेड़ पर काटे बहुत कम होते है। फल का वजन पारिवारिक जरुरतों के अनुरुप लगभग 1.51 से 2.50 कि.ग्रा. तक होता है। फलों का रंग पीला, आकार गोललम्ब एवं आकर्षक होते है। फल के गूदे का टी.एस.एस. 38^0 ब्रिक्स से अधिक होता है। बीज की मात्रा बहुत कम तथा छिलका मध्यम पतला (0.19 सें.मी.) है। अर्ध शुष्क क्षेत्र में बारानी खेती से आठ साल के पौधे से 68–80 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते है। गूदे की मात्रा 72–74 प्रतिशत है। फल स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होते है। इसके फल संरक्षण पदार्थ (पावडर) तथा उच्च कोटि का शरबत बनाने के योग्य पाया गया है।

थार दिव्य : फलों से लदी हुई डाली

थार नीलकंठ: इसके पौधे मध्यम आकार तथा पेड पर कांटे बहुत कम होते है। फल का वजन लगभग 1.51 कि.ग्रा. तक होता है। फलों का रंग पीला, आकार गोल लम्बा एवं आकर्षक होते है। फल के गूदे का टी.एस.एस. 41.20^0 ब्रिक्स से अधिक होता है। बीज की मात्रा बहुत कम (120.00) तथा छिलका मध्यम पतला (0.18 सें.मी.) है। अर्ध शुष्क क्षेत्र में बारानी खेती से 8 साल के पौधे से 75.67 कि.ग्रा. तक फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते है। गूदे की मात्रा 72.75 प्रतिशत है। फल स्वादिष्ट, सुवासयुक्त, सुगंधयुक्त एवं बहुत मिठासयुक्त होते है। इसके फल

थार नीलकंठ : फलों से लदी हुई डाली

संरक्षण पदार्थ जैसे स्केवास, पाउडर तथा उच्च कोटि का शरबत बनाने के योग्य पाया गया है। इसी लाभकारी विशिष्टताओं की वजह से थार नीलकंठ प्रजाति के पौधों को भारत के शुष्क एवं अर्ध शुष्क बारानी क्षेत्रों में लगाने हेतु संस्तुति की जाती है।

प्रवर्धन : बेल के पौधे मुख्य रुप से बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। बीजों की बुवाई फलों सें निकालने के तुरन्त बाद 15–20 सें.मी. की ऊँची एवं 1 ग 10 मी. की क्यारियों (नर्सरी बेड) में 1–2 सें.मी. की गइराई पर की जाती है। बुवाई का उत्तम समय मई–जून का महीना होता है। व्यवसायिक स्तर पर वेल की खेती हेतु पौधों को चश्मा (पैच) विधि से तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में मई जून माह में पैबन्दी चश्मा विधि द्वारा 80–90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। स्वस्थाने (इन–सीटू) पैच चश्मा (पैच) विधि से 98 प्रतिशत से ज्यादा सफलता वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्राप्त की जा सकती है और सांकुर डाली की वृद्धि भी अच्छी होती है। यही विधि एसे क्षेत्रों के लिए उत्तम पाइ गई है। कलिका को 1–2 महीने की शाख से लेना चाहिए तथा पुराने बेल के बीज पौधे पर ध्रुवता को ध्यान में रखते हुए चढाना चाहिए। पॉली एवं नेट हाऊस की सहायता से कोमल शाख बंधन तकनीक द्वारा बेल का प्रवर्धन साल के अन्य महीनों में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस विधि में क्लेफ्ट या वेज विधि से ग्राफ्टिंग करके 70–80% तक सफलता प्राप्त कीजा सकती है।

गड्ढे की तैयारी एवं पौध रोपण : बेल के पेडों की रोपायी 6–8 मीटर की दूरी पर मृदा उर्वरता के अनुसार करनी चाहिए। रोपण हेतु जुलाई–अगस्त माह अच्छा पाया गया है। पौधे लगाने के एक माह पूर्व 1 घन मी. के गड्ढे तैयार कर लेते है। यदि जमीन में कंकड की तह हो तो उसे निकाल देना चाहिए। इन गड्ढों को 20–30 दिनों तक खुला छोड़ कर 3–4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद, गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऊसर भूमि में 20–25 कि.ग्रा. बालू तथा पी.एच.मान के अनुसार 5–8 कि.ग्रां. जिप्सम/पाइराइड भी मिला कर 6–8 इंच ऊँचाई करना उपयुक्त होता है। शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो वहाँ स्वस्थाने बाग स्थापन विधि को प्रोत्साहित करना चाहिये।

सघन बागवानी

बेल की विभिन्न किस्मों एवं जननद्रव्यों में विभिन्नता पाई जाती है। जिसमें कुछ पौधे कद में छोटे होते है जैसे गोमा यसी पंत अपर्णा और एन.बी.–5 इन किस्मों की से उत्पादन के साथ साथ आमदनी भी बढाई जा सकती है। सघन बागवानी से पूर्ण विकसित पौधों से एक हेक्टेयर से दसवें साल 1.75 से 2.5 लाख शुद आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

सघन बागवानी (5मी x 5मी)

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग : पौधों की अच्छी बढवार, अधिक फलन एवं पेडों का स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक पौधे में 5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्रा. नत्रजन, 25 ग्रा. फास्फोरस एवं 50 ग्रा. पोटास की मात्रा प्रति वर्ष डालनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा दस वर्ष तक गुणित अनुपात में बढाते रहना चाहिए। इस प्रकार 10 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष को 500 ग्रा. नत्रजन, 250 ग्रा. फास्फोरस और 500 ग्रा. पोटाश के अतिरिक्त 50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद डालना उत्तम होता है। ऊसर भूमि में लगाये गये पौधों में प्रायः जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः ऐसे पेडों में 250 ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति पौधे की दर से उर्वरकों के साथ डालना चाहिये या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव जुलाई, अक्टूबर एवं दिसम्बर माह में करना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों की पूरी मात्रा जून–अगस्त माह में डालनी चाहिए। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो उनमें खाद एवं उर्वरक के साथ 100 ग्राम/वृक्ष बोरेक्स (सुहागा) का प्रयोग करना चाहिये।

सिंचाई : बेल के नये पौधों को स्थापित करने के लिए एक दो वर्ष सिंचाई की आवश्यकता पडती है। स्वस्थापित पौधे बिना सिंचाई के भी अर्धशुष्क क्षेत्रों अच्छी तरह से बागवानी कर सकते है। गर्मियों में बेल का पौधा अपनी पत्तियों गिरा कर सुषुप्ता अवस्था में चला जाता है और इस तरह यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई की सुविधा होने पर मई–जून के महीनों में नई पत्तियों आने के बाद 20–30 दिनों के अन्तराल पद दो सिंचाई करनी चाहिए। वैसे बेल की बारानी खेती अर्धशुष्क क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है।

पलवार (मल्चिंग)

पलवार (पैडीस्ट्रा, घास, भूसी इत्यादि) से पौधों के बेसिन में करने से जडों के पास नमी बनी रहती है। बारानी खेती के लिए जैविक पलवार पौधे के तने पेड की चारो तरफ 4 वर्गमीटर में 20 से.मी. मोटी पलवार करने से बेसिन की मिट्टी में रेंचुआ और सूक्ष्मजीवों की मात्रा बढ़ जाती है तथा मिट्टी की नमी बरकरार रहती है। पौधे के विकास तथा पैदावार पर अनुकूल प्रभाव पडता है।

पैडीस्ट्रा पलवार (मल्चिंग)

वृद्धि एवं आच्छादन (केनोपी) का प्रबंधन

फल वृक्षों की सिमित जगह में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए आच्छादन प्रबंधन अति आवश्यक है ताकि सघन बागवानी से पौधों में हवा और धूप उचित मात्रा में मिलती है साथ ही साथ उनकी बढवार को भी नियंत्रित किया जा सके। बेल के पौधे को इच्छानुसार घेराव (केनोपी) का प्रबंधन किया जा सकता है। इस पौधे की डालियों को जब पौधा पत्तियाँ गिरा चुका हो उस समय आवश्यकतानुसार काट देना चाहिए। कटे हुए भाग के नीचे से नई शाखाएँ निकलती है जिससे पौधे का घेराव घना हो जाता है। जिससे सूर्यताप से फल के झुलसने की संभावना कम हो जाती है। पौधों की सधाई, सुधरी प्ररोह विधि से करना उत्तम होता है। सधाई का कार्य शुरु के 2–4 वर्षो में ही करना चाहिए। मुख्य तने को 60 से.मी. तक अकेला रखना चाहिए। तत्पश्चात 4–6 मुख्य शाखायें चारों दिशाओं में बढ़ने देनी चाहिए। बेल के पेडों में विशेष सधाई की आवश्यकता पडती है परन्तु सूखी तथा कीड़ों एवं बीमारियों से ग्रसित तहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

अन्तर्सस्शीय फसलें: आरंभमें इसके बाग में अन्तर पाक की फसले भी ले सकते है। वर्षा आधारित बागवानी में कददुवर्गीय सब्जियों जैसे कि लौकी, कददु, करेला, खीरा इत्यादि तथा भिन्डी, ग्वार उगाकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अन्तः फसल लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अन्तः फसलें ऐसी हों जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता न हो, अन्यथा मुख्य फसलें प्रभावित होती हैं। इसके अनुपजाऊ भूमि में लगाये गये बागों में सनई अथवा ढेंचा की फसलें लगा कर उन्हें वर्षाऋतु में पलट देने से भूमि की दशा में भी सुधार किया जा सकता है।

अन्तः फसलें: बेल + भिन्डी

रोग एवं कीट :

रोग

बेल कैंकर : यह रोग जैन्थोमोनस विल्वी बैक्टीरिया द्वारा होता है। प्रभावित भागों पर नीले धब्बे बनते है जो बाद में बढ कर भूरे रंग के हो जाते है। समय वृद्धि के साथ में पूर्व प्रभावित भाग का ऊतक गिर जाता है और पत्तियों पर छिद्र बन जाते है। इस रोग की रोकधाम के लिये स्टेप्टोसाइक्लीन (200 पी पी एम) को पानी में घोल कर 15 दिनों के अन्तराल पर छिडकाव करना चाहिए।

पत्तियों का काला धब्बाः बेल की पत्तियों पर दोनों सतहों पर काले धब्बे बन जाते हैं जिनका आकार आमतौर पर 2–3 मि.मी. का होता है। इन धब्बों पर काली फफूँदी नजर आती है जिसे इसारियोप्सीस कहते है। इसकी रोकथाम के लिए जब नई पत्तियाँ निकल रही हों तब बैविस्टीन (0.1%) का 2 से 3 छिडकाव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

कीट : बेल को बहूत कम कीट नुकशान पहुँचाते है। पर्ण सुरंगी एवं पर्णभक्षी ईल्ली हानि पहुँचाते हैं। यह पेड की पत्तियों का काट कर नुकशान पहुँचाते हैं। इन कीटों की रोकथाम हेतु रोगर (0.5%) या थायोडान (0.7%) का छिडकाव एक सप्ताह के अन्तराल पर करना चाहिये।

फलों का झूलसना एवं फलों का फटनाः सुखे क्षेत्र में अधिक तापमान की वजह से फलों छिलके भूरे तथा काले पड़ जाता हैं। कभी कभी तो गूदे पर भी इसका प्रभाव पडता हैं। फलों के जले भाग पर सूर्य की किरणें लम्बे समय तक पडती हैं। छिलके का तपमान वातावरण की तुलना में 9 से 11 डिग्री सेल्सियस ज्यादा हो जाता हैं। इसके नियंत्रण हेतु केनोपी मेनेजमेन्ट से काफी हद तक रोका जा सकता हैं। इसका संबन्ध जमीन तथा जलवायु सें भी हो सकता है। यह जमीन में नमी की अनियमिता और सूक्ष्म तत्त्वों की कमी से होता हैं। बेल के बगीचे का अच्छे तरीके से प्रबंधन करने से काफी हद तक इस सम्स्या से बचा जा सकता है। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो उनमें खाद एवं उर्वरक के साथ 100–150 ग्राम/वृक्ष बोरेक्स (सुहागा) का प्रयोग करना चाहिये।

फलों का झूलसना

फलों का फटना

फलों का गिरना/आन्तरिक विगलनः बेल के छोटे फल वर्षा में बहुतायत में गिरते है, साथ ही साथ बाह्य त्वचा में हल्की फटन भी पायी जाती है तथा वे फल तेजी से सड़ जाते है। ऐसे फलों के अन्दर एस्परजिलस फफूँद विकसित होती है। बेल के बडे फल अप्रैल–मई माह में बहुतायत में गिरते है। गिरे बेलों में आंतरिक विगलन के लक्षण पायें जाते है। साथ ही बाह्य त्वचा में हल्की फटन हो जाती है। तथा वे फल तेजी से सड़ जाते है तथा अन्दर का गूदा अधिक मुलायम एवं तीक्ष्ण गन्धवाला हो जाता है। इसके नियंत्रण हेतु फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिये जिससे फल जमीन पर न गिरें एवं फलों की त्वचा पर फटन न होने पाये साथ ही ऐसे फल मृदा के संपर्क में भी नहीं आने चाहिए। इसके नियंत्रण के लिए जब फल छोटे हों, बाविस्टीन (0.1%) का दो छिडकाव 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए। पश्चिमी भारत के अर्धशुष्क क्षेत्रों में इसकी समस्या बहुत कम पाई जाती है।

फलों की तुडाई एवं उपजः अर्धशुष्क वर्षा आधारित क्षेत्रों में फल फरवरी माह के अन्त से तोड़ने योग्य हो जाते है। जब फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदल कर पीला हरा होने लगे तब फलों की तुडाई 2 सें.मी. डण्ठल के साथ करनी चाहिए। तोडते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि फल जमीन पर न गिरने पायें अन्यथा फलों की त्वचा चिटक जाती है, तथा भण्डारण के समय इन चिटके भागों से सड़न आरम्भ हो जाती है। कलमी पौधों में 2–3 वर्षो में फलन प्रारम्भ हो जाती है, जबकि बीज पेडों में 7–8 वर्ष में होती है। फलों की संख्या वृक्ष के आकार के साथ बढती रहती है। अर्ध शुष्क क्षेत्र में पूर्ण विकसित वृक्ष (10–12 वर्ष) से 100–150 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त किये जा सकते है। मूल्यांकन के उपरांत यह पाया गया कि बेल की सघन बागवानी से पूर्ण विकसित पौधों से एक हेक्टेयर से दसवें साल 1.75 से 2.5 लाख आमदनी वर्षा आधारित बागवानी से प्राप्त की जा सकती है।

ए. के. सिंह, संजय सिंह विकास यादव
एवं प्रो. पी. एल. सरोज
केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र (के.शु.बा.सं.)
वेजलपुर (गुजरात)

जामुन की खेती

जामुन पोषक तत्वों से भरपूर फल वृक्ष है। जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से कर सकते है, मुख्य रुप से इसका गूदा और बीज प्रयोग में लाया जाता है। इसे ग्रामीण और शहर में रहने वाले लोग प्रयोग में लाते है। यह मिनरल, प्रोटीन और कार्बोहाईडेड से भरपूर है। गूदे द्वारा जेली जेम स्क्वैस और सिरका बनाया जाता है। इसके बीज के पाउडर का उपयोग मधुमेह संबंधित बीमारियों में उपयोग में लाते हैं। इसकी पत्ती में प्रोटीन, फाइबर, केल्शियम फासफोरस इत्यादि पाये जाते है। इसके बीज में प्रोटीन 8.5 प्रतिशत रेशा 16.9 प्रतिशत केल्शियम 0.41 प्रतिशत फास्फोरस 0.17 प्रतिशत पाया जाता हैं। बीज में जेम्बोलीन तत्व पाये जाते है, जोकि मधुमेह की बिमारी से मुक्त करता है। इसके फल में एन्टी ओक्सीडंट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसकी छाल को भी घरेलु उपयोग में लाया जाता है। जामुन कृषि वानिकी एवं सामाजिक वानिकी के लिए उपयुक्त पौधा है। इस पौधे को विपरित परिस्थितियों में उगाया जा सकता है। यह शुष्क बागवानी के लिए उत्तम पौधा है। इसकी लकड़ी घरेलु कार्य में उपयोगी होता है।

वानस्पतिक विवरण

जामुन मिरटेसी कुल का पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम सीजाइजीयम क्यूमीनी है। इसका पेड़ बड़ा होता है। पौधों में फूल मार्च में आता है। फल जून माह में पक कर तैयार हो जाता है।

मिट्टी तथा जलवायु

इसकी खेती कम उपजाऊ मिट्टी में भी की जा सकती है। जामुन के लिए गहरी दोमट मिट्टी एवं बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। इसको उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में लगाया जा सकता है। पाले से छोटे पौधों को हानि पहुच सकती है। इसे शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु में लगा सकते है। औसत न्यून्तम व अधिकतम तापमान क्रमशः 10 डिग्री सेल्सियस व 40 डिग्री सेल्सियस जामुन के लिए उचित पाया जाता है। यह पाला सहन नही कर सकता है।

वानस्पतिक प्रवर्धन

देशी पौधे तैयार करना

बीज को पोलीथीन की थेली में जून और जूलाई महीने में बोते है बीज का अंकुरण 15–25 दिन बाद होता है, 6 से 12 महीने बाद देशी पौधे मूलवृत के रुप में उपयोग किये जा सकते हैं।

साफ्ट वुड कलम द्वारा प्रवर्धन

एक साल पुराना मूलवृंत पर जब नई पत्तियों आने लगे तब इस पर साफ्ट्वुड ग्राफ्टिंग करते है। तीन से चार महीने पुरानी शाखा जिस पर कलिया अच्छी हो उसका चुनाव करते है। इन शाखाओं की पत्तियों को कलम करने के 8–10 दिन पहले काट देते है, ध्यान रहे कि शिखर कली को किसी प्रकार की क्षति न पहुचें। मूलवृंत के मध्य में एक चीरा लगाते है। सायन के निचले भाग पर वेज आकार बनाते है। इस प्रकार तैयार सायन का मूलवृंत में लगे चीरे में इस प्रकार फिट करते है कि दोनों आपस में जुड जाय, पॉलीथीन की पट्टी से जोड़ को अच्छे से बांध देते है। यदि मूलवृंत और सायन शाखा का चुनाव तथा कलम करने का तरीका सही हो तो 60–70 प्रतिशत सफलता जुलाई–अगस्त महीने में प्राप्त की जा सकती है।

स्वस्थाने साफ्ट वुड कलम विधि

इस प्रकार से कलम करने पर सफलता अच्छी मिलती है और आसानी से बगीचा तैयार हो जाता है। इस विधि में मूलवृंत को तैयार गडढे में पहले से ही लगाकर रखते है और खेत में ही कलम बंधन का कार्य सम्पन करते है। जुलाई–अगस्त में कलम करने से 65–75 प्रतिशत सफलता प्राप्त होती है। स्वस्थाने कलम करने से पौधें का विकास अच्छा होता है। और आगे चलकर अच्छी फसल भी प्राप्त कर सकते है।

पैच बडिंग

इसके लिए 9 माह पुराने देशी पौधे (मूलवृंत) काम में लेते हैं। मार्च–अप्रैल पैच बडींग हेतु सर्वोत्तम समय है।

प्रजातियां

इस केन्द्र के द्वारा विकसित की गयी उच्च गुणवत्ता उक्त प्रजातियों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

गोमा प्रियंका:

यह बढ़वार में मध्यम आकार की होती है यह प्रजाति चौथे वर्ष से उत्पादन देने लगती है एवं जून के प्रथम सप्ताह में पककर तैयार हो जाती है। इस के फलों का वजन 20 ग्राम से अधिक होता है एवं गूदे (86 प्रतिशत) की मात्रा अधिक पायी जाती है। वयस्क वृक्षों से 50–55 किग्रा प्रतिवृक्ष उपज प्रप्त होती है। गूदे में टीएसएस की मात्रा 16.8 प्रतिशत पायी जाती है।

थार क्रान्ति:

यह बढ़वार में अधिक फैलने वाली किस्म है जिसमें फल उत्पादन चौथे वर्ष से प्रारंभ हो जाता है। इस के फलों का वजन 20 ग्राम से अधिक होता है एवं गूदे (85.6 प्रतिशत) की मात्रा अधिक पायी जाती है। गूदे में टीएसएस की मात्रा 17.10 प्रतिशत पायी जाती है। वयस्क वृक्षों से 60–65 किग्रा प्रतिवृक्ष उपज प्रप्त होती है।

बाग का संस्थापन:

कलमी पौधों को 10 x 10 मीटर की दूरी पर लगाते है। 1x1x1 मीटर आकार के गड्ढे का मई–जून महीने में खोदकर खुला छोड़ देते है। वर्षा होने से पहले ऊपरी हिस्से की मिट्टी में 25–40 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद को सतह से 30 से.मी. उपर तक भर देते है। बरसात के बाद जब मिट्टी स्थाई हो जाती है तो जुलाई–अगस्त महीने में पौधे को लगा दिया जाता है।

पौंधे की कटाई–छटाई:

प्रारंभ में पौंधे की काट–छांट उचित आकार देने के लिए किया जाता है। मुख्य तने पर लगभग 90 से.मी. तक शाखा को नहीं रखना चाहिए इससे आगे चलकर पौधे की निराई गुडाई तथा खाद एवं उर्वरक का उपयोग करने में सुविधा होती है। अच्छे आकार तथा वृद्धि के लिए 4–5 शाखाए पौधे के चारों तरफ बढ़ने देते है। जामुन को ज्यादा काट छाट की आवश्यक्ता नहीं होती, केवल रोग ग्रसित, सूखी तथा अनावश्यक शाखाओं को काटते रहना चाहिए। सघन बागवानी में 5x5 मीटर की दूरी पर पौधों को लगाते है तथा प्रतिवर्ष अक्तुबर महीने में छटाई का कार्य किया जाता है। शाखाओं की वार्षिक वृद्धि का 25 प्रतिशत भाग काट देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक:

आठ वर्ष पुराने पौधे को लगभग 25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन 500 ग्राम फोस्फोरस तथा 400 ग्राम पोटास प्रति पौधा प्रति वर्ष देना चाहिए। गोबर की सड़ी खाद एवं उर्वरक को जुलाई माह में मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

फूल और फल आना:

जामुन में फूल मार्च के महीने में आते है। कलमी पौधों में चार से पांच वर्ष बाद फूल आना प्रारंभ हो जाता है। मुख्यतया मधुमक्खियों द्वारा परागण का कार्य सम्पन्न होता है।

फल तुडाई एवं उपज:

फल जून में पककर तैयार हो जाते है। पकने का समय अलग अलग प्रजातियों में भिन्न–भिन्न होता है। एक विकसित पेड से 60–80 कि.ग्रा. फल प्राप्त होता है। जामुन के फल जब पेड पर गहरे बैगनी रंग के हो जाय तो सावधानी पूर्वक तुड़ाई करनी चाहिए। तुड़ाई के दौरान फल को किसी प्रकार की चोट न पहुंचे इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

जामुन के कीड़े:

जामुन में तना छेदक कीड़े का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के हेतु छेद में पैट्रोल या केरोसीन तेल या कीटनाशक दवा डालकर गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। पत्ती काटने वाले कीड़ों से निजात पाने के लिए रोगोर (1 मिली /लीटर) का समय –समय पर छिड़काव करते रहना चाहिए।

संजय सिंह, ए.के. सिंह एवं डी. एस. मिश्रा
केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र,
वेजलपुर–गोधरा–गुजरात

शुष्क क्षेत्रों में अनार की खेती

अनार (प्युनिका ग्रेनेटम) शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण बागवानी फसल है। यह पुनिकेसी परिवार से सम्बंधित है जिसका उद्‌गम स्थल इरान है। अनार स्वास्थ्य के बहुत ही लाभदायक फल है। यह पोषक तत्वों तथा विटामिन से भरपूर, रसीला तथा स्वादिष्ट होता है। अनार के प्रति सौ ग्राम फल में 67.95 किलो कैलोरी ऊर्जा, 1.41 ग्राम प्रोटीन, 1.60 ग्राम कच्चा रेशा, 2.50 मि.ग्रा. कैल्शियम, 10.22 मि.ग्रा. मैग्नीशियम, 34.73 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 0.39 मि.ग्रा. लौह, 0.26 मि.ग्रा. जिंक, 0.09 मि.ग्रा. थायमिन, 0.22 मि.ग्रा. नायसिन, 23.38 मि.ग्रा. एस्कॉर्बिक अम्ल तथा 26.00 माइक्रोग्रा. कुल कैरोटेनॉयड्स होता है। यह एन्टिऑक्सोडेन्ट्स जैसे एंथोसायनिन, पॉलीफिनॉल, सेलेनियम और आहार रेशों का सर्वोत्तम प्राकृतिक स्त्रोत माना जाता है। इसके ताजा फलों व रस के उपयोग के अलावा इसके विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे स्वादिस्ट पेय, जेल्ली, अनारदाना, अनारपाचक तथा सिरप काफी प्रमुख है। भारत में अनार की खेती महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आँध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में की जाती है। वर्ष 2015–16 के दौरान भारत में अनार का कुल क्षेत्रफल 1.91 लाख हेक्टेयर के साथ फल उत्पादन 21.98 लाख टन तथा उत्पादकता 11.39 टन प्रति हेक्टेयर थी। राजस्थान में अनार की खेती मुख्य रूप से जयपुर, अजमेर, अलवर, श्रीगंगानगर, पाली, कोटा, जालोर, बांसवाड़ा, सवाई माधोपुर, भीलवाड़ा, झुंझुनू तथा सिरोही जिलों में की जाती है और अनार की खेती रेगिस्तानी जिलों बीकानेर, बाड़मेर, जोधपुर एवं जैसलमेर में भी किसानों के लिए वरदान साबित हो रही है। राजस्थान में अनार का क्षेत्रफल लगभग 12,000 हेक्टेयर तथा उत्पादकता 6.2 टन प्रति हेक्टेयर है।

फलों से लदी अनार की टहनियां

अनार के उच्च पोषक मूल्य, एंटीऑक्सीडेंट क्षमता, संभावित जैव सक्रिय यौगिक तथा रसायन निवारण गुणों के कारण इसमें उच्च औषधीय गुण तथा उपभोक्ता आकर्षण होता है जिसके इसे ''सुपर फूड'' या ''औषधीय भोजन'' कहा जाता है। अनार में प्रतिकूल जलवायु, उच्च गर्मी, शुष्कता तथा लवणीय भूमि को सहने की अद्‌भुत अनुकूलनशीलता होती है। इसकी दृढ़ प्रकृति, कम लागत, लगातार उच्च उत्पादन, लम्बी भण्डारण अवधि, उच्च पोषक एवं औषधीय गुण तथा शुष्क वातावरण के दौरान प्रसुप्तता में जाने की क्षमता के कारण इसका क्षेत्रफल लगातार बढ़ रहा है।

मृदा एवं जलवायु

अनार के पौधों में शुष्क जलवायु तथा लवणीय भूमि को सहने की अद्‌भुत क्षमता होती है। अनार की खेती के लिए 6.5 से 7.5 पी.एच. मान वाली गहरी बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। अनार रेतीली मिट्टी में बहुत आसानी से उगाया जाता है, लेकिन इस प्रकार की मिट्टी में दीमक एवं सूत्रकृमि मुख्य समस्या होती है जिनका उचित प्रबंधन आवश्यक है। अनार की खेती शुष्क व अर्द्‌ध शुष्क जलवायु में अच्छी तरह की जा सकती है। फलों के विकास के समय रात में ठंडक और दिन में गर्म एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। जिससे दानों का रंग लाल होता है एवं इसकी मिठास बढ़ती है। आर्द्र जलवायु से फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है एवं फफूँद जनक रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। वातावरण एवं मृदा में अत्यधिक नमी के उतार चढ़ाव से फलों में फटने की समस्या पैदा होती है तथा गुणवता पर विपरीत असर पड़ता है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए प्रमुख किस्में

अनार की खेती के लिए उच्च गुणवत्ता वाली किस्मों का चयन जलवायु, मृदा, पानी तथा बाजार भाव के आधार पर करना चाहिए। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु के लिए जालौर सीडलेस, भगवा, जी–137, मृदुला एवं फूले अरक्ता किस्में बहुत उपयुक्त पायी गई है।

1. जालौर सीडलेस– यह राजस्थान की एक लोकप्रिय किस्म है, जिसके पौधें मध्यम फैलाव वाले एवं फल 250–300 ग्राम के होते है। प्रति पौधा 60–80 फल उपज प्राप्त की जा सकती है। इसके दाने हल्के गुलाबी रंग के, मुलायम तथा फल पकने पर हल्के पीले रंग के होते है।

2. भगवा– यह भारत की प्रमुख किस्म है, जिसके फल बड़े आकार के भगवा रंग के चिकने चमकदार होते हैं। एरिल आकर्षक लाल रंग की एवं बीज मुलायम होते हैं। अच्छा प्रबंधन करने पर प्रति पौधा 20 से 25 कि.ग्रा. उपज प्राप्त की जा सकती है।

3. जी–137 – यह गणेश किस्म का क्लोनल चयन है। इसके पौधे फैलाव वाले होते है। फल पीले रंग के ललाई लिए तथा दाने गहरे गुलाबी रंग के होते है।

4. मृदुला– यह किस्म गणेश एवं गुल–ए–शाह किस्म के संकरण से विकसित की गई है जिसके पौधें छोटे होतें है। फल मध्यम आकार के चिकनी सतह वाले गहरे लाल रंग के होते हैं। एरिल गहरे लाल रंग की बीज मुलायम, रसदार एवं मीठे होते हैं। इस किस्म के फलों का औसत वजन 250–300 ग्राम होता है।

5. फूले अरक्ता– यह किस्म गणेश एवं गुल–ए–शाह किस्म का संकरण है। फल मीठे, मुलायम बीजों वाले होते हैं। एरिल लाल रंग की एवं छिलका आकर्षक लाल रंग का होता है।

पौध तैयार करना

अनार की पौध शुष्क क्षेत्रों में कलम (कटिंग) द्वारा आसानी से तैयार की जा सकती है, इसके लिए एक वर्ष पुरानी शाखाओं से 20–30 सेमी लम्बी कलमें काटकर पौध शाला में 25×10 सेमी आकार की थैलियों में रोप दी जाती हैं। कलमों को इन्डोल ब्यूटारिक अम्ल (आई. बी.ए.) 2500 पी.पी.एम. से उपचारित करने से जड़ें शीघ्र एवं अधिक संख्या में निकलती हैं। कलम लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए की ऊपर वाला भाग ऊपर एवं नीचे वाला नीचे रहना चाहियें तथा तिरछा लगाना चाहिए। कलम से पौधे तैयार करने का उचित समय जून–जुलाई है, यद्धपि फरवरी में भी कलम लगाई जा सकती है। नर्सरी में सिंचाई तथा पौध सरंक्षण कार्य समय समय पर आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए। कलम लगाने के उचित माध्यम लाल मिट्टी, चिकनी मिट्टी तथा गोबर की की खाद को बराबर भाग में मिलाकर उपयोग में लेना चाहिए। आजकल कोकोपिट और वर्मिक्युलाइट माध्यम भी उपलब्ध है जो हल्के वजन वाले, उच्च पानी रोकने की क्षमता युक्त है जिनमे जड़ें शीघ्र, आसानी से एवं अधिक संख्या में निकलती है तथा तैयार पौधें आसानी से स्थानांतरित एवं खेत में लगाये जा सकते है। इसके अलावा पौधें दाब लगाकर, गुट्टी तथा ऊतक संवर्धन से भी तैयार किये जाते है, ऊतक संवर्धन वाले पौधें रोगरहित एवं एकसमान होते है।

जालौर सीडलेस– राजस्थान की लोकप्रिय किस्म

भगवा – भारत की प्रमुख किस्म

बाग लगाना

बाग लगाने के लिए खेत को अच्छी तरह समतल एवं रेखांकित करके, गड्ढे 60×60×60 सेमी आकार के मई–जून महीने में खोदने चाहिए। पौधे वर्गाकार या आयताकार विधि से 4×3 वर्गमीटर (833 पौधे/हे.), 4×4 वर्गमीटर (625 पौधे/हे.) तथा 5×2.5 वर्गमीटर (800 पौधे/हे.) की दूरी पर लगाये जा सकते है। गड्ढों को ऊपरी उपजाऊ भूमि में 10 किग्रा. गोबर की खाद, 10–20 ग्राम मेलाथियान डस्ट कीटनाशक मिलाकर अच्छी तरह भरकर कुछ दिन के लिए छोड़ देते है। पौधरोपण के समय 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश मिलाकर गड्ढों में डालने से पौधों का स्थापन एवं बढ़वार अच्छी होती है। पौधरोपण बरसात के मौसम में जुलाई–अगस्त में करते है, अच्छी सिंचाई की सुविधा होने पर पौधे फरवरी माह में भी लगाये जा सकते है।

सिंचाई प्रबंधन

पौधें लगाने से 2–3 साल तक उचित देखभाल करनी चाहिए। अच्छी गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन के लिए 10–15 दिनों के अंतराल में सिंचाई करतें हैं। बून्द बून्द सिंचाई पद्धति अनार की खेती लिए बहुत ही उपयुक्त है इससे पानी की बचत (50–60%) के साथ उत्पादन भी

अधिक (20–30%) होता है। बून्द बून्द सिंचाई पद्धति से खरपतवार नियंत्रण, उर्वरक तथा पेस्टिसाइड्स के उपयोग की दक्षता बहुत बढ़ जाती है। बून्द बून्द सिंचाई पद्धति से गर्मियों में सप्ताह में दो बार तथा सर्दियों में एक बार पानी देना चाहिए। सिंचाई की मात्रा एवं समय को मौसम, मृदा के प्रकार, मृदा में नमी की मात्रा एवं फसल की वृद्धि अवस्था के अनुसार आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक

पौधों में अच्छी वृद्धि और गुणवत्ता युक्त फलों के उत्पादन की लिए पोषक तत्व देना अति आवश्यक है। खाद एवं उर्वरक मृदा परीक्षण के हिसाब से देना चाहिए। एक वर्ष के पौधें को 10–15 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 200–250 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस और 100–125 ग्राम पोटाशियम देना चाहिए। पौधें की आयु के हिसाब से खाद एवं उर्वरक की मात्रा भी बढ़ाते रहना चाहिए। पांच साल या इससे बड़े पौधों को 45 किग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद, 650 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 250 ग्राम पोटेशियम प्रति वर्ष देना चाहिए। गोबर की खाद का 1/3 भाग फल तोड़ने के बाद सुप्तावस्ता में जनवरी माह में तथा 2/3 भाग बहार प्रबंधन के समय देना चाहिए। फॉस्फोरस और पोटाशियम की 2/3 भाग फल तोड़ने के बाद सुप्तावस्ता में जनवरी माह में और 1/3 भाग बहार प्रबंधन के समय देना चाहिए।

नाइट्रोजन को चार बराबर भागों में बांटकर 1/4 भाग बहार प्रबंधन के बाद, 1/4 भाग फूल आने पर, 1/4 भाग फल बनते समय, तथा 1/4 भाग फल विकास के समय क्रमशः जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर में देनी चाहिए। इसके अलावा फूल आने पर एन+पी+के:12:61:00 का 8 किग्रा./ हे./उपयोग, फल बनते समय एन+पी+के:19:19:19 का 8 किग्रा./हे./ उपयोग तथा फल विकास के समय एन+पी+के:00:52:34 का 2.5 किग्रा./हे./उपयोग को बूँद बूँद सिंचाई पद्धति से एक–एक महीने तक देना चाहिए। अनार की खेती के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का बहुत ही महत्व है इसके लिए जिंक सल्फेट (0.3%), फेरस सल्फेट (0.4%) तथा बोरेक्स (0.2%) के घोल का पर्णीय छिड़काव फल बनने के एक महीने बाद करना चाहिए। कैल्शियम क्लोराइड (3%) तथा जिब्बरेलिक अम्ल (20 पी.पी.एम.) का पर्णीय छिड़काव फल बनने के एक महीने बाद छिड़काव करने से फल की गुणवत्ता में सुधार होता है।

सधाई एवं काँट–छाँट

अनार में सधाई का बहुत महत्व है। अनार में सधाई दो प्रकार से, बहु तना पद्धति एवं एक तना पद्धति से की जा सकती है। शुष्क क्षेत्रों में 3–4 मुख्य तनों वाली सधाई करनी चाहिए जिससे दीमक या अन्य किसी कारणवश एक तना मर जाये तो अन्य तनों से उपज मिलती रहती है। अनार में 1–2 फीट ऊंचाई से द्वितीय शाखाओं को पनपने देना चाहिए जिससे बागवानी कार्य जैसे खाद, पानी एवं गुड़ाई आसानी से किये जा सके। अनार में नई एवं पुरानी दोनों शाखाओं पर फूल आते है। फल की तुड़ाई के तुरन्त बाद गहरी छँटाई करनी चाहिए तथा रोग संक्रमित एवं सुखी हुई सभी शाखाओं को काट देना चाहिए। छँटाई के बाद 10: बोर्डो पेस्ट का कटे हुऐ भाग पर लेप करना चाहिए। बारिश के समय में छँटाई के बाद तेल युक्त कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 1 लीटर अलसी का तेल) का उपयोग करें। अनार में सकर्स (नीचे के तने से निकलने वाली सीधी एवं कोमल शाखाएं) को समय समय निकालते रहना चाहिए क्योंकि ये अवांछनीय तथा ऊर्जा को नष्ट करने वाले होतें है। सधाई एवं सकर्स से निकलने वाली स्वच्छ शाखाओं से कलम लगाकर नए पौधे भी तैयार किये जा सकते है।

पुष्प नियमन (बहार ट्रीटमेंट)

अनार के पौधें में वर्ष भर फूल आते रहते है जिनमें अम्बे बहार (फरवरी–मार्च), मृग बहार (जून–जुलाई) एवं हस्त बहार (सितम्बर–अक्टूबर) प्रमुख है। उत्पादन एवं गुणवत्ता की दृष्टि से कई बार फूल आना अच्छा नहीं होता है इसके लिए पानी की उपलब्धता एवं बाजार की मांग के अनुसार किसी एक बहार को नियमित किया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में मृग बहार को नियमित की जाती है। बहार नियमन के लिए पौधों को एक महीने पहले सिंचाई बंद कर देते है तथा एक महीने बाद पतियों की संख्या के हिसाब से 1–2 मिली. इथ्रेल 5 ग्राम डी.ए.पी. प्रति लीटर की दर से पतियों पर छिड़काव करते है इसके बाद हल्की सिंचाई करके खाद डालनी चाहिए। अच्छे आकार एवं गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिए 50–60 फल प्रति पौधा रखने चाहिए, लेकिन स्थानीय बाजार के लिए 80–100 फल प्रति पौधा लिए जा सकते है।

अंतः सस्यन

बाग लगाने के 2–3 साल तक कतारों के बीच खाली जमीन पर ग्वार, मूंग, मोठ, बैंगन तथा लोबिया लगाकर

आय प्राप्त की जा सकती है। अंतः सस्यन फसलों से भूमि की उर्वरकता एवं जल धारण क्षमता को सुधारने में सहायता मिलती है। अनार में 3–4 साल बाद जब फल आना शुरू हो जाये, अंतः सस्यन फसलें नहीं लेनी चाहिए।

कीट एवं रोग प्रबंधन

शुष्क क्षेत्रों में अनार में लगने वाले मुख्य कीट एवं रोग, उनके लक्षण तथा प्रबंधन आगे तालिका में दर्शाया गया है।

कीट	लक्षण	प्रबंधन
अनार की तितली (ड्यूड़ोरिक्स आईसोक्रेट्स)	यह अनार का सबसे गंभीर कीट है। जो 20–80 प्रतिशत हानि पहुंचाता है। प्रौढ तितली फूलों पर तथा फलों पर अण्डे देती है। जिनसे इल्ली निकलकर फलों के अन्दर प्रवेश कर जाती है तथा दानो को खाती है। प्रकोपित फल सड़ने लगते हैं, अवशिष्ट पदार्थ छिद्र से बहार निकलता है और फल असमय झड़ जाते हैं।	–प्रभावित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें तथा खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें। – डाइमेथोएट 35 ई.सी. 1.5 मिली प्रति लीटर या मेलाथियान 50 ई.सी. 1.5 मिली प्रति लीटर के हिसाब से पानी में घोल बनाकर प्रथम छिड़काव फूल आते समय एवं द्वितीय छिड़काव 15 दिन बाद करें। –फलों को पेपर या पॉलीथिन बैग से ढक दें।
माइट	यह लाल रंग का अति सूक्ष्म कीट, अनार की पतियों पर पाया जाता है जिससे पत्तियां लाल दिखाई देती है। यह पतियों का रस चूसता है जिससे पत्तियां ऊपर की तरफ मूड जाती है अधिक प्रकोप होने पर पत्तिया गिर जाती है।	–कीट का संक्रमण होने पर सूखे मौसम में ऐस्पायरोमेसिफेन 0.4–0.6 मिली प्रति लीटर, ईथिऑन 1–1.5 मिली प्रति लीटर अथवा डाइकोफाल 50 डब्लू.एस.पी. 2.5 मिली प्रति लीटर का बारी बारी से छिड़काव करें।
थ्रिप्स (एस्क्रुतोथ्रीपस डोरसेलिस)	निम्फ एवं व्यस्क दोनों पतियों की निचली सतह तथा बाहरी छाल का रस चूसते है जिससे पत्तियां भूरे रंग की होकर निचे गिरने लगती है फलों पर पर भूरे रंग की पपड़ी आ जाती है। जिससे बाजार भाव कम मिलता है।	–कीट का संक्रमण होने इमिडाक्लोप्रिड 0.4 मिली प्रति लीटर छिड़काव करे। –फूल आने से पहले डाईमेथोएट 1.5 मिली प्रति लीटर छिड़काव करें।

रोग	लक्षण	प्रबंधन
फफूँद जनित पर्णीय एवं फल धब्बा (सर्कोस्पोरा या एन्थ्रक्नोज स्पी.)	यह रोग फफूँद से होता है। इस रोग में पतियों एवं फलों पर अनियमित आकार में छोटे भूरे, काले रंग के धब्बे बन जाते हैं जो बाद बड़े धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं।	–प्रभावित पतियों एवं फलों को तोड़कर कर नष्ट कर दें। –रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कार्बेन्डाजिम (0.2%), प्रोपिकोनाजोल (0.1%), मेंकोजेब (0.2%) तथा कैप्टान (0.2%) का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
जीवाणु पत्ती झुलसा (जेन्थो –मोनास एक्सोनो –पोड़िसपी. वी. प्यूनिकी)	इस रोग में छोटे अनियमित आकार के पनीले धब्बे पत्तियों पर बन जाते हैं। यह धब्बे हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के होते हैं। बाद में फल भी गल जाते हैं।	–पड़ों से गिरी हुई पत्तियों एवं शाखाओं को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए और रोग रहित रोपण सामग्री का चुनाव करें। –बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव करें या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 0.2 ग्राम/लीटर कॉपर आक्सीक्लोराईड 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर 15–20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

रोग	लक्षण	प्रबंधन
उकटा (फुजेरियम स्पीसीज या सीरेटोसिस्टीस फिम्ब्रीयाटा)	इस रोग में पत्तियों का पीला पड़ना, जड़ों तथा तनों की नीचले भाग को बीच से चीरने पर अंदर की लकड़ी हल्के भूरे–काले धब्बे, सीरेटोसिस्टीस फिम्ब्रीयाटा का संक्रमण दिखाता है और यदि सिर्फ जायलम का रंग भूरा दिखता है तो यूजेरियम स्पीसीज का संक्रमण होता है।	–उकटा रोग से पूर्णतः प्रभावित पौधों को बगीचे से उखाड़कर जला दें उखाड़ते समय संक्रमित पौधों की जड़ों और उसके आस–पास की मृदा को बोरे या पालीथीन बैग में भरकर बाहर फेंक दें। –रोग के लक्षण दिखाई देते ही क्लोरोपायरीफास 20 ई. सी. (2.5 मिली. / लीटर). कार्बेन्डाजिम 50 डब्लू.पी. (2.00 ग्राम / लीटर) अथवा प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. (2.0 मिली. / लीटर) के घोल का 5–8 लीटर प्रति पौधें के जड़ों में डालकर मृदा को तर कर दें।
सूत्रकृमि (मेलॉइडोगायनी इन्कॉग्नीटा)	सूत्रकृमि अनार की जड़ों को नुकसान पहुंचता है, इसकी वजह से जड़ों में गांठें बनने लगती है फल छोटे और उपज कम हो जाती है।	–फोरेट 10 जी. 10–20 ग्राम / पौधें और कार्बोफुरोन 3 जी. 20–40 ग्राम / पौधें की दर से पौधें के बेसिन की मिटटी में अच्छी तरह मिला दें। –एजाडिरेक्टिन (1%) का 2 मिली. / लीटर के घोल का 5–8 लीटर मिश्रण पौधें के जड़ों में डालकर मृदा को तर कर दें। –अफ्रीकन गैंदे को ट्रैप फसल के रूप में पौधों के चारो तरफ लगाएं।

शुष्क क्षेत्र में प्रमुख समस्या – दीमक से प्रभावित तना एवं सूत्रकृमि से प्रभावित जड़ें

फल तुड़ाई, उपज और भंड़ारण

पौधे रोपण के 2–3 वर्ष पश्चात फल आना प्रारम्भ हो जाते है। लेकिन व्यावसायिक उत्पादन 4–5 वर्षों बाद शुरू होता है। अनार का पौधा 60–80 फल प्रति वर्ष देता है। अनार नान–क्लाईमेट्रिक फल है जब फल पूर्ण रूप से पक जाये तभी पौधे से तोड़ना चाहिए। पौधों में फल लगने के 4–5 महीने बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते है और पके फल पीलापन लिए लाल हो जाते हैं, जो किस्मों पर निर्भर करता है। अनार के फलों के वजन, आकार एवं बाहरी रंग के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में रखा जाता है। 750 ग्राम से अधिक भार वाले फल सुपर साईज, 500 से 750 ग्राम भार वाले फल किंग साईज, 400–500 ग्राम भार वाले फल क्वीन साईज तथा 400 ग्राम से कम वजन वाले प्रिंन्स साईज फल श्रेणी में आते है। श्रेणीकरण के बाद कोरोगेटेड फाइबर बॉक्स में 4–5 किग्रा. प्रति बॉक्स के हिसाब से पेकिंग करते है। फलों को शीतगृह में 5^0 सेल्सियस तापमान एवं 85% आपेक्षित आद्रता पर 10–12 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है। फलों को लम्बे समय तक रखने के लिए शीतगृह में 10व सेल्सियस तापमान एवं 95% आपेक्षित आद्रता पर भण्डारित करना चाहिए।

अनार के तोड़े हुए फल और उनका श्रेणीकरण कर बॉक्स में पैक करना

कार्यिकी विकार

1. फल फटना (फ्रूट क्रैकिंग) – अनार में फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। यह समस्या शुष्क क्षेत्रों में अधिक तीव्र होती है। इस विकार में फल फट जाते हैं। जिससे फलों की भंडारण क्षमता कम हो जाती है। फटे हुए स्थान पर फफूँद के संक्रमण के कारण फल जल्दी सड़ जाते हैं एवं बाजार भाव कम मिलते हैं। यह विकार नए बगीचे में मृदा में बोरान की कमी के कारण तथा पुराने बगीचे में मृदा में नमी के असंतुलन के कारण होता है। इसके प्रबंधन के लिए नियमित रूप से सिचाई करें। जिब्रलिक अम्ल (जी.ए.3) 20 पी.पी.एम. एवं बोरान 0.2 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव करें।

2. धूप में झुलसना (सन स्केल्ड) – इस विकार में फलों का जो भाग सूर्य की तरफ रहता है वह धूप में झुलसकर भूरे काले रंग का हो जाता है। पौधों में अच्छे वितान का विकास कर फलों को धप से बचाया जा सकता है। इसके प्रबंधन के लिए 35% छाया वाली जाली से पौधों को ढक दें अथवा फलों को बट्टर पेपर से ढक दें और 5% केओलिन का पर्णीय छिड़काव करें।

3. दानों का भूरा होना (एरिल ब्राउनिंग) – इस विकार में एरिल मुलायम एवं भूरे रंग का हो जाता है, जबकि फल बाहर से सामान्य दिखाई देता है। यह विकार शुष्क जलवायु एवं गर्मियों में अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए फलों को पकने के बाद समय पर तोड़ लें।

अनार के कार्यिकी विकार– फल फटना, धूप में झुलसना एवं दानो का भूरा होना

रमेश कुमार, रामकेश मीणा एवं बी. डी. शर्मा
केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान,
बीकानेर, राजस्थान – 334 006

शुष्क फल वृक्षों की उन्नत पौध कैसे तैयार करें?

शुष्क क्षेत्र जहाँ विषम जलवायु परिस्थितियों जैसै तापमान की चरम सीमाऐ (5 से 50 डिग्री सैल्सियस), शीतकाल में पाला, वायु में कम आपेक्षिक आर्द्रता (20. 30% ग्रीष्मकाल में), कम व अनियमित वर्षा का वितरण, वाष्पोत्सर्जन दर अधिक (12 मिमी प्रति दिन ग्रीष्म काल में), अधिक वाष्पो–उत्सर्जन विभव मान (7–9 मिमी प्रति दिन ग्रीष्म काल में), कम नमी सूचकांक (40 से कम), एरिडिटी सूचकांग मान (74.78 प्रतिशत) तथा तेज हवाएँ व धूल भरी आधियाँ (लगभग 6000 मिली. टन वार्षिक मिट्टी क्षरण) के साथ–साथ भूमिगत जल की गुणवत्ता स्तरीय न होने (लवणता व वैधुत चालकता मान अधिक) से पौधे तैयार करना आसान नहीं है। इन परिस्थितियों में पौध तैयार हेतु नर्सरी संरचनाएँ व उपयुक्त समय पर पौध प्रसारण के क्रियाकलाप कर पौधे तैयार करते हैं।

इन क्षेत्रों के मुख्य फल फसलों में बेर, खजूर, अनार, आँवला, बेलपत्र, लसोड़ा, खेजड़ी व नीबू वर्गीय फल (मौसमी, किन्नौ, नीबू) आदि के साथ कुछ गौण फसले जैसे फालसा, करोंदा, केर, पीलू, फोग आदि है।

फल फसलों की पौध तैयार की विधियाँ

सं.	फसल का नाम	व्यवसायिक विधि	आधुनिक विधि
1.	बेर, बेल, मौसंबी, खेजड़ी	कलिकायन (टी)	–
2.	खजूर	ऑफ शूट	ऊतक संवर्द्धन
3.	अनार	कलम व गुटी	ऊतक संवर्द्धन
4.	आँवला	कलिकायन (पेच)	–
5.	लसोड़ा, नीबू	बीज	कलिकायन
6.	किन्नौ	कलिकायन (टी)	ऊतक संवर्द्धन
7.	केर	बीज	ऊतक संवर्द्धन
8.	फालसा, करोंदा	बीज	ऊतक संवर्द्धन

बीजू पौधे मुख्यतः मूलवृन्त के रूप में लेते हैं क्योंकि इससे तैयार पौधे पैतृक पौधे के समान गुण वाले नहीं आते है (परन्तु नीबू, फालसा, लसोड़ा, करोंदा आदि को बीज से तैयार उनकी बहुभ्रुणता या आर्थिक दृष्टि से सदृगत रखते हुए करते हैं) तथा वानस्पतिक विधियों से प्रवर्द्धन (कलम, दाब कलम, उपरोपण) करना लाभदायक रहता हैं, इससे तैयार पौधे एक समान मातृ पौधे के समान गुणों वाले (किस्मानुसार व गुणवता में) शीघ्र फलन में आते हैं।

एक किलोग्राम बीज से तैयार मूलवृंत

क्र.सं.	फसल का नाम	तैयार बीजू पौध (हजार)
1.	खेजड़ी	3
2.	बेर	6
3.	आँवला	4
4.	नीबू तथा जट्टी–खट्टी	2.5
5.	बेल	2.5

सफल व उन्नत पौध तैयारी हेतु निम्न प्रबधंन/उपाय आवश्यक है :–

(1) मातृ वृक्ष प्रबंधन : जिस वृक्ष से सांकुर शाख या कलि लेते है जो नर्सरी का सायन बैंक होता है। कई बार एक ही किस्म में भी विविधता पाई जाती है अतः उत्पादकता व गुणवता को ध्यान में रखकर एक बगीचे में से भी ओजस्वी पौधों (प्लस पौधे) का चयन किया जाता है तथा इसी से सांकुर लेकर पौध तैयार करनी चाहिए करें।

(2) नर्सरी में प्रयुक्त सरचनाएँ: नर्सरी में वर्षभर प्रसारण व प्रबन्धन हेतु आधुनिक संरचनाओं की आवश्यकता है जैसे छायाघर, नेट हाउस, कलिकायन हाउस, गर्भक्यारी लेथ धर, कुहॉसाधर आदि इनमें बीजों का अंकुरण, विकास तथा सफल पौधे शीघ्र व वर्षभर तैयार होते है।

(3) बीजोपचार : मूलवृन्त या बीजू पौधे तैयार करने के लिए पूर्णतः पके स्वस्थ फलों को तोड़कर बीजों का निष्कर्षण कर के तुरंत उपचारित करे तथा उसके बाद बुवाई में बीजोंउपचार में कवकनाशी, कीटनाशी व अन्य रसायनो/जैविक उर्वरकों से करके बुवाई करें तथा कठोर आवरण वाले बीजों जैसे खेजड़ी (2 प्रतिशत सल्फूरिक अम्ल से एक से डेढ घण्टा) तथा फिर पानी में भिगोकर (6–8 घण्टा रखते हैं) उपचारित कर उपयोग में लें। बीज बुवाई मातृ क्यारी (नीबू, करोंदा, जामुन, अमरूद, लसोड़ा आदि) पॉलीथीन थैली (बेर, खेजड़ी, ऑवला, बेलपत्र आदि) या प्रो ट्रे (अनार कलम) में कर सकते है।

(4) नर्सरी क्यारी व मृदा उपचार : खुले क्षेत्र की क्यारी की जगह हर साल बदलते रहे या मिट्टी/माध्यम परिवर्तित करते रहे। फार्मेलिन से भी नर्सरी क्षेत्र को उपचारित कर दें इस के लिए फार्मेल्डिहाइड के 40 लीटर को 100 लीटर पानी में डालकर प्रति वर्ग मीटर 10–15 लीटर विलयन डालकर 24 घण्टे के लिए ढक दे तथा इसे 10–14 दिन के लिए खुला छोड़ दे इसके बाद बीज बुवाई या कलम रोपण के काम में ले।

माध्यम में ली जाने वाली खाद या अन्य मिश्रण का उपचार करे इसके लिए मई–जून माह में हल्की नमी देकर सीमेंट की सतह पर सफेद प्लास्टिक (200 गेज) से उपयोग में लेने वाले माध्यम को ढक दें। 20–25 दिन बाद इसे उपयोग में ले।

शुष्क फल वृक्षों के पौध प्रसारण के मानक

1.	मूलवृंत तैयारी	:	मातृक्यारी या पॉली बैग
2.	पॉलीबैग मिश्रण	:	चिकनी मिट्टीः बगीचे की मिट्टीः खाद (1:2:½) तथा प्रोट्रे हेतु वर्मीकुलाइटः कोकोपीटः परलाइट (1:2:1 अनुपात)
3.	पॉलीबैग	:	250 गेज की थैलियाँ फसल अनुसार आकार की ले जैसे नीबू वर्गीय फल 20×10 सेमी बेरो खेजड़ी 25–30×10 सेमी
4.	मूलवृन्त की उम्र	:	फसलानुसार बेर 3–4 माह से 6 माह खेजड़ी 4–6 माह से 1 वर्ष नीबू वर्गीय 8–9 माह से 1 वर्ष
5.	मूलवृंत का व्यास	:	रिफिल से पेन्सिल = बेर, खेजड़ी पेन्सिल = नीबू वर्गीय फल बेलपत्र
6.	सांकुर उपलब्धता	:	फसलानुसार बेरः मई से जुलाई खेजड़ी लघु अवधि में अप्रैल से सितम्बर नीबू वर्गीय फलः जून से सितम्बर बेल पत्र : जून से सितम्बर
7.	उपरोपण (कलिकायन)	:	एक समान थैली के तल से 15–20 सेमी ऊँचाई पर
8.	सफल पौध तैयार	:	उपरोपण (कलिकायन) के एक से डेढ माह पश्चात् जब फूटान फसलानुसार बढ़वार ले।
9.	सावधानियाँ	:	पॉली बैग से मिट्टी नहीं बिखरे पौधे 1–2 सप्ताह का दृढ़ीकरण करने के बाद किसान को दें।

पौध तैयारी के उपयोगी बिन्दु :

1. नर्सरी क्षेत्र साफ सुथरा रखे।
2. प्रोट्रे में यदि बीज बुवाई की हो तो भू–तल से 1.5–2 फीट ऊँचाई पर रखे जिससे मृदा जनित रोगों का संक्रमण न हो।
3. बीजू पौधों की मूसला मूल (टेपरूट) को जमीन में सीधे प्रवेशन को रोके (काट दे या मोड़ दे) तथा नर्सरी में मोटे प्लास्टिक शीट बिछाकर पौधो के पॉली बैग रखें।
4. पौधों का स्थानान्तरण थैलियों में वर्षाकाल या ठण्डे बादल युक्त मौसम में करे या सिंचाई का प्रबन्धन करें।
5. उपरोपण (कलिकायन) में प्रयुक्त औजारों को एल्कोहल या सोडीयम हाइपोक्लोराइड से धोकर कीटाणुरहित कर ही रोजाना काम में ले।
6. उपरोपण (कलिकायन) जब रस (सेफफ्लो) बहाव हो तथा परिपक्व प्ररोह से सायन ले।
7. प्रोफाइलेटिक उपायों का प्रयोग कर इस क्षेत्र से रोग व कीट दूर रखना बेहतर हैं।
8. नर्सरी संरचनाओं में आवागमन सीमित रखे तथा प्रवेश के समय दरवाजे पर नीला थोथा व चूना रखा हो उसमें जूते/चप्पल रखकर प्रवेश करें।

दीपक कुमार सरोलिया एवं बी. आर. चौधरी
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

फल वृक्षों के साथ अंतरसस्य फसल उगाकर अधिक लाभ अर्जित करें

भारत में एक बड़ा क्षेत्र (लगभग 3.87 लाख वर्ग किलोमीटर, कुल भौगोलिक क्षेत्र का 12 प्रतिशत) गर्म शुष्क इकाई तंत्र में है, जोकि राजस्थान (196 लाख हेक्टेयर), गुजरात (62 लाख हेक्टेयर), हरियाणा (13 लाख हेक्टेयर), पंजाब (15 लाख हेक्टेयर) और प्रायद्वीपीय भारत (31 लाख हेक्टेयर) तक फैला है। शुष्क जलवायु की पर्यावरणीय परिस्थितियां तनावपूर्ण होती है जैसे कम और अनियमित वर्षा, उच्च वाष्पीकरण–तीव्रता, तीव्र सौर विकिरण और चरम तापमान, इसके अलावा, सीमित सिंचाई संसाधन, जो फसलों की खेती को एक लाभहीन उद्यम बनाता है। इन विषम परिस्थितियों के कारण, यहाँ के निवासियों के लिए भोजन, चारे और ईंधन की समस्या सदैव बनी रहती है। हालांकि, ऐसी परिस्थितियों में लसोड़ा, केर, पीलू आदि शुष्क फलों को न्यूनतम कृषि आदानों के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। परंतु, खेत से मिलने वाले ऊपज में वृद्धि तथा साथ ही होने वाले आर्थिक नुकसान को कम करने के लिए, वृक्ष पंक्तियों के बीच में अंतःसस्यन किया जाना चाहिए जिससे खेत में होने वाले निवेश से शीघ्र ही आमदनी प्राप्त हो सके। इस प्रकार, विभिन्न प्रकार के फसलों के संयोजन से, उपलब्ध पानी, वायु, पोषक तत्व आदि का बेहतर उपयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत, एक–फसली पद्धति जहां प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के लिए उत्तरदायी होता है वहीं यह, अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों के तनावपूर्ण पर्यावरण में, किसानों की आय–स्थिरता को सुनिश्चित करने में भी विफल रहता है। एक ही समय में एक ही क्षेत्र में दो या अधिक फसलों को उगाने को 'अंतरसस्यन' भी कहा जाता है, जिसमे मुख्य बहुवर्षीय फल–वृक्षों की पंक्तियों के बीच किसी अन्य फसल को उगाया जाता है। अंतरसस्यन का उद्देश्य अधिकतम भूमिगत और वायवीय उपयोग, पूरक आय उत्पन्न करने, विशेष रूप से बाग के प्रारंभिक अनुत्पादक चरण के दौरान, एवं बागवानी फसलों के पंक्तियों के अंतर–स्थान को खर–पतवार, विकिरण, तापमान, वायु और पानी के दुष्प्रभाव से होने वाले क्षरण की रक्षा के लिए होता है।

अंतरसस्यन के विशिष्ट आयाम

- विस्तृत योजना
- प्रत्येक फसल का समय पर रोपण
- इष्टतम दर और समय पर पर्याप्त उर्वरीकरण
- प्रभावी खरपतवार, कीट और रोग नियंत्रण
- कुशल तुड़ाई/कटाई

एक सफल अंतरसस्य योजना को लागू करने के लिए फसल की प्रजातियों, उपयुक्त किस्मों, पानी की उपलब्धता, पौधों की आबादी, उनके बीच की दूरी, श्रमिकों की उपलब्धता, जुताई आवश्यकताओं, समय पर रोपण, उचित उर्वरीकरण, कीट और रोग नियंत्रण एवं फसल से होने वाले मुनाफे को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अंतरसस्यन की संभावित समस्याएं

- अनुपयुक्त फसल के चुनाव से पानी, प्रकाश और पोषक तत्वों के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा
- यांत्रिकीकरण में कठिनाई
- आवश्यकताओं में वृद्धि
- वार्षिकी पौधों के कृषि क्रियाओं के दौरान, कृषि–यंत्रों फलों के पेड़ को नुकसान

विविधीकरण एवं अंतरसस्य योजना

प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र का विकास एक उच्च स्तर की जैव विविधता द्वारा नियंत्रित किया जाता है जबकि इसके विपरीत, गहन कृषि प्रणालियों के अंतर्गत एक–फसली पद्धति में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रचुर प्रयोग होता है, जिसका मिट्टी और पानी की गुणवत्ता और जैव विविधता संरक्षण पर स्पष्ट रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी तरफ प्रतिकूल शुष्क वातावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रख कर, विभिन्न प्रजातियों के मिश्रणों के आधार पर बनाई गयी अंतरसस्य प्रणालियों में कई संभावित फायदे दिखाई देते हैं। इसके

लिए, विभिन्न समयों पर पकने वाली या अंतरित अवधि के साथ पौधों को लगाया जाना चाहिए ताकि संसाधनों (जैसे पोषक तत्वों, पानी और सूर्य का प्रकाश) के लिए पौधों के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं रहे।

इस वैकल्पिक भूमि उपयोग व्यवस्था से उपलब्ध नमी का संरक्षण कर और भूमि क्षरण को कम कर मिट्टी में जैविक द्रव्यमान का संवर्धन किया जा सकता है, जिससे कृषकों को भोजन, चारे और ईंधन की बेहतर उपलब्धता प्राप्त हो सके। यह व्यवस्था रोजगार के अवसर भी सुनिश्चित करेगा और साथ ही साथ कृषक समुदाय की समृद्धि बढ़ा कर राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में भी योगदान करेगा। शुष्क कृषि क्षेत्र में फल–वृक्ष, अंतरसस्य प्रणाली को स्थायित्व प्रदान करने के अलावा, उत्पादन और आय बढ़ाने में भी सहयोग करते हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त, फलों के पेड़ से अन्य लाभ भी हैं जैसे, वार्षिक छंटाई से चारा और ईंधन की लकड़ी आदि गौण उत्पादन की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। साथ ही फल वृक्ष वातावरण को शुद्ध कर मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी सहयोग करते हैं। फसल प्रणाली में वार्षिक फसलों के साथ बहुवर्षीय फसलों (वृक्षों) के एकीकरण द्वारा उत्पादन एवं आय को कई गुना किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था द्वारा प्राकृतिक संसाधन (यथा जल, भूमि, सूर्य का प्रकाश एवं मृदा) तथा सामाजिक–आर्थिक संसाधन (यथा श्रम, शक्ति, उधार, विपणन व्यवस्था) दोनों का ही समुचित रूप से उपयोग होता है।

उपयुक्त फसलें और किस्में

अंतरसस्य प्रणाली की परिकल्पना को विभिन्न तरहों से परिभाषित किया गया है, परन्तु सामान्य अर्थो में यह एक ऐसी खेती पद्धति है जिससे सूर्य के प्रकाश, मृदा एवं अन्य स्त्रोतों का अधिकतम उपयोग होता है। फल आधारित अंतरसस्य प्रणाली तीन मुख्य घटक शामिल हैं; अधि–स्तरी मुख्य फसल, घटक फसल अथवा सह फसल, और अधः–स्तरी।

1. **मुख्य फसलः** मुख्य फसल, सामान्यतः एक बड़े छत्रक वाला वृक्ष होता है, जो लंबे समय तक किशोर अवस्था में रहता है। आम तौर पर मुख्य फसल 20–25 साल तक भूमि का उपयोग करते हैं परंतु शुरू के वर्षों में (10 वर्षों तक) इन वृक्षो से भूमि का केवल 25–30 प्रतिशत प्रभावी रूप इस्तेमाल में आता है। इन पौधों को व्यापक अंतर लगाया जाता है। मुख्य फसल के कुछ उदाहरण कुछ इस प्रकार है जैसे, आंवला, बेर, खेजड़ी इत्यादि।

शुष्क क्षेत्रों की प्रतिकूल पर्यावरणीय स्थिति से फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है अतः ऐसी परिस्थिति में लाभदायक खेती की सीमित गुंजाइश होती है। परंतु, बहुवर्षीय फल फसलों को उपयुक्त वैज्ञानिक उपायों के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसलिए, इन क्षेत्रों में उगाने के लिए चयनित फल प्रजातियों में निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है;

- सूखे की स्थिति को बर्दाश्त करने के लिए गहरी जड़ प्रणाली उदाहरणस्वरूप बेर और आंवला।
- गर्मियों और सुषुप्तवस्था में पर्णपात ताकि पानी की उपयोग में कटौती की जा सके जिससे सूखे से बचा जा सके जैसे, बेर और आंवला।
- पत्ती की मोमी सतह, मृदुलोमशता, धँसे पर्ण–रंध्र संयंत्र, कोशिकाओं में उच्च रस घनत्व इत्यादि पानी के संरक्षण में मदद करते हैं जैसे अंजीर और लसोड़ा।
- मानसून अवधि के दौरान ही पौधों का अधिकतम वानस्पतिक विकास जैसे, बेर और आंवला।
- उपरोक्त के अलावा, विविध फसल प्रणाली में शामिल किए जाने के लिए फल पेड़ों की शाखाएँ इस प्रकार होनी चाहिए ताकि अधः–स्तरी फसलों को पर्याप्त प्रकाश मिल सके। फल–वृक्षों के पत्तों के अपघटन या जड़ से निकालने वाले रसायनों से भी वृद्धि अधः–स्तरी फसलों पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होना चाहिए।

पेड़ों के नीचे उगने के कारण तथा उनकी पत्तियों के मृदा में मिलने से वार्षिक फसलों के उत्पादन में प्रायः वृद्धि देखी गयी है। साथ ही पेड़ों के नीचे के क्षेत्र में तापमान अधिकता को भी काफी हद तक कम किया जा सकता है। यदि वृक्ष फसल लेग्युमिनेसी कुल का हो तो उसके जड़ों द्वारा भी मृदा में नत्रजन का स्थिरिकरण होगा, जिससे उर्वरकों पर होने वाले व्यय को भी कम किया जा सकता है। फल वृक्षों को फसल उत्पादन प्रणाली में लाने से न केवल आय एवं उत्पादन में वृद्धि होती है अपितु परिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में भी सहयोग मिलता है। शुष्क क्षेत्रों में, फलों के पेड़ कई कार्यों को निष्पादित करते हैं, जिनमें से कुछ नीचे वर्णित हैं–

- इनके द्वारा मिट्टी को स्थिरता प्रदान कर पानी और मिट्टी कटाव को रोका जा सकता है। यह कार्य, फल वृक्ष वार्षिक पौधों से बेहतर ढंग से करते हैं क्योंकि इनकी जड़ें काफी व्यापक होती हैं। मिट्टी की स्थिरता, कृषि गतिविधियों की निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं।

- बेर, अंजीर, शहतूत आदि पशुओं और वन्य जीवन के लिए चारा का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं।
- वे ईंधन की लकड़ी, डंडे, लकड़ी के उत्पादों आदि के एक अच्छे स्रोत हैं। प्राप्त लकड़ी भवन निर्माण सामग्री के रूप में भी प्रयोग में लाये जा सकते है जैसे बेर और जामुन।
- वे आबादी के लिए खाद्य पदार्थों का स्रोत रहे हैं। कई फल, पत्तियां, कोमल शाखाएँ, और जड़ शुष्क मौसम में तथा आपात स्थिति में बहुमूल्य भोजन उपलब्ध कराने के महत्वपूर्ण साधन हैं।
- फल–वृक्ष, गैर–काष्ठीय उत्पादों के भी स्रोत रहे हैं। कई पेड़ों का उपयोग उद्योगों में भी होता है। इनसे उपभोक्ताओं के रोज–मर्रा की वस्तुएं बनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, पेड़ की छाल में उपस्थित टैनिन का प्रयोग चमड़ा उद्योग में होता है। बर्मा में, बेर फल का इस्तेमाल रेशम रंगाई में किया जाता है। कई फलों के पौधों के पराग को शहद उत्पादन (मधुमक्खी पालन) के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इसी तरह, भारतीय बेर को लाख कीट को पालने में किया जाता है।

2. **घटक फसलें**:– ये उत्पादक की आवश्यकता के अनुसार, फसल प्रणाली में विविधता लाने के लिए मुख्य फसल के साथ उगाई जाने वाली फलीय पौधें हैं। इन्हे या तो पूरक फसल के रूप में अथवा स्थायी फसलों के तरह मुख्य फसल के साथ लिया जा सकता है। पूरक फसलों के रूप में लेते हैं तो इन्हे केवल मुख्य फसल की किशोर अवस्था के दौरान ही उगाया जाता है तत्पश्चात बड़े होने पर उखाड़ा दिया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में बेर मुख्य फसल के साथ फालसा, करोंदा, शहतूत, अंजीर, लसोड़ा, वूडएप्पल, बेलपत्र इत्यादि घटक फसल के रूप में उगाने के लिए उपयुक्त हैं।

विभिन्न फल फसलों की उपयुक्त किस्में–

सं.	फल फसल	किस्म
1	बेलपत्र	नरेंद्र बेल–9, गोमा यशी, थार नीलकंठ, थार दिव्य
2	सीताफल	बाला नगर, अर्का सहन
3	आंवला	गोमा ऐश्वर्या, एनए–7, कंचन
4	शहतूत	थार लोहित, थार हरित
5	करोंदा	पंत मनोहर, पंत सुदर्शन, केसुबासं सेल०1, थार कमल
6	बेर	गोला, सेब, उमरान, मुंडिया, थार भूभराज, थार सेविका, थार मालती
7	खजूर	हलावी, बरही, खुनेजी, खलास
8	लसोड़ा	थार बोल्ड
9	नीबू वर्गीय	किन्नो, मोसंबी, कागजी नीबू
10	जामुन	गोमा प्रियंका, थार क्रांति
11	महुआ	थार मधु
12	फालसा	थार प्रगति
13	खीरनी	थार ऋतुराज
14	चिरौंजी	थार प्रिया
15	इमली	गोमा प्रतीक

3. **अधः**–स्तरी फसलः फलों के पेड़ आधारित फसल प्रणाली में वृक्षों के बीच पर्याप्त स्थान होता है जिनमे सफलतापूर्वक वार्षिक फसलों को लिया जा सकता है। इन फसलों को पेड़ पंक्तियों के बीच अप्रयुक्त स्थानो में उगाया जाता है। इनमे सब्जियों, दाल, तेल बीज, चारा फसलों, औषधीय पौधों और बीज मसाले हो सकते है। सामान्यतरू, अंतर फसलें जलवायु और सामाजिक एवं आर्थिक उपयुक्तता के अनुसार चयनित की जाती हैं। कुछ विशिष्ट वार्षिक फसलों का उदाहरण निम्नलिखित है–

सब्जी फसलों में मतीरा, लौकी, तोरई, ककड़ी, काचरी, दालों में ग्वार, लोबिया, सेम, उड़द, चना इत्यादि, तेल बीज फसलों में राई और सरसों, चारे में सेवन, अंजन, धामन, कराड़ उपयुक्त विकल्प हैं। औषधीय पौधों में, ग्वारपाठा, तुम्बा, सेना, गूगूल, धतूरा, अरंडी, हिना आदि भी पेड़ों के मध्य उगाये जा सकते है। इसी तरह बीजीय मसालों में, मेथी, जीरा, मिर्च, धनिया, सौंफ को रबी के मौसम में लिया जा सकता है।

फसलों के चयन के लिए मानदंड

- अगेती होना।
- छाया के प्रति सहनशीलता।
- बहुवर्षीय फसल के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिए।
- बीमारियों के प्रति अतिसंवेदनशील नहीं होना चाहिए।
- ऐसे कृषि–कार्यों की जरूरत न हो जिससे मुख्य फसल की जड़ को क्षति पहुंचे या मिट्टी का कटाव हो।

- स्थानीय श्रम, सिंचाई और बाजार/प्रसंस्करण सुविधाओं के अनुरूप होना चाहिए।
- ऐसी फलीदार दलहनी फसलों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनमे नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता हो।

बहुवर्षीय घटक फसल

- स्थापित करने में आसान हो।
- जड़ प्रणाली अधः–स्तरी फसलों की तुलना में गहरी हों ताकि गहरी मिट्टी परतों में उपलब्ध पोषक तत्वों का फायदा उठाने में सक्षम हो।
- अच्छा उत्पादन क्षमता।
- शाखाएँ अच्छी तरह से विन्यासित हो ताकि नीचे उगने वाली फसल को भी पर्याप्त प्रकाश मिल सके।
- अधः–स्तरी फसलों के विकास की अवधि के दौरान पत्तों को गिराए ताकि उन्हे पोषण मिल सके।
- पत्तों के अपघटन का मिट्टी की उर्वरता पर सकारात्मक प्रभाव होना चाहिए।
- पत्ते पशुओं के खाने योग्य हों।
- उच्च बायोमास उत्पादन की क्षमता।
- जैविक और अजैविक तनाव के प्रति सहिष्णुता।
- चराई का सामना करने की योग्यता।
- फलन नमी उपलब्धता की अवधि के साथ मेल खाता हो।

अधः–स्तरी वार्षिक घटक फसल

- जैविक और अजैविक तनाव के प्रति सहिष्णुता।
- अधिक फलीदार।
- बौना और फैलने वाला हो।
- लघु अवधि में तैयार हो।
- मिट्टी को बांधने की बेहतर क्षमता हो, जिससे कटाव रूक सके।
- आंशिक छाया के प्रति सहनशील हो।
- उच्च उपज और गुणवत्ता।

अंतरसस्य प्रणाली संबन्धित कृषि क्रियाएँ

कॉंट–छॉंट

फल आधारित खेती प्रणाली में लगे वृक्ष कुछ वर्ष पश्चात इतने बड़े हो जाते हैं कि उनके छत्रक आपस में मिलने लगे हैं। परिणामस्वरूप, वृक्षों और उनके नीचे लगे वार्षिक फसलों में भी प्रकृतिक संसाधनों को पाने के लिए होड़ लग जाती है। अतः, यह आवश्यक है कि वृक्षों के छत्रकों को समय–2 पर काटते रहना चाहिए। कुछ फसलों जैसे, बेर में गर्मी के मौसम में तथा अनार एवं फालसा में वसन्त ऋतु में यह कार्य प्रत्येक वर्ष होना चहिए। अन्य वृक्षों में यह जरूरत के अनुसार होना चाहिए।

जल प्रबंधन

जल शुष्क भूमि बागवानी का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है। इसलिए, इसके विवेकपूर्ण उपयोग एवं संरक्षण की जरूरत है। वर्षा का अधिकांश जल वाष्पीकरण और सीपेज के माध्यम से खो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यथा स्थाने जल संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। बेर में 0.5–5% तक भूमि में ढलाव देने से सूक्ष्म–जलग्रहण स्थान की सुविधा हो जाती है। इसके अतिरिक्त, ड्रिप पद्धति से सिंचाई और पलवार लगाने से भी पौधों के चारों ओर नमी संरक्षित रहती है।

फल वृक्षों के साथ लाभकारी अंतरसस्य समायोजन

अनुसंधानो से ज्ञात हुआ है कि बहुवर्षीय फल वृक्षों एवं वार्षिकी फसलों को एक साथ उगाने से, एकल फसल उत्पादन कि तुलना में, सम्मिलित उत्पादन से 40–50 प्रतिशत अधिक लाभ मिलता है। राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केंद्र, अजमेर में किए गए शोध से पता चलता है कि विभिन्न बीजीय मसालों को आंवला अथवा बेर के साथ विभिन्न समायोजनों के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, उदाहरणस्वरूप (क) बेर/आंवला+कलोंज़ी, चंवला (ख) बेर/आंवला+विलायती सौंफ़, ग्वार, (ग) बेर/आंवला+राई–उ़दय (घ) बेर/आंवला+मेथी+भिंडी, (ङ) बेर/आंवला,+धनिया, मूंग।

बेर के साथ धनिया की खेती में धनिया कि बीज कि उपज लगभग 528 किग्रा./हे. तथा फल उपज 25256 किग्रा./हे. तक प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार, बेऱ–मेथी में बीज उपज लगभग 1255 किग्रा./हे. एवं फल उपज 26271 किग्रा./हे., बेर–अजवाइन में बीज लगभग 559 किग्रा./हे. जबकि फल उपज 24886 किग्रा./हे. तक प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार, आंवला के साथ धनिया अंतरसस्यन करने पर बीजोत्पादन लगभग 512 किग्रा./हे. पाया जा सकता है। आंवला मेथी में बीज एवं फल का उत्पादन क्रमशः 1220 किग्रा./हे. तथा 48357 किग्रा./हे. तक प्राप्त की जा सकती है।

केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में किए गए अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि बेर–ग्वार–सरसों की खेती से प्रति हेक्टेयर 15.6 क्विं. फल, 12.5 क्विं. हरा चारा, 8.5 क्विं. ईंधन काष्ठ, 6.7 क्विं. ग्वार और 1.2 क्विं. सरसों के साथ कुल रू. 46 हजार का शुद्ध लाभ होता है। इसी प्रकार, आंवला–बेर–ग्वार–सौंफ, आंवला–बेल–ग्वार–धनिया, आंवला–खेजड़ी–ग्वार–अजवाइन और आंवला–सहजन–ग्वार–सुवा की खेती से क्रमशः 1.10, 0.98, 0.93 और 0.87 लाख प्रति हेक्टेयर का शुद्ध लाभ होता है। इसी प्रकार, खेजड़ी की पारम्परिक खेती में मोठ, बाजरा, ग्वार, काचरी, काकड़ी इत्यादि के समायोजन से 23–42 हजार का प्रति हेक्टेयर का शुद्ध लाभ होता है। खेजड़ी की गैरपरंपरागत खेती में अनार, नीबू, बेर, आंवला, मूँगफली, सरसों, कपास, जीरा एवं शीतकालीन सब्जियों के समायोजन करने पर 75 हजार से सवा दो लाख का विशुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि, शुष्क क्षेत्रों में ग्रामीण जनमानस के जीवन–यापन का मुख्य स्त्रोत है। परन्तु बदलती वातवरणीय परिस्थितियों के कारण बहुधा अकाल एवं सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे व्यापक रूप से आर्थिक हानि भी होती है। ऐसी परिस्थिति में किसी एक प्रकार की फसल चाहे वो मौसमी फसल हो अथवा चारे वाली फसल हो, को लेना अहितकर है। ऐसी स्थिति में बहुफसली अंतरसस्य प्रणाली को अपनाना शुष्क क्षेत्रों के लिए वरदायी सिद्ध हो सकता है। अतः, शुष्क क्षेत्र की जलवायवीय एवं पारिस्थितिकीय तंत्र, एवं इसके विशिष्ट और विविध प्रकृति की मांग जैसे फल, अनाज, चारे एवं ईंधन की मांग को ध्यान में रखते हुए, फल आधारित बहुफसली अंतरसस्य प्रणाली को अपनाना आज के समय की एक प्रमुख आवश्यकता है।

हरे कृष्ण, प्रो. पी.एल. सरोज एवं लोकेश कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

अच्छा बहुभाषा का ज्ञान,
इससे बनते हैं महान् !!
सीखो जी भर भाषा अनेक,
पर राष्ट्रभाषा न भूलो एक !!

पोषणता में भरपूर शहतूत

शहतूत सेहत के लिए बेहद फायदेमंद होता है। यह स्वादिष्ट और शीतल फल है। आयुर्वेद में शहतूत के कई फायदों के बारे में बताया गया है। शहतूत में मौजूद गुण शरीर में पानी की कमी को दूर करके प्यास को बुझाते हैं। साथ ही साथ यह पेट की जलन, और पेट के कीड़ों कों खत्म करता है। शहतूत में मौजूद पोटेशियम, विटामिन ए और फास्फोरस शरीर के कई रोगों जैसे जोड़ों के दर्द, गले की बीमारी और आमवात को ठीक करते हैं। शहतूत में प्रचुर मात्र में स्वास्थ्य वर्धक पादप रसायन जैसे कि पोली फेनोलिक तत्व तथा अंथोस्यनिन पाये जाते है। शहतूत की अनेक प्रजाति होती है मुख्य रूप से यह दो प्रकार का होता है बड़ा शहतूत और छोटा शहतूत। शहतूत एक बहूद्देशीय फलदार पेड़ है। इससे कृषि के महत्व की कई उत्पाद प्राप्त किए जाते है। इसकी पत्तियां पशुओ को चारे के लिये उपयोगी है। टहनियों से टोकरी तथा जलाऊ ईंधन के साथ कई अन्य उत्पाद भी बनाए जाते है। विगत वर्षो के दौरान शहतूत पर केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान बीकानेर में सघन अनुसंधान कार्य किए गए। अनुसंधानों से सिद्ध हुआ है कि इसकी बागवानी शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कि जा सकती है। प्रस्तुत लेख में शहतूत की बागवानी के विषय में जानकारी दी जा रही है।

जलवायु एवं मिट्टी

शहतूत के लिए सभी प्रकार की मिट्टी उपयुक्त रहती है. इन फलों के लिए 6.2 – 6.8 पी.एच. वाली मिट्टी सबसे अच्छी रहती है। रेतीली भूमि में गड्ढों में गोबर की खाद तथा चिकनी मिट्टी मिलाकर पोधे सफलता पूर्वक लगाए जा सकते है। लवणीय या क्षारीय मिट्टियाँ तथा एसे क्षेत्र जहाँ पानी ठहर जाता हो, शहतूत के फलों के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते। यह अवश्यक है की बाग लगाने से पहले मृदा जाँच अवश्य कराये।

उन्नत किस्में

इस संस्थान द्वारा शहतूत की दो उन्नत किस्मों थार लोहित एवं थार हरित का विकास किया है।

थार लोहित

शहतूत की यह किस्म कम (Ba<) और उच्च तापमान दोनों के प्रति सहिष्णु (–20 से 490 डिग्री सेल्सियस) है।

थार लोहित किस्म

इसके फलों का रंग लाल, वजन 10.50–11.46 ग्राम, फल की चौड़ाई करीब एक सेमी और लंबाई 5.6–7.0 सेमी तक होता है। इस किस्म में तीसरे वर्ष से फल आने शुरू हो जाते हैं तथा एक पूर्ण विकसित वृक्ष प्रति वर्ष 26.5 किग्रा उपज देता है। फलों में परिपक्वता फल सेट होने से 32–36 दिनों के बाद होता है। इसके फलों के गुणवत्ता निम्नवत है– कुल घुलनशील ठोस 20.80 ब्रिक्स, अम्लता 1.6 प्रतिशत, विटामिन सी 11.2 मिलीग्राम / 100 ग्राम तथा कुल प्रतिऑक्सीकारक गतिविधि 6.81 माइक्रोमोल ट्रोलोक्स समतुल्य/ ग्रा.। इस किस्म को ताजे फल और प्रसंस्करण दोनों के उद्देश्य से उपयोग में लाया जा सकता है।

थार हरित

यह एक हरा–सफेद रंग के फलों वाली किस्म है। फलों में परिपक्वता फल सेट होने से 38–42 दिनों के बाद होता है। इस किस्म में, तापमान से संबंधित तनाव के कारण पौधे की वृद्धि और फल की उपज अप्रभावित रहती है। इसके फलों का औसत वजन 3.76 ग्राम होता है। इस किस्म में तीसरे वर्ष से फल आने शुरू हो जाते हैं तथा एक पूर्ण विकसित वृक्ष प्रति वर्ष 32.6 किग्रा उपज देता है। फलों में परिपक्वता फल सेट होने से 32–36 दिनों के बाद होता है। इसके फलों के गुणवत्ता निम्नवत है– समुर्ण घुलनशील ठोस 31.50 ब्रिक्स, अम्लता 0.42 प्रतिशत, विटामिन सी 23.7 मिलीग्राम/100 ग्राम तथा कुल प्रति ऑक्सीकारक गतिविधि 4.30 माइक्रोमोल ट्रोलोक्स समतुल्य/ग्रा.। इस किस्म को भी ताजे फल और प्रसंस्करण दोनों के उद्देश्य से उपयोग में लाया जा सकता है।

थार हरित किस्म

प्रतिऑक्सीकारक तत्वों से भरपूर शहतूत के एक जननप्रकार के फल

प्रवर्धन और मूलवृन्त

मूलवृन्त उगने के लिए फल से निकले हुए ताजे बीज मई–जून के महीने में बोने चाहिए। देसी किस्म की शाखाओ से भी मूलवृन्त तैयार कर सकते है। इन फलों के प्रवर्धन के लिए 'टी' कलिकायन का तरीका सबसे अच्छा है। इसके लिए मई–अगस्त के महीने अति उत्तम पाए गए हैं। शहतूत का प्रवर्धन कलम द्वारा भी किया जाता है। शहतूत का प्रवर्धन टिशू कल्चर से भी किया जा सकता है।

ऊतक संवर्धित शहतूत पौधे

कलम से तैयार पौधे

बाग की स्थापना

बाग लगाने के लिए 15–20 फुट की दूरी पर 3 x 3 x 3 फीट आकर के गड्ढे खोद लिए जाते हैं. इन गड्ढों को मिट्टी के साथ 20–25 कि०ग्रा० गोबर की खाद मिलकर भर दिया जाता है. पौधा गड्ढे में उतनी गहराई में लगाना चाहिए जितनी गहराई तक वह नर्सरी या गमले में या पोलीथीन की थैली में था। अधिक गहराई में लगाने से तने को हानि पहुँचती है और कम गहराई में लगाने से जड़े मिट्टी के बाहर जाती है, जिससे उनको क्षति पहुँचती है।

जो पौधे कलिकायन द्वारा तैयार किये जाते हैं वे लगभग एक साल में रोपाई योग्य हो जाते हैं, पौधे लगाने के लिए बरसात का मौसम अति उत्तम है. परन्तु फरवरी एवं मार्च में भी पौधे सफलतापूर्वक लगाये जा सकते हैं। पौधे लगाने से पहले प्रत्येक गड्ढे की मिट्टी में 20 किग्रा. या एक टोकरी गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद और एक किलो सुपर फॉस्फेट मिलाना अच्छा रहता है। पूरी तरह विकसित और फल देने वाले वृक्षों के लिए प्रति पेड़ 30–40 किग्रा. गोबर की खाद, 0.5 किग्रा. यूरिया, 2.5 किग्रा. सुपर फास्फेट और 1.5 किग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। उर्वरकों की उपरोक्त मात्र का उपयोग दो बराबर खुराकों में करें। पहली खुराक जनवरी में दें, और दूसरी वर्षा ऋतु में देवे। दोनों बार उर्वरक देने के बाद सिंचाई करें. गोबर की खाद वर्षा ऋतु के महीनों में डालनी चाहिए।

सिंचाई

शहतूत सूखारोधी फल है। फिर भी अच्छी पैदावार के लिये सिंचाई करना जरूरी होता है। रोपाई के तुंरत बाद बाग की सिंचाई करें। पोधों के स्थापन हेतु शुरू में जल्दी–जल्दी सिचाई करे। गर्मियों के मौसम में हर 10 या 15 दिन के अंतर पर और सर्दियों के मौसम में प्रति 4–6 सप्ताह बाद सिंचाई करनी चाहिए। बरसात के मौसम में सिंचाई की यदाकदा ही आवश्यकता होती है। शुष्क क्षेत्र में ड्रिप सिचाई विधि सबसे अच्छी रहती है। इसके द्वारा पानी की बचत उर्वरकों का सही उपयोग होता है तथा फलों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

निराई – गुड़ाई

शहतूत के फलों वाले बागों को कभी भी गहरा नहीं जोता जाना चाहिए। क्योंकि इन पेड़ों की जड़ें जमीन की उपरी सतह में रहती हैं और गहरी जुताई करने से उनके नष्ट होने का खतरा रहता है। बागों में खरपतवारों की रोकथाम समय–समय पर करनी चाहिए।

पौधों की कटाई–छंटाई

पौधों का अच्छा विकास तथा आकार के लिए उनकी छंटाई प्रारम्भिक अवस्था से ही शुरू हो जाती है। पौधे की लगभग बाहर निकलने वाली शाखाओं को काट दिया जाना चाहिए और इस प्रकार लगभग 45 से०मी० लम्बाई का साफ और सीधा तना ही रहने दिया जाना चाहिए। बड़े पोधों में समय पर सभी रोग–ग्रस्त, टूटी हुई शाखाओं वाली और सुखी लकडी वाली टहनियों को निकलते रहना चाहिए। जिस जगह पर कलि जोड़ी है उसके ठीक नीचे से निकलने वाली देसी प्ररोहों को उनकी आरंभिक अवस्था में ही तोड़ देना चाहिए। जिन स्थानों पर शाखाएँ काटी गयी हों, वहां पर बोर्डोक्स नामक रसायन की लेई बना कर लगा दें। यह लेई एक किग्रा. कॉपर सल्फेट, 1.5 कि०ग्रा० बुझा चुना, और 1.5 लीटर पानी को मिलकर तैयार की जा सकती है।

फलों में लदी सहतूत की एक शाखा

फलों की तुड़ाई एवं उपज

शुष्क जलवायु में शहतूत के फल अप्रैल–मई के महीनों में तुड़ाई के लिये तैयार हो जाते है। परिपक्व पेड़ से 25–30 किलोग्राम फल मिल जाते है।

शहतूत के स्वास्थ्य वर्धक गुण

शहतूत सेहत के लिए बेहद फायदेमंद होता है। यह स्वादिष्ट और शीतल फल है। आयुर्वेद में शहतूत के कई फायदों के बारे में बताया गया है। शहतूत में मौजूद गुण शरीर में पानी की कमी को दूर करके प्यास को बुझाते हैं। साथ ही साथ यह पेट की जलन, और पेट के कीड़ों कों खत्म करता है। शहतूत में मौजूद पोटेशियम, विटामिन ए और फास्फोरस शरीर के कई रोगों जैसे जोड़ों के दर्द, गले की बीमारी और आमवात को ठीक करते हैं। शहतूत खाने से पाचनशक्ति बढ़ती है। और जुकाम भी ठीक होता है। कब्ज और पेशाब संबंधी रोग शहतूत खाने से ठीक होते हैं। शहतूत खाने से आंखों की रोशनी बढ़ती है। गर्मियों में शहतूत आपको लू से बचाता है। लू से बचने के लिए हमेशा शहतूत खाएं। शहतूत सेवन करने से लीवर की बीमारी, पेशाब में जलन और गुर्दों की बीमारी भी ठीक होती है। शहतूत के पत्तों की चाय भी पी जाती है।

शहतूत के फल प्रति ऑक्सीकारक तत्वों से भी भरपूर होते हैं। संस्थान के जननद्रव्य प्रक्षेत्र में उपलब्ध 10 किस्मों पर किए गए शोध से ज्ञात होता है कि कुल प्रति ऑक्सीकारक क्षमता विभिन्न किस्मों में 3.02 जव 6.92 माइक्रोमोल ट्रोलोक्स समतुल्य/ग्रा तक पाया गया है, जबकि शहतूत की किस्म दिल्ली लोकल में कुल प्रति आक्सीकारक क्षमता सर्वाधिक पायी गयी है। अतः शहतूत ऐसा फल है जिसके उपयोग से न केवल जरूरी विटामिन/पोषक तत्व मिलते हैं, अपितु इसका नियमित उपयोग शरीर को बीमारियों से लड़ने की भी क्षमता देती है।

धुरेन्द्र सिंह, कमलेश कुमार एवं प्रो. पी. एल. सरोज
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

खेजड़ी आधारित बागवानी फसल उत्पादन प्रणालियाँ

देश के उत्तरी–पश्चिमी गर्म मरुस्थलीय क्षेत्र की जलवायु अत्यधिक कठोर होने से कृषि उत्पादन मिश्रित व पशुधन आधारित फसल व्यवस्थाओं से किया जाता है। मरुस्थलीय जलवायु को आधार बनाकर विगत 25 वर्षों से किए गये अनुसंधान अध्ययनों में बागवानी फसलों की व्यावसायिक उत्पादन क्षमता की संभावनाओं एवं रूकावटों जैसे प्रमुख घटकों का विश्लेषण कर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं तथा इन कार्यों से एक सुनियोजित योजना का सृजन किया गया है जिसको बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन नाम दिया है। कम वर्षा, लम्बी समयावधि एवं अधिक तापमान वाला ग्रीष्मकाल तथा सर्दियों में अत्यधिक न्यूनतम तापमान एवं पाले जैसी वातावरणीय रूकावटों में भी यहाँ सुनियोजित फसलों का चुनाव व उनकी समयावधि को क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप उत्पादन प्रणालियों में समावेश कर व्यावसायिकता की प्रबल संभावनाएँ आँकी गई हैं। फसलों को वातावरणीय प्रकोप के प्रभाव से बचाने एवं निश्चित उत्पादन के लिए प्रक्षेत्र में उचित कृषि–वातावरण तैयार करना एक सैद्धांतिक आवश्यकता मानी गई है। शुष्क क्षेत्र में फसल सुरक्षा एवं प्रबंधन की विशेष आवश्यकता है जो प्रभावशाली, स्थिर एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण हो, जिससे किसान उन्हें सहजता से अपना सकें। इसी के साथ फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए उन्नत व नवोन्वेषित तकनीकों को प्रक्षेत्र प्रबन्धन व्यवस्थाओं में अपनाना होता है।

खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र

मरूधरा में खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) एक बहुवर्षीय पेड़ एवं बहु–उपयोगी स्थानीय प्रजाति है तथा इससे पौष्टिक चारा (लूँग) एवं सब्जी उपयोगी फलियाँ (सांगरी) प्राप्त होती है। इस वृक्ष का योजनाबद्ध विस्तार एवं संरक्षण करके इसके सहचर्य में लाभ ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह पौष्टिक खाद्य स्त्रोत के साथ भूमि संरक्षण, पर्यावरण संतुलन, कृषि–योग्य वातावरणीय सुधार तथा नियमित आय के लिए भी अतिउपयोगी है। यहाँ खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास की नवोन्वेषित तकनीकियाँ अपनाकर कृषि, बागवानी व पशुपालन से इस क्षेत्र में अकाल की स्थिर कु–छाया को सुकाल में परिवर्तित किया जा सकता है। राजस्थान के बीकानेर, चूरू, नागौर, जोधपुर, बाड़मेर, जालौर, पाली, अजमेर, जैसलमेर इत्यादि में किए गए बागवानी संबंधी सर्वेक्षण तथा विश्लेषण से पाया कि यहाँ किसान खेजड़ी के बीजू वृक्षों को, जो कि स्वतः उगे होते हैं उन्हें व्यवस्थित कर संरक्षित रखते हैं तथा इनकी संख्या प्रायः 14–115 प्रति हेक्टेयर तक पाई गई है। खेतों में प्राकृतिक अवस्था से उगे खेजड़ी वृक्षों के साथ वर्षा ऋतु में बाजरा, ग्वार, मोठ, मूंग, चंवला, तिल, मूंगफली, काचरी, काकड़िया, मतीरा, टिण्डा एवं सर्दियों में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, तारामीरा जैसी फसलों का सफलतापूर्वक उत्पादन कर रहे हैं। इसी तरह बागवानी में कई प्रकार की सब्जियों, बीजीय मसालों एवं फलवृक्षों (बेर, आंवला, अनार, बीलपत्र, किन्नू, नीबू) की सफलतापूर्वक खेती तथा स्थानीय पेड़–पौधों, झाड़ियाँ व चारा फसलों (लसोड़ा, बोरड़ी, झरबेर, केर, कुमट, पीलु, रोहिड़ा, फोग, सेवण, धामण, भरूट) में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं उत्पादन इसके कल्पवृक्ष होने की संज्ञा को प्रमाणित करता है।

शुष्क क्षेत्र के किसानों की आय में बढ़ोत्तरी व स्थिरता के लिए खेजड़ी को उपरोक्त वर्णित सूखा सहिष्णु स्थानीय पेड़–पौधों व फसलों को संसाधनों के अनुरूप विविध उत्पादन प्रणालियों में समावेश कर वैज्ञानिक परिणामों से इसकी सार्थकता को सिद्ध करने की आवश्यकता है तथा इसके लिए बहुआयामी एवं दीर्घकालीन अनुसंधान अध्ययनों की आवश्यकता थी। इस संस्थान में खेजड़ी को बागवानी फसल के रूप में स्थापित किया है जिससे इसके साथ उत्पादन प्रारूप विकसित कर इन फसलों की भी गुणवत्तायुक्त उत्पादक क्षमता बढ़ायी जा सके। विविध तथ्यों को ध्यान में रखकर वर्ष 2007 से खेजड़ी पौधरोपण के 12 प्रारूपों जैसे केएम–1 (4x4 मी.), केएम–2 (6x6 मी.), केएम–3; (8x8 मी.), केएम–4 (8x4 मी.), केएम–5 (8x4x4 मी.), केएम–6 (6x4 मी.), केएम–7; (6x4x4 मी.), केएम–8 (24x4 मी.), केएम–9 (24x4x4 मी.), केएम–10 (44x4 मी.), केएम–11 (44x4x4 मी.) एवं केएम–12 विकसित कर अनुसंधान कार्य प्रारंभ किए हैं।

1) प्रक्षेत्र विकास तकनीक

खेजड़ी आधारित बागवानी की इस योजना में कृषि के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ विकसित की जाती हैं तथा किसान, जिनके पास 4–16 या 25 बीघा जमीन का

एकल जोत है वे संसाधनों के अनुरूप परम्परागत अथवा गैर–परम्परागत फसलों का समावेश विविध उत्पादन प्रणालियों में कर सकते हैं एवं उनको प्रारम्भ के 2–3 वर्षों तक कड़ी मेहनत करनी होती है जिसका प्रतिफल सुनिश्चित व निरन्तर लाभ है। इसमें सर्वप्रथम चयनित भू–भाग की बाड़ या तार बंदी करनी होती है जो इस योजना का पहला सैद्धांतिक आधार है क्योंकि इस कार्य से ही खेत में उपयुक्त कृषि–वातावरण तैयार करने के लिए प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में क्रमबद्ध, स्थानीय व बीजु पेड़–पौधों की एकल अथवा जोड़े (4 x 4 मीटर) में वायुरोधी पंक्तियाँ विकसित की जाती हैं। इसके लिए बहुउपयोगी पेड़–पौधे जैसे खेजड़ी या केर, रोहिड़ा (पूर्व), खेजड़ी या केर, लसोड़ा, रोहिड़ा (पश्चिम), खेजड़ी या कुमट, रोहिड़ा, बोरड़ी (उत्तर) एवं खेजड़ी या लसोड़ा, रोहिड़ा, कुमट (दक्षिण) को पंक्तिनुमा लगाना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है क्योंकि यह पेड़ गर्म व ठंडी हवाओं को रोकने में सहायक सिद्ध हुए हैं, साथ ही प्रतिकूल जलवायु, व सूखा सहन करने की क्षमता रखते हैं तथा यह विविध खाद्य उत्पाद एवं आय के स्त्रोत भी हैं।

प्रक्षेत्र विकास पर सतत अध्ययनों से यहाँ की जलवायु व संसाधनों के अनुरूप व्यावसायिक व यांत्रिकीकरण खेती के लिए तीन संयोजनों वाली व्यवस्थायें सर्वाधिक उपयुक्त हैं एवं इनको इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

(अ) जैविक पंचकूटा उत्पादन तकनीक :– इस प्रणाली में स्थानीय पेड़–पौधे जिनके उत्पाद पंचकूटा सब्जी के उपयोग में लिये जाते हैं उन पाँच फसल घटकों का जैविक व वर्षा आधारित उत्पादन किया जाता है। इसमें खेजड़ी की किस्म थार शोभा के एकल बगीचे (एक हेक्टेयर का इकाई खेत के एम–1 4x4 या केएम–-3 8x8 मीटर) मुख्य फसल के रूप में तथा प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में केर (पूर्व व पश्चिम), कुमट (उत्तर) व लसोड़ा (दक्षिण) को 4x4 मीटर जोड़े में पंक्तिनुमा विकसित किये जाते हैं। बगीचे के मध्य की भूमि को फसल उत्पादन के लिए तैयार कर काचरी की व्यवस्थित खेती की जाती है।

(ब) अल्पप्रचलित फसल उत्पादन तकनीक :– इस प्रणाली में खेजड़ी के साथ परम्परागत/अल्पप्रचलित फसलों का वर्षा आधारित अथवा सीमित सिंचाई संसाधनों से उत्पादन किया जाता है। इसमें खेजड़ी के एकल बगीचे (एक हेक्टेयर इकाई खेत KM-3, 8 x 8 मीटर) आधार वृक्षों के रूप में तथा प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में केर (पूर्व व पश्चिम), कुमट (उत्तर) व लसोड़ा (दक्षिण) को जोड़े (4x4 या 8x8 मीटर) में पंक्तिनुमा पौधे विकसित किये जाते हैं। बगीचे के मध्य की भूमि को खेत स्वरूप तैयार कर वर्षा व शीतकालीन चयनित फसलों (बाजरा, ग्वार, मोठ, मूंग, चंवला व सब्जी एवं बीजीय मसाला) का व्यवस्थित उत्पादन किया जाता है।

(स) व्यावसायिक फसल उत्पादन तकनीक :– इस तकनीकी में खेजड़ी के पौधों को अधिकतम दूरी की पट्टिकाओं पर पंक्तिनुमा व जोड़े में (4x4 मीटर) विकसित किया जाता है तथा प्रक्षेत्र की अधिकतम चौड़ाई वाली इन पट्टिकाओं को विविध व मुख्य फसल (अनाज, दलहन, तिलहन, चारा, सब्जी, बीजीय मसाला, फल व नगदी) उत्पादन प्रणालियों के उपयोग में लिया जाता है। इस पद्धति में खेजड़ी को अधिकतम दूरी के अंतराल पर आधार वृक्ष व बगीचेनुमा प्रारूप (1–4 हेक्टेयर इकाई खेत, केएम–.7, केएम–.9 या केएम–11 से 16, 24 या 44 मीटर) तथा प्रक्षेत्र के किनारों की चारों दिशाओं में बीजू खेजड़ी (पूर्व व पश्चिम), कुमट (उत्तर) व लसोड़ा (दक्षिण) को पंक्तिनुमा व जोड़ों (4x4 मीटर) में विकसित किया जाता है। प्रक्षेत्र की अधिकतम चौड़ाई वाली पट्टिकाओं (16, 24 या 44 मीटर) की भूमि को खेत स्वरूप विकसित कर विविध प्रणालियों एवं उचित सिंचाई जल प्रबंधन (नाली, बूँद–बूँद या फव्वारा) तकनीकियाँ अपनाकर व्यवस्थित फसल उत्पादन किया जाता है।

2) प्रक्षेत्र स्थापना एवं पौध–रोपण तकनीक

किसान, जिनके पास 4–16 या 25 बीघा मरुस्थलीय जमीन का एकल जोत है वह उपरोक्त वर्णित व्यवस्थाओं को संसाधनों के अनुरूप कृषि–बागवानी–पशुधन उत्पादन के लिए चयन कर सकते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम चयनित भू–भाग की बाड़ या तार–बंदी करने के पश्चात् भूमि का व्यवस्थित रेखांकन कर पौध–रोपण के लिए खेत तैयार किये जाते हैं। प्रक्षेत्र–बंदी पश्चात् ही खेत में उचित कृषि–वातावरण तैयार करने वाले पेड़–पौधों को योजनाबद्ध व पंक्तिनुमा किनारों पर लगाने की तैयारियाँ की जाती हैं। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के 2–3 महीने पहले प्रक्षेत्र की चारों दिशाओं में तार/बाड़–बंदी के अन्दर व बाहर की ओर एक मीटर चौड़ी व इतनी ही गहरी खाई बना ली जाती है।

वर्षा ऋतु प्रारम्भ होते ही जुलाई के महीने में प्रक्षेत्र–बंदी के अन्दर वाली खाई में प्रारूप के अनुरूप निश्चित स्थलों पर स्थानीय प्रजातियों जैसे खेजड़ी, रोहिड़ा, लसोड़ा, कुमट, बोरड़ी, झरबेर, केर, इत्यादि के बीजू पौधे लगावें अथवा इनके बीजों की बुवाई भी निश्चित गड्डों में की जा सकती है। जिन स्थानों पर पौधे मर

जाते हैं वहाँ पुनः या बारम्बार पौध–रोपण वर्षा ऋतु में ही कर लेवें जिससे प्रक्षेत्र विकास के पहले वर्ष में ही ये बीजू पौधे अच्छी तरह से स्थापित होकर बढ़वार लेने लगेंगे। इसी तरह प्रक्षेत्र के इकाई खेतों की मेड़–बंदी पर भी स्थानीय पेड़–पौधों व झाड़ियों की एकल अथवा जोड़े में पंक्तियाँ विकसित करें जिससे यह फसल सुरक्षा के लिए आवश्यक वायुरोधी पट्टिकाओं का कार्य करेंगी। इन पौधों की लगातार देखभाल करें एवं समय–समय पर कटाई–छंगाई कार्य कर उनको उचित एवं आवश्यक आकार देवें, साथ ही प्रक्षेत्र में पहले से स्थित पेड़–पौधों को भी व्यवस्थित रखें।

प्रक्षेत्र में खेजड़ी को चयनित उत्पादन प्रारूप एवं पौधों को व्यवस्थित पंक्तियों में लगाना होता है जिससे विकसित खेत का स्वरूप बगीचेनुमा बन सके। खेजड़ी आधारित व्यवस्था के लिए प्रक्षेत्र में उचित आकार के इकाई खेतों (1–4 हेक्टेयर) का चुनाव कर प्रणालियों के प्रारूप से पौध–रोपण के लिए रेखांकन कार्य किये जाते हैं। खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र दो आयामों से विकसित किये जाते हैं जिसमें पहला सांगरी उत्पादन के लिए एकल बागवानी तथा दूसरी पद्धति जिसमें इनको अधिकतम दूरी पर पंक्तिनुमा आधार वृक्षों के लिए लगाया जाता है। खेजड़ी के एकल बगीचों का प्रारूप (4x4 या 8x8 मीटर) तथा सघन/व्यावसायिक कृषि–बागवानी उत्पादन के लिए एक निश्चित व अधिकतम दूरी 16, 24 या 44 मीटर की पटिटकाओं पर जोड़ों में (4x4 मीटर) एवं पौधों की कतारों को पूर्व से पश्चिम की ओर स्थापित करना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है।

प्रक्षेत्र में पौध–रोपण के लिए वर्षा आगमन के साथ ही खेत में उपरोक्त वर्णित पद्धतियों में से चयनित प्रणाली के लिए रेखांकन से निश्चित दूरी पर 60x60x60 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढे अथवा नालियाँ बना कर गड्ढे तैयार कर लेवें। जुलाई महीने के वर्षा–दिनों में इन तैयार गड्डों में खेजड़ी के बीजों की बुवाई करें या नर्सरी से तैयार 6–9 महीने के बीजू पौधे लगावें अथवा उन्नत किस्म के पेबंदी–पौधे भी लगाये जा सकते हैं। खेत में नष्ट हुए पौधों के स्थान पर बारम्बार नये बीजू पौधे स्थापित करते रहें। प्रक्षेत्र में स्व–स्थानिक बगीचे के लिए जब ये बीजू पौधे 12–18 महीनों की आयु के होने लगें एवं अच्छी वानस्पतिक वृद्धि ले लेते हैं तब उन पर उन्नत किस्म से कलिकायन कर पेबन्दी बना दिया जाता है। खेजड़ी में कलिकायन का कार्य अप्रैल–अक्टूबर महीने तक सहजता से किया जा सकता है तथा लगातार कलियाँ प्राप्त करने के लिए मातृ–वृक्षों की कटाई–छँगाई नवम्बर महीने में करना सर्वाधिक उपयुक्त रहा है।

3) कटाई–छँटाई तकनीक

प्रक्षेत्र में स्थापित पेबन्दी–पौधों की प्रारंभिक अवस्था से ही व्यवस्थित देखभाल करें तथा कलिकायन भाग से नीचे के मुख्य तने से निकलने वाली जंगली शाखाओं को समय–समय पर काटते रहें। बगीचे में जहाँ–कहीं पौधे मर गए हों वहाँ समय पर नए पौधे लगाकर उनमें भी कलिकायन करें। पेबंदी–पौधों में प्रारम्भ के 4–5 वर्षों तक व्यवस्थित कटाई–छँगाई की आवश्यकता होती है जिससे इन्हें पेड़–नुमा आकृति दी जा सके। नवोन्वेषित तकनीकों को अपनाकर बागवानी के लिए विकसित खेजड़ी के बगीचे 4–5 वर्ष की आयु से ही फलन–योग्य एवं स्थायी आय के स्त्रोत बन जाते हैं। साथ ही यह आधार वृक्ष प्रक्षेत्र में उचित कृषि–वातावरण तैयार करने में सहायक सिद्ध हुए हैं जिससे बगीचे/पट्टिकाओं के मध्य की भूमि की उर्वरा शक्ति में बढ़ोतरी हुई है तथा तापमान में भी कमी पाई गई है इससे इनके मध्य में उगाई गई फसलों को अनुकूल लाभ प्राप्त हुआ है। खेजड़ी से प्रतिवर्ष साँगरी एवं लूंग उत्पादन के लिए इन पेड़ों की वार्षिक कटाई–छँगाई का कार्य जून महीने के प्रथम पखवाड़े में करें जिस समय इनसे पकी फलियाँ (खोखे) गिरना प्रारंभ होती हैं तथा इस तकनीकी से पेड़ों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि, वार्षिक सांगरी व लूंग एवं अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

4) नवोन्वेषित कृषि–क्रियाएँ

प्रक्षेत्र विकास व प्रबंधन की नवोन्वेषित तकनीकियों में समेकित फसल उत्पादन के लिए क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक ढंग से कृषि क्रियाओं जैसे वर्षा जल संग्रहण व नमी संरक्षण को अपनाना जिसमें मानसून आगमन की सूचना के साथ ही जून महीने में प्रक्षेत्र व पट्टिकाओं के मध्य की भूमि को तैयार कर गहरी जुताई प्रमुख है। इसी प्रकार जून महीने के दूसरे पखवाड़े में गोबर/भेड़–बकरी की मींगनी खाद मिलाकर एक बार पुनः गहरी जुताई करें, तत्पश्चात् पाटा लगाकर खेत को खरीफ फसलों की बुवाई के लिए तैयार रखें। संस्थान में किये गये अनुसंधान अध्ययनों के निष्कर्षों से यह पाया गया कि जून महीने के दूसरे पखवाड़े में जुताई तथा फसल बुवाई के लिए उपरोक्त वर्णित क्रियाओं से तैयार खेत में वर्षा जल अधिक संग्रहित व संरक्षित रहता है एवं खरपतवार भी कम पनपते हैं। फसलों की कटाई पश्चात् नवम्बर–दिसम्बर के महीने में जुताई कार्य से इनके अवशेष व खरपतवार भूमि में मिल जाते हैं तथा सर्दियों में होने वाली वर्षा (मावठ) का जल भी खेत में अधिक संचित होता है। खेजड़ी प्रक्षेत्र

को मार्च से जून महीने तक पूर्णतया खाली रखने पर बागवानी वृक्षों (खेजड़ी, केर, लसोड़ा, फोग) में आवश्यक एवं उन्नत कृषि क्रियाएँ सहजता से की जाती हैं जिससे सर्वाधिक व गुणवत्तायुक्त फलियों व फल उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है।

खेजड़ी प्रणालियों में वर्षा आधारित चयनित फसलों की खेती के लिए जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई महीने के अंत तक जब भी अच्छी वर्षा का दौर हो उसी समय बुवाई कार्य करें। सिंचित खेती के लिए उपयुक्त विधि (बूँद–बूँद, फव्वारा या नाली) अपनाकर खरीफ एवं शीतकालीन फसलों का उत्पादन प्रणालियों में चुनाव करें। फल–वृक्षों एवं यांत्रिकीकरण से खेती में खेजड़ी पौधरोपण की अधिकतम दूरी वाली प्रणालियाँ सर्वाधिक उपयुक्त हैं। प्रक्षेत्र प्रबंधन तकनीकी में क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप फसलों की उन्नत किस्मों का चयन व समय पर विधिवत बुवाई, पौध संख्या निर्धारण, निराई–गुड़ाई व अन्तर–शस्य क्रियाएँ, नमी संरक्षण के लिए पलवार का उपयोग तथा सिंचाई जैसे महत्वपूर्ण घटकों को समेकित ढंग से अपनाना आवश्यक है। इसी प्रकार फसलों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि व उपज के लिए संतुलित खाद, उर्वरक एवं नियामक तत्वों का उपयोग तथा कीट–व्याधियों व पशु–पक्षियों से बचाव व सुरक्षा भी प्रक्षेत्र प्रबंधन के मुख्य अवयव हैं। इसी तरह फसलों में फल–फलियों व अन्य उत्पादों की समय पर तुड़ाई/कटाई, बाजार के अनुरूप तैयारियाँ व विपणन तथा खेत में ही उत्पाद प्रसंस्करण जैसे आर्थिक पक्ष की तकनीकियों को अपनाकर खेती में भी अधिक लाभ लिया जा सकता है।

आर्थिक प्रभाव

राजस्थान के शुष्क क्षेत्र जहाँ प्रायः वर्षा कम (250–350 मिलीमीटर) परन्तु एक नियमित अन्तराल पर होती है उन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता में स्थिरता के लिए खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास व प्रबंधन तकनीकी अपनाकर खेत की सूक्ष्म–जलवायु को फसलों के लिए अनुकूल एवं सुरक्षित बनाना अतिआवश्यक है तथा चयनित फसलों में वर्षा अथवा सीमित सिंचाई जल प्रबंधन से सुनिश्चित उत्पादन के लिए मानसून सूचना तंत्र का उपयोग एवं उपयुक्त तरीकों से जीवनदायी सिंचाई जैसे वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश करना प्रभावशाली रहा है। वर्षा आधारित कृषि–बागवानी–पशुधन की एकीकृत व्यवस्था में खेजड़ी के साथ झरबेर, सेवण घास या ग्वार या काचरी से सर्वाधिक उत्पादन (बायोमास) एवं आय अर्जित की जा सकती है।

कृषि–जलवायु एवं वर्षा को वर्ष 2012–2016 आधार बनाकर खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास व प्रबंधन तकनीकी अपनाकर जहाँ परम्परागत फसल की व्यवस्थित प्रणाली (KM–12) से 23000–42000 रूपया/हेक्टेयर आय आंकी गई, वहीं दूसरी ओर संस्थान द्वारा विकसित नवोन्वेषित व उन्नत तकनीकी के साथ चयनित फसल की विविध व्यवस्थाओं से मॉडल KM–1, KM–3, KM–7, KM–9 व KM–11 की स्थापना के पाँच–छह वर्षायु पर कुल आमदनी 75,000–2,25,000 रूपया/हेक्टेयर/वर्ष प्राप्त हुई है। साथ ही इन चयनित प्रणालियों की आयु 8–10 वर्ष पूर्ण होते ही आमदनी में स्थिरता व दोगुना आय का आँकलन किया गया है।

सारणी–1: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास के अंतर्गत मॉडल केएम–1 से पौधरोपण प्रारूप तथा यह स्थानीय पेड़–पौधों व फसलों एवं जैविक पंचकूटा उत्पादन की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली जहाँ सीमित वर्षा व संसाधनों से अधिकतम आय प्राप्त हुई है।

उत्पादन मॉडल	फसल	चार हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या			एक हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या		
		पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या	पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या
केएम–.1, 4x4 मी एकल पंक्तियाँ	खेजड़ी मुख्य फसल	44	46	2024	21	21	441
प्रक्षेत्र के चारों किनारों की पेड़ प्रजातियाँ, 4x4 मीटर पंक्तिनुमा जोड़े	केर, पूर्व व पश्चिम	3x2 (6)	50	300	2x2 (4)	25	100
	लसोड़ा, दक्षिण	1x2 (2)	44	88	1x2 (2)	21	42
	कुमट, उत्तर	1x2 (2)	44	88	1x2 (2)	21	42
	कुल पौधों की संख्या	..	..	2500	..	..	625

सारणी–2: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास के अंतर्गत मॉडल केएम–3 से पौधरोपण प्रारूप तथा यह स्थानीय पेड़–पौधों के साथ परम्परागत फसल उत्पादन की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली जहाँ सीमित वर्षा व संसाधनों से अधिकतम आय प्राप्त हुई है।

उत्पादन मॉडल	फसल	चार हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या			एक हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या		
		पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या	पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या
केएम–3 8 x 8 मीटर एकल पंक्तियाँ	खेजड़ी, मुख्य फसल	19	21	399	9	9	81
प्रक्षेत्र के चारों किनारों की पेड़ प्रजातियाँ, 8x8 मीटर पंक्तिनुमा जोड़े	केर, पूर्व व पश्चिम	3x2 (6)	25	150	2x2 (4)	13	52
	लसोड़ा, दक्षिण	1x2 (2)	19	38	1x2 (2)	9	18
	कुमट, उत्तर	1x2 (2)	19	38	1x2 (2)	9	18
	कुल पौधों की संख्या	..	..	625	..	..	169

सारणी–3: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास के अंतर्गत मॉडल केएम–7 से पौधरोपण प्रारूप तथा यह स्थानीय पेड़–पौधों–चारा–फसलों के साथ कृषि–बागवानी–पशुधन उत्पादन की सर्वाधिक उपयुक्त व सघन प्रणाली जहाँ सीमित वर्षा व संसाधनों से अधिकतम आय प्राप्त हुई है।

उत्पादन मॉडल	फसल	चार हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या			एक हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या		
		पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या	पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या
केएम–.7 16(4x4 मीटर), पंक्तियाँ 16 मीटर दूरी के अंतराल पर	खेजड़ी, 4x4 मीटर जोड़े में आधार वृक्ष	10x2 (20)	46	920	5x2 (10)	21	210
अधिकतम भूमि पर अंतर–फसलें	झरबेर, 4x4 मीटर व पंक्तिनुमा	10x3 (30)	46	1380	5x3 (15)	21	315
प्रक्षेत्र के दो दिशाओं के किनारों की पेड़ प्रजातियाँ, 4x4 मीटर जोड़े व पंक्तिनुमा	लसोड़ा, दक्षिण	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुमट, उत्तर	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुल पौधों की संख्या	..	..	2500	..	..	625

सारणी–4: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास के अंतर्गत मॉडल केएम–9 से पौधरोपण प्रारूप तथा यह स्थानीय पेड़–पौधों व व्यावसायिक फसलों के साथ कृषि–बागवानी उत्पादन की सर्वाधिक उपयुक्त व सघन प्रणाली जहाँ सीमित वर्षा एवं सिंचाई संसाधनों से अधिकतम आय प्राप्त हुई है।

उत्पादन मॉडल	फसल	चार हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या			एक हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या		
		पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या	पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या
केएम–9, 24 (4x4 मीटर), पंक्तियाँ 24 मीटर दूरी के अंतराल पर	खेजड़ी, 4x4 मीटर जोड़े में आधार वृक्ष	7.5x2 (15)	46	690	4x2 (8)	21	168
अधिकतम भूमि पर अंतर–फसलें	झरबेर, 4x4 मीटर व पंक्तिनुमा	35	46	1610	17	21	357

प्रक्षेत्र के दो दिशाओं के किनारों की पेड़ प्रजातियाँ, 4x4 मीटर जोड़े व पंक्तिनुमा	लसोड़ा, दक्षिण	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुमट, उत्तर	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुल पौधों की संख्या	..	..	2500	..	..	625

सारणी–5: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास के अंतर्गत मॉडल केएम–11 से पौधरोपण प्रारूप तथा यह स्थानीय पेड़–पौधों व व्यावसायिक फसलों के साथ कृषि–बागवानी उत्पादन की सर्वाधिक उपयुक्त व सघन प्रणाली जहाँ सीमित वर्षा एवं सिंचाई संसाधनों से अधिकतम आय प्राप्त हुई है।

उत्पादन मॉडल	फसल	चार हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या			एक हेक्टेयर उत्पादन प्रक्षेत्र के अनुरूप पंक्तियों व पौधों की संख्या		
		पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या	पंक्तियों की संख्या	पौधों की संख्या/पंक्ति	कुल पौधों की संख्या
केएम–11 44 (4x4 मीटर) पंक्तियाँ 44 मीटर दूरी के अंतराल पर व अधिकतम भूमि पर मुख्य फसलें	खेजड़ी, 4x4 मीटर जोड़े में आधार वृक्ष	5x2 (10)	46	460	2.5x2 (5)	21	105
प्रक्षेत्र के दो दिशाओं के किनारों की पेड़ प्रजातियाँ, 4x4 मीटर जोड़े व पंक्तिनुमा	लसोड़ा, दक्षिण	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुमट, उत्तर	1x2 (2)	50	100	1x2 (2)	25	50
	कुल पौधों की संख्या	..	..	660	..	..	205

सारणी–6: खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास एवं प्रबंधन से शुष्क क्षेत्र के स्थानीय पेड़–पौधों से स्थापित बगीचों से विपणन योग्य बागवानी उत्पाद का विवरण।

पेड़–पौधे–फसल प्रजातियाँ	पौध–रोपण पश्चात् पहली फसल उत्पाद (आयु, वर्ष)	पौध–रोपण पश्चात् पहली व्यावसायिक फसल तुड़ाई (आयु, वर्ष)	उपज/पौधा (किलोग्राम)	विपणन योग्य उत्पाद
खेजड़ी, पेबन्दी (थार शोभा)	4 – 5	6 – 7	6.58 – 7.86 (7.22)	कच्ची फलियाँ (साँगरी)
लसोड़ा, बीजू (सीआईएएच सलेक्शन–1)	4 – 5	6 – 7	24.5 – 38.7 (31.6)	कच्चे फल
केर, बीजू (सीआईएएच थोर्नलेस–1)	7 – 8	9 – 10	1.78 – 2.54 (2.16)	कच्चे फल

कुमट, बीजू (सीआईएएच सलेक्शन–1)	7 – 8	9 – 10	2.26 – 4.15 (3.21)	कच्ची फलियों से परिपक्व बीज
झरबेर, बीजू (सीआईएएच सलेक्शन–1)	4 – 5	6 – 7	1.85 – 2.56 (2.35)	परिपक्व फल
फोग, बीजू (सीआईएएच सलेक्शन–1)	6 – 7	8 – 9	0.556–0.895 (0.725)	परिपक्व पुष्प कलिकाएँ (फोगला)

सारणी–7: खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास एवं प्रबंधन के अंतर्गत पौध–रोपण के प्रमुख प्रारूपों में स्थानीय पेड़–पौधों–फसलों से वर्षा आधारित चारा उत्पाद का विवरण।

पेड़–पौधों–फसलों से उत्पाद चारा	चारा उत्पादन (वर्ष 2012–2016 के तीन सर्वाधिक उपयुक्त मानसून वर्षा के आधार से आँकलन)	
खेजड़ी	8.15 किलोग्राम सूखी पत्तियों का चारा/पौधा (लूँग) स्थिर उत्पादन	
झरबेर	3.18 किलोग्राम सूखी पत्तियों का चारा/पौधा स्थिर उत्पादन	
	ताजा चारा का वजन (क्विंटल/हेक्टेयर)	सूखा चारा का वजन (क्विंटल/हेक्टेयर)
सेवण	278.15	140.62
धामण	134.37	70.65
भरूट	92.53	36.87
ग्वार	303.12	84.37
	ताजा चारा का वजन (किलोग्राम/पौधा)	सूखा चारा का वजन (किलोग्राम/पौधा)
फोग	4.28 – 5.25 (4.76)	2.85 – 3.16 (3.01)

सारणी–8: शुष्क जलवायु में खेजड़ी आधारित प्रक्षेत्र विकास एवं प्रबंधन के अंतर्गत पौध–रोपण के प्रमुख प्रारूपों में स्थानीय सब्जी फसलों की विपणन योग्य उत्पादन क्षमता का विवरण।

सब्जी फसल व किस्म	ताजा उत्पाद	उपज (क्विंटल/हेक्टेयर), प्रक्षेत्र में फसल उत्पादन के लिए उपलब्ध भूमि (वर्ष 2012–2016 के तीन सर्वाधिक उपयुक्त मानसून वर्षा के आधार का औसत उत्पादन)		
		केएम–1 व केएम–3	केएम–9 व केएम–11	औसत उपज
काचरी (एएचके–119)	फल	42.48	88.56	56.58
ग्वारफली (थार भादवी)	कच्ची फलियाँ	45.32	85.45	54.34

दिलीप कुमार समादिया

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर–334 006 (राजस्थान)

शुष्क क्षेत्रों में लो-टनल तकनीक से कद्दूवर्गीय सब्जियों की सफल खेती

गर्म शुष्क क्षेत्रों में कद्दूवर्गीय सब्जियाँ जैसे ककड़ी, टिंडा, चप्पन कद्दू, खरबूजा, तरबूज, लौकी, तोरई आदि की खेती की जाती है। इन सब्जियों से लगभग सभी प्रकार के पौषक तत्व जैसे प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं। ग्रीष्मकाल में इन सब्जियों की बुवाई फरवरी–मार्च में की जाती है क्योंकि अंकुरण के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक है तथा यह तापमान फरवरी माह के अंत तक आता है। जब इन सब्जियों में फूल आना शुरू होते हैं उस समय तापमान काफी बढ़ जाता है तथा तेज आँधी भी चलने लगती है। मई–जून माह में तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है तथा लू भी चलने लगती है जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है परिणामस्वरूप पौधे मुरझाने लगते हैं। उच्च तापमान के कारण इन सब्जियों में नर फूल अधिक बनते हैं तथा परागण में सहायक कीट भी कम हो जाते हैं। तापमान के 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर फसल की बढ़वार, उपज तथा गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन सब प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कद्दूवर्गीय सब्जियों की उपज काफी कम तथा निम्न गुणवत्ता की प्राप्त होती है जिससे उत्पादकों को भरपूर लाभ नहीं मिलता है। परन्तु लो–टनल तकनीक को अपनाकर गर्म शुष्क क्षेत्रों में कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

लो–टनल तकनीक

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ गर्म जलवायु की फसलें हैं जिनमे ठंड तथा पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है। बीज के अंकुरण व पौधों की बढ़वार के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। मौसम तथा क्षेत्रीय परिस्थितियों के आधार पर कद्दूववर्गीय सब्जियों की अगेती खेती के लिए निम्न सुरंग (लो–टनल) तकनीक तथा दियारा विधि के रूपान्तरण से एक नई तकनीक अपनाई गई जो गर्म शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। लो टनल तकनीक उत्तर भारत के मैदानी भागों में कद्दूवर्गीय सब्जियों की बेमौसमी खेती के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ सर्दी के मौसम में रात का तापमान लगभग 40 से 60 दिनों तक 8 डिग्री सेल्सियस से नीचे रहता है। इस तकनीक में दिसम्बर माह के अन्तिम सप्ताह से लेकर जनवरी माह के प्रथम सप्ताह में बीजों की बुवाई ड्रिप युक्त नाली (ट्रेंच) में करके इसको प्लास्टिक की चादर से ढ़क देते हैं जिससे कद्दूवर्गीय सब्जियों को उनके सामान्य समय से पहले उगाना संभव है। इस तकनीक से फसल निम्न तापमान व पाले से सुरक्षित रहती है तथा सामान्य दशाओं में बोई गई फसल से 40–50 दिन पहले तैयार हो जाती है जिससे किसान को बाजार भाव भी अधिक मिलता है।

दिसम्बर माह में खेत में फसल के अनुसार 2–2.5 मीटर की दूरी पर 45 सेमी चौड़ी तथा 45–60 सेमी गहरी नालियाँ पूर्व से पश्चिम दिशा में बनाते हैं। इन नालियों में सड़ी–गली गोबर की खाद तथा रासायनिक उर्वरकों की बोई जाने वाली फसल के लिए अनुशंसित मात्रा मिला देनी चाहिए। पानी में घुलनशील एन.पी.के. तथा सूक्ष्म तत्वों के मिश्रण को ड्रिप द्वारा सिंचाई के साथ भी फसल में दे सकते हैं। नत्रजन की अधिक मात्रा देने से बचना चाहिए अन्यथा पौधों की वानस्पतिक बढवार अधिक होगी और परिणामस्वरूप फलन कम होगी। सिंचाई के लिए 4 लीटर⁄ घण्टा पानी डिस्चार्ज वाले ड्रिपर की 12–16 मिमी आकार की ड्रिप पाईप (लैटरल) जिन पर 60–80 सेमी की दूरी पर ड्रिपर लगे हो, को नालियों में बिछा देना चाहिए।

बुवाई करने से पूर्व बीजों का अंकुरण कराना आवश्यक है क्योंकि दिसम्बर–जनवरी माह में निम्न तापमान के कारण इनका अंकुरण देर से होता है। अतः अंकुरण के लिए बीजों को पानी में भिगोना चाहिए। पानी में भिगोने की अवधि बीज के छिलके की मोटाई पर निर्भर करती है जो कि 3–4 घण्टा (खरबूजा, खीरा, ककड़ी), 6–8 घण्टा (लौकी, तोरई) तथा 10–12 घण्टा (टिंडा, तरबूज) रखनी चाहिए। भिगोने के बाद बीज को केप्टान (2 ग्राम ⁄ किग्रा बीज) से उपचारित करना चाहिए। बीज उपचार के बाद उन्हें बोरे के टुकड़े में लपेटकर किसी गर्म स्थान जैसे बिना सड़ी हुई गोबर की खाद या भूसा में 1–2 दिन तक दबाने से बीजों का अंकुरण शीघ्र हो जाता है। इन अंकुरित बीजों की बुवाई तैयार नालियों में दिसम्बर के अंतिम सप्ताह से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक कर देनी चाहिए। एक ड्रिपर के पास कम से कम 2 बीजों की बुवाई

करते हैं। नाली (ट्रेंच) के ऊपर अर्ध चंद्राकार जंगरोधी लोहे के तारों (2 मिमी मोटाई) को 3–4 मीटर की दूरी पर स्थापित करते हैं। इन तारों पर 30–50 माईक्रोन मोटी तथा 2 मीटर चौड़ी पारदर्शी प्लास्टिक की चादर बिछाकर इसकी लम्बाई वाले दोनो सिरों को मिट्टी से दबा दिया जाता है। इस प्रकार बोई गई फसल पर प्लास्टिक की एक लघु सुरंग बन जाती है। प्लास्टिक से ढकने से नाली के अंदर का तापमान सामान्य से 8–10 डिग्री सेल्सियस अधिक बना रहता है जिससे बीजों का अंकुरण जल्दी हो जाता है तथा पौधों का विकास भी सुचारु रूप से होता रहता है। समय–समय पर प्लास्टिक को हटाकर फसल का निरीक्षण भी करते रहना चाहिए तथा कीट व बीमारी का प्रकोप होने पर उनका समुचित नियंत्रण भी करना चाहिए। इस विधि से बुआई करने पर फूल बनते समय वातावरण का तापमान बहुत अनुकूल रहता है जिससे मादा फूल अधिक आते हैं तथा उस समय परागण करने वाले कीट भी अधिक होने से फसल अच्छी होती है।

फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में जब मौसम का तापमान बढ़ जाता है तथा कद्दूवर्गीय सब्जियों की बढ़वार के अनुकूल हो जाता है तो प्लास्टिक की टनल को हटाकर खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। प्लास्टिक की टनल को कभी भी एकदम नहीं हटाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पौधों को धक्का लगता है तथा वे मुरझा जाते हैं जिससे उनकी वानस्पतिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः सबसे पहले टनल के दोनों छोर से प्लास्टिक को हटा देना चाहिए तथा इसके 2–3 दिन बाद प्लास्टिक को दिन में हटा देना चाहिए तथा शाम के समय पौधों को वापस प्लास्टिक से ढक देना चाहिए। यह प्रक्रिया 2–3 दिन तक करने से पौधों का कठोरीकरण हो जाता है तथा पौधे मौसम के अनुकूल ढल जाते हैं।

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के दौरान कतारों के बीच सरकंडा बिछा देना चाहिए जिससे पौधों का गर्म मिट्टी से बचाव होने के कारण बढ़वार अच्छी होती है तथा फल भी सीधे जमीन के संपर्क में नहीं आने से कई बीमारियों से बच जाते हैं। वानस्पतिक वृद्धि के समय पौधों को दिशा देनी चाहिए ताकि उनके तन्तु सरकंडा को पकड़ लें। सरकंडा बिछाने से पौधे जमीन पर उचित तरीके से फैलते हैं जिससे लगभग सभी मादा फूलों में परागण हो जाता है। बेलें तेज आंधी से एकट्ठा होने से भी बच जाती हैं जिससे फूल नहीं झड़ते हैं। इस प्रकार इस तकनीक से बोई गई फसल सामान्य दशा में बोई फसल से 40–50 दिन अगेती प्राप्त होती है जिससे गुणवत्तायुक्त उपज मिलती है तथा अगेती होने के कारण बाजार में इन सब्जियों का मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है।

लो–टनल

लो–टनल हटाने के बाद फसल की स्थिति

फसल सुरक्षा

प्रमुख कीट	नियंत्रण
फल मक्खी, पत्ती भेदक सुंडी, हाडा बीटल, कद्दू का लाल कीड़ा	डाइमीथोएट 30 ई सी या मैलाथियान 50 ई सी (1.5–2.0 मिली/ लिटर पानी) या स्पाईनोसेड 45 एस सी (0.5–0.7 मिली/ लिटर पानी)
चेपा, सफेद मक्खी, लीफ माइनर	इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल या थायोमिथोक्जाम 70 ड्ब्लू एस (0.3–0.5 मिली/ लिटर पानी)

कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार, सावधानी से और आर्थिक नुकसान का स्तर (ईटीएल) को ध्यान में रखकर करना चाहिए। कद्दूवर्गीय सब्जियों को फल मक्खी से सबसे ज्यादा नुकसान होता है तथा इसका प्रकोप फरवरी से लेकर नवम्बर तक होता है। मादा फल मक्खी अपने अंडरोपक को कोमल फलों के अंदर धँसाकर गूदे में अण्डे देती है। ग्रसित फल के छेद से लसदार हल्के भुरे रंग का द्रव निकलता है। अण्डे से मैगट निकलकर फल के गूदे को खा जाते हैं तथा फल सड़ जाता है। क्योंकि सब्जियाँ मनुष्य द्वारा ताजा अवस्था में खाई जाती हैं इसलिए सब्जियों में आईपीएम का महत्त्व बढ़ जाता है। अतः इन सब्जियों में एकीकृत कीट प्रबन्धन अपनाना चाहिए।

अ. कीटों के एकीकृत प्रबन्धन में सबसे प्रभावी तरीका खेत की सफाई करना होता है। फल मक्खी, चितकबरी सुंडी, लाल कद्दू बीटल, हाडा बीटल आदि के प्रजनन चक्र और जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिये। पौधों और फलों के क्षतिग्रस्त भागों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए।

ब. क्यू–आकर्षण ट्रैप फल मक्खी के प्रबन्धन में काफी प्रभावशाली है। क्यू–आकर्षण ट्रैप फल मक्खी के नर को आकर्षित करता है तथा इसके अंदर रखे कीटनाशक से नर मर जाता है। इस प्रकार मादा को संभोग करने के लिये नर नहीं मिलने से इस कीट का नियंत्रण हो जाता है। फल मक्खी को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के क्यू–ल्यूर जैसे फ्लाईसीडो 20 प्रतिशत, ऊगे–ल्यूरो8 प्रतिशत, क्यू–ल्यूर 85 प्रतिशत + नैल्ड, क्यू–ल्यूर 85 प्रतिशत +डाईजिनोन, क्यू–ल्यूर 95 प्रतिशत + नैल्ड आदि बाजार में उपलब्ध हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 7–8 क्यू–आकर्षण ट्रैप पर्याप्त होते हैं। एक लीटर पानी में 250 ग्राम गुड़ तथा 4–5 मिली मेलाथियान 50 ई सी मिलाकर इसको छोटे–छोटे बर्तनों में भरकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में 8–10 जगह रखना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उपरोक्त घोल से भरते रहने से भी फल मक्खी का नियंत्रण किया जा सकता है। खेत में रात के समय प्रकाश के ट्रेप लगायें तथा उनके नीचे किसी बर्तन में चिपकने वाला पदार्थ जैसे गुड़ का घोल भरकर रखें व इस घोल को 2–3 दिन बाद बदलते रहें।

बीमारी एवं लक्षण	प्रबन्धन
मृदुरोमिल आसिता– पत्ती की ऊपरी सतह पर हल्के पीले कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में इन धब्बों के ठीक निचली सतह पर बैंगनी रंग की मृदुरोमिल फफूँद दिखाई देती है।	बीज को थाइराम या बाविस्टीन (1–2 ग्राम/ किग्रा बीज) से उपचारित करके बोने चाहिए। खड़ी फसल पर डाइथेन एम–45 या रिडोमिल एम जेड–72 (2 ग्राम/ लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।
चुर्णिल आसिता– पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद या धुंधले धूसर, गोल व छोटे धब्बे बनते हैं। इसके बाद यह फफूँद पत्ती की पूरी सतह पर फैलकर सफेद चूर्ण की तरह ऊपरी सतह को ढक लेती है। तीव्र संक्रमण होने पर पत्तियाँ गिर जाती हैं।	रोग की प्रारम्भिक अवस्था पर कैराथेन (1 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। गंधक के चूर्ण का 25–30 किग्रा/ हेक्टेयर के हिसाब से 10–15 दिन के अंतराल पर तीन बार भुरकाव करें।
फल विगलन– इस फफूँद से ग्रसित फलों पर गहरे नीले रंग के धब्बे बन कर फल सड़ने लगते हैं तथा उनमें दुर्गंध आने लगती है।	फलों के नीचे घासफूस बिछाकर उनको मिट्टी की सतह के सम्पर्क से बचाना चाहिए या बेलों को सहारा देना चाहिए। बुवाई से पहले बीज का उपचार ट्राईकोड्रमा (4–5 ग्राम/ किग्रा बीज) अथवा थाइरम (2 ग्राम/किग्रा बीज) से करना चाहिए। खड़ी फसल में बाविस्टीन (2.5 ग्राम/ लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

श्यामवर्ण (एन्थ्रेक्नोज)– आरम्भ में पत्तियों पर पीले, गोल जलयुक्त धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े व भूरे हो जाते हैं। इस फफूँद से ग्रसित पत्तियाँ सूख जाती हैं। फलों पर धब्बे गोलाकार जलयुक्त व हल्के रंग के होते हैं।	बीज को थाइरम या बाविस्टीन (1–2 ग्राम/ किग्रा बीज) से उपचारित करके बोने चाहिए। डाइथेन एम–45 या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2–3 ग्राम/ लीटर पानी) का छिड़काव 7 दिन के अंतराल पर 2 बार करना चाहिए।
अल्टरनेरिया पत्ती झुलसा– यह एक फफूँद जनित रोग है। पत्तियों पर केन्द्रीयकृत गोल आकार के हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में गहरे रंग के व आकार में बड़े हो जाते हैं। पौधे की पत्तियाँ झुलसी हुई दिखाई देती है।	फसल पर डाइथेन एम–45 (2–3 ग्राम/ लीटर पानी) का 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
उकठा रोग (विल्ट)– इस फफूँद से ग्रसित पौधों का ऊपरी भाग किसी भी अवस्था पर मुरझा कर सूख जाता है। पत्तियाँ पीली हो जाती है। कॉलर वाला क्षेत्र सिकुड़ जाने से पौधा मर जाता है। पौधों की जड़ें व भीतरी भाग भूरा हो जाता है।	बुवाई से पहले बीज को बाविस्टीन (1–2 ग्राम/ किग्रा बीज) से उपचारित करें। खड़ी फसल में बाविस्टीन की 2 ग्राम/ लीटर पानी की दर से ड्रेन्चिंग करना चाहिए।
मौजेक– यह एक विषाणु जनित रोग है। ग्रसित पौधे छोटे व विकृत हो जाते हैं तथा उनकी वृद्धि रुक जाती है। पत्तियाँ सिकुड़ जाती है तथा इन पर एक पीला मौजेक या मोटिल क्रम दिखाई देता है जिसमें क्लोरोटिक धब्बे दिखते हैं। फल छोटे व विकृत हो जाते हैं। इस रोग का वाहक कीट चेपा है।	उपचारित बीज का प्रयोग करना चाहिए। इमिडाक्लोप्रिड (0.3–0.5 मिली/ लीटर पानी) का खड़ी फसल पर 10 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करें, जिससे रोग वाहक कीट नष्ट हो जाते हैं।
कलिका परिगलन (बड नेक्रोसिस)– विषाणु जनित रोग है जिससे पौधे का तना छोटा रह जाता है तथा पत्तियाँ सिकुड़ कर पीली पड़ जाती हैं। कली में गलन होता है तथा बाद में कलिका तथा कलिका वाली पूरी शाखा सूख जाती है।	बुवाई से पहले बीज उपचार करना चाहिए। इस बीमारी के वाहक कीट (थ्रिप्स) को नियंत्रित करने के लिए इमिडाक्लोप्रिड (0.3–0.5 मिली/ लीटर पानी) का खड़ी फसल पर 10 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।

बी. आर. चौधरी, अजय कुमार वर्मा एवं धुरेन्द्र सिंह
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

पोषक तत्व समृद्ध एवं औषधीय महत्व की फसल कैक्टस पियर

परिचय

टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए जलवायु परिवर्तन एक बड़ी चुनौती बन गया है। भारतीय गर्म शुष्क क्षेत्र में लंबे समय से सूखा और मरुस्थलीकरण सामने आ रही समस्याओं में से एक है, जहां ग्रामीण गरीब और लघु जोत धारक सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। यदि लोग इन कठोर परिस्थितियों में जीवित रहना चाहते हैं, तो उनकी फसल सूखा, उच्च तापमान और खराब मिट्टी का सामना करने वाली होनी चाहिए। कैक्टस की फसलें दुनिया भर में तेजी से सरोकार प्राप्त कर रही हैं, विशेष रूप से कैक्टस पियर (*ओपेंसिया फाइकस–इंडिका*) में, इसकी अनूठी विशेषताओं के कारण जो कठोर पारिस्थितिकी स्थितियों के लिए लचीलापन प्रदान करती हैं। कैक्टस पियर के फल और क्लेडोड को क्रमशः तूना एवं नोपल के नाम से जाना जाता है। पौधे (1) उनके चपटे तने (2) खाने योग्य नोपल और फल (3) बारीक रोयेदार कांटें जो आसानी से अलग हो जाते हैं (4) नए नोपल पर अल्पविकसित पत्तियां और (5) एक फीके कवर के साथ बीज के रूप में जाने जाते है। नोपल कैक्टस में उच्च म्यूसिलेज (लसदार पदार्थ) के कारण प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी नमी को को बनाए रखने की क्षमता होती है। कैक्टस पियर ऐसी भूमि पर उत्पादन देने में सक्षम है, जहां कोई अन्य फसल उगने में सक्षम नहीं हैं, इसका उपयोग बेकार पड़ी भूमि को पुर्नस्थापित करने के लिए किया जा सकता है। कैक्टस पियर में क्रेसूलेसियन अम्ल उपापचय पाया जाता है, जिसे सीएएम प्रकाश संश्लेषण भी कहा जाता है, यह एक कार्बन स्थिरीकरण प्रक्रिया है, जो कुछ पौधों में शुष्क स्थितियों के अनुकूलन के रूप में विकसित हुई है। सी.ए.एम. चक्र में रात को Co_2 मैलिक अम्ल में स्थिरीकृत हो जाती है, जब कम वाष्पीकरणीय मांग होती है और पर्ण रंध्र खुले होते हैं। दिन के दौरान, पर्ण रंध्र बंद हो जाते है और संग्रहीत मैलिक अम्ल डिकार्बोक्सिलेट होकर वापस Co_2 में रूपांतरित हो जाती है, जिसका उपयोग प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से कार्बोहाइड्रेट उत्पादन के लिए किया जाता है। क्रेसूलेसियन अम्ल उपापचय होने के कारण नोपल में उच्च मैलिक अम्ल पाया जाता है। ओपेंसिया मरुस्थलीकरण का मुकाबला करने के साथ ही मानव उपभोग, पशुधन के लिए चारा, ऊर्जा प्रयोजनों के लिए जैव ईंधन, कार्मिन (लाल रंग) उत्पादन के लिए कोचिनियल और कई उप–उत्पादों (पेय पदार्थ, शाकाहारी पनीर, दवाएं और सौंदर्य प्रसाधन) में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। वे शुष्क वातावरण में विभिन्न वन्यजीव प्रजातियों के लिए शरण और भोजन प्रदान करते हैं।

कैक्टस पियर को 1980 की शुरुआत तक वैज्ञानिक दुनिया में अवप्रयोगी फसल के रूप में माना जाता था, जब अनुसंधान और संगोष्ठी का विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप पुस्तकों और पुस्तक अध्यायों सहित कई प्रकाशन हुए। हाल ही की शोध में, कुछ उच्च मूल तत्वों के रासायनिक घटकों का पता चला है, जो पोषण और जैवसक्रिय प्रालेख (प्रोफाइल) पर इस फसल को अतिरिक्त महत्व दे सकते हैं। व्टालेन्स, टॉरिन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, और एंटीऑक्सीडेंट के उच्च स्तर पौष्टिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ घटक स्वास्थ्य के लिये लाभकारी व गुणवत्ता के मामले में आशाजनक पायेगये हैं। कैक्टस पियर के उत्पाद पोषण सुरक्षा और मानव स्वास्थ्य के पूरक हो सकते हैं।

नोपल कैक्टस के सामान्य अवयव

कैक्टस नोपल पेक्टिन, म्यूसीज, खनिज, पॉलीफेनोल, निकोटीफ्लोरिन, विटामिन, पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी अम्ल और अमीनो अम्ल में समृद्ध हैं। नोपल में ऑक्सीकरण रोधक और विभिन्न फ्लेवोनोइड होते हैं, विशेष रूप से क्वेर्सेटिन 3–मिथाइल ईथर, जो एक बहुत ही कुशल रेडिकल स्केवेंग्जर हैं। सी.ए.एम. आधारित प्रकाश संश्लेषण के कारण नोपल्स में उच्च मैलिक अम्ल की विशेषता होती है। कई शोध–कर्ताओं ने नोपल के रासायनिक लक्षणों का अध्ययन किया और बताया कि इसमें विटामिन और खनिज होते हैं. निर्जलित नोपल में उच्च पोटेशियम स्तर होता हैं । नोपल गूदे में कई तरह के यौगिक (आहार फाइबर, विटामिन सी, फिनालिक यौगिक) हैं, जिनमें आंतों, हृदय, यकृत स्वास्थ्य, ऑक्सीकरणरोधक और कैंसर की रोकथाम जैसे महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करने की संभावना होती है। ताजा क्लेडोड, जिसे नोपल कहा जाता है, आवश्यक अमीनो अम्ल और विटामिन सहित प्रोटीन का

उत्कृष्ट स्रोत है। कई शोध–कर्ताओं ने बताया है कि नोपल में उच्च स्तर के एमिनो अम्ल विशेष रूप से प्रोलीन, टॉरिन और सेरीन पाए जाते हैं।

नोपल कैक्टस के उपयोग

पौष्टिक और औषधीय रूप से कैक्टस नोपल बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं। कुल फिनोलिक्स और प्रति उपचायक क्षमता ने सुझाव दिया है कि कैक्टस नोपल मानव पोषण और स्वास्थ्य के लिए एक पौष्टिक भोजन के रूप में उपयोगी हो सकता है। नोपल्स ने उपचयनकारी तनाव जो विभिन्न जीनोटॉग्जिंस (मायकोटॉक्सीन, एफ्लाटॉक्सिन और साइटोटॉक्सिन) के कारण उत्पन्न होता है, में सुरक्षात्मक प्रभाव दिखाया है। नोपल्स ने सूजन में कमी एवं त्वचा के घाव भरने और आमाशय श्लेष्मकता पर सकारात्मक प्रभाव दिखाया है। कैक्टस नोपल का लसदार पदार्थ खाद्य पदार्थों में, खाद्य पदार्थों में वसा प्रतिकृति के रूप में और एक स्वाद बंधक (बाइंडर) के रूप में उपयोग किया जाता है।

भोजन के रूप में महत्व

नोपल सब्जी का एक प्रकार है जो कोमल क्लेडोड से बनता है। कैक्टस नोपल्स मानव आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं और इन्हें पशुधन के लिए चारे के रूप में भी उपयोग किया जाता है। नोपल में कई संभावित पोषक तत्व और उनके बहुउद्देशीय गुण हैं, जो इसे स्वास्थ्य–वर्धक भोजन और खाद्य पूरक बनाते हैं। हालांकि, परंपरागत रूप से स्थानीय अमेरिकियों द्वारा नोपल के औषधीय गुणों के लिए सराहना की गई है, फिर भी कैक्टस पियर अभी भी अपर्याप्त वैज्ञानिक जानकारी के कारण शायद ही मान्यता प्राप्त कर पायी है। यह मुख्य रूप से मेक्सिको में ताजी सब्जी के रूप में पायी जाती है, और या तो डिब्बाबंद या निर्यात के रूप में मसालेदार होती है, खासकर दक्षिण अमेरिका और टेक्सास के लिए। कैक्टस नोपल्स ताजी सब्जी के लिए उपयुक्त है, हालांकि, यह कई उत्पाद रूपों में प्रसंस्करित की जा सकती है जो विविधीकरण की आवश्यकता, अचल जीवन में वृद्धि और उपयोग में आसान हो सकती है। कैक्टस फ्राइज (नोपल्स से तैयार एक अधिक तला हुआ भोजन) भोज्य उत्पाद भी बनाया जाता है।

पोषण के रूप में महत्व

नोपल्स के स्वास्थ्य संबन्धी लाभ मुख्य रूप से इसके पोषक तत्व और विटमिन्स के कारण होता है, जिसमें राइबोफ्लैविन, विटामिन बी 6, तांबा, लोहा, रेशा, विटामिन ए, सी, के, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम और मैंगनीज शामिल हैं। मैक्सिको में इसका उपयोग अक्सर क्षुधावर्धक, सूप और सलाद के माध्यम से स्नैक्स, सब्जी व्यंजन, ब्रेड, डेसर्ट, पेय, कैंडी, जेली या पेय बनाने के लिए किया जाता है। न्यू मैक्सिकन व्यंजनों में नोपल भी एक महत्वपूर्ण घटक हैं। यह कुछ कार्बनिक यौगिकों जैसे फाइटोकेमिकल्स और कुछ बहुशर्करा का भी एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो मनुष्य की स्वास्थ्य शक्ति बढ़ाने में भी योगदान देता है। 26 निर्धारित यौगिकों (कुल निचोड़ (एक्सट्रॅक्ट) का 95.6 प्रतिशत) में, उच्चतम घटक फाइटोस्टेरोल (36.03 प्रतिशत) और पॉलीअससेचुरेटेड वसीय अम्ल (18.57 प्रतिशत) दूसरा सबसे बड़ा घटक था, इसके बाद पामिटिक अम्ल (13.54 प्रतिशत) और फाइटॉल (12.11 प्रतिशत) हैं। नोपल में शर्करा का संयोजन भी पाया गया है। ग्लूकोज और गैलेक्टूरोनिक अम्ल मुख्य घटक होते हैं, जबकि अरेबिनोज, गैलेक्टोज, मैनोस, जाइलोज और रहैमनोज निम्न स्तरों में मौजूद होते हैं। पुराने नोपल्स चूर्ण ऐसे लोगों के लिए कैल्शियम का अच्छा स्रोत हो सकता है जहां डेयरी उत्पादों की उपलब्धता जटिल होती है और लोगों में डेयरी उत्पादों को पचाने में कठिनाई होती है।

नोपल्स का औषधीय महत्व

कैक्टस नोपल्स को स्वास्थ्य के लिए भी फायदेमंद बताया गया है। इन प्रभावों को कई रोगों के उपचार में दिखाया गया है। परंपरागत रूप से कैक्टस नोपल्स का उपयोग जलन, घावों, सूजन, हाइपरलिपिडिमिया, मोटापा और प्रतिश्यायी जठरशोथ के उपचार के लिए किया जाता है। नोपल के मद्यसार अर्क को सूजनरोधी, हाइपोग्लाइसेमिक और विषाणु–विरोधी प्रयोजनों के लिए दिया जाता है। औषधीय अध्ययन में सबसे अधिक योग्य जानकारी कैक्टस फलों के बजाय नोपल्स में मिलती है। कैक्टस नोपल्स की चिकित्सीय क्षमता का चयापचय सिंड्रोम (मधुमेह और मोटापा सहित), गैर अल्कोहल वसा यकृत रोग (एनएफएडीडी), संधिशोथ, सेरेब्रल इस्केमिया, कर्क रोग, विषाणु और जीवाणु संक्रमणों के लिए सुझाव दिया गया है। पहचाने गये प्राकृतिक नोपल यौगिकों और उनके व्युतपन्न ने सूजनरोधी, प्रति उपचायक, हाइपोग्लाइसेमिक, रोगाणुरोधी, फोड़ा नाशक, दस्त रोधी और तंत्रिका रक्षक गुण दिखाए हैं। नोपल्स निकोटीफ्लोरिन में समृद्ध हैं और सूजनरोधी और तंत्रिका रक्षक तंत्र के माध्यम से मस्तिष्क अवरक्त आकार को घटा कर और एस्किमिया द्वारा प्रेरित स्नायुविक कमी को कम कर देते हैं। नोपल का अर्क रक्त वसा का स्तर कम करता है, फोड़ा नाशक और सूजनरोधी तंत्र को व्यक्त करता है एवं उल्लेखनीय रूप से घाव भरने

में सुधार करता है। नोपल स्वास्थ्य के लाभों के साथ, कर्क रोग को रोकने, त्वचा की स्वास्थ्य में सुधार, हृदय स्वास्थ्य की रक्षा, विनियमन और पाचन में सुधार, काली खांसी के लिए उपचार, प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने, चयापचय गतिविधि को अनुकूलित कर, मजबूत हड्डियों का निर्माण, अनिद्रा का इलाज और पूरे शरीर में सूजन को कम करता है।। मैक्सिकन लोक चिकित्सा में, इसके गूदे एवं रस को घाव भरने, पाचन और मूत्र सम्बंधी प्रणाली की सूजन के उपचार के लिए उपयुक्त माना जाता है। आजकल, कैक्टस नोपल इटली वासी औषधिविदों द्वारा सुझाए जाने वाले उत्पादों में से एक है, जो ग्लिसेमिया को कम करने में प्रभावी हो सकता है।

नोपल्स का कार्यात्मक महत्व

कार्यात्मक यौगिक वे हैं जो मानव और पशु प्राणियों में रोगों को रोकने में मदद करते हैं। कैक्टस पियर के नोपल्स कार्यात्मक यौगिकों के स्रोत हैं, जिनमें रेसा, मुसिलेज, बिटालेंस, कैरोटीनॉयड, खनिजों और विटामिन जैसे विटामिन सी जैसे प्रतिउपचायक गुण होते हैं। इन यौगिकों को स्वस्थ आहार में योगदान के लिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है। कैक्टस नोपल्स को सब्जियों के रूप में या खाद्य सामग्री में एक घटक के रूप में प्राणियों में कार्यात्मक भूमिका निभाते हैं। भोजन के पाचन में, वजन घटाने में, स्वस्थ मांसपेशियों के लिए, चयापचय गतिविधि में, मजबूत हड्डियों के निर्माण में, अनिद्रा सुधार में एवं त्वचा के स्वास्थ्य में कैक्टस पियर के नोपल्स की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

खेती के लिए उपयुक्त जीनोटाइप और स्थान का चयन

आईसीएआर– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर ने कैक्टस पियर के 3 जीनोटाइप की पहचान

वर्षभर नोपल के उत्पादन के लिए ऊतक संवर्धित

कैक्टस पियर की हरित गृह में उगाई गई फसल

की है जो कि बहुउद्देशीय उपयोग के लिए उपयुक्त हैं जैसे कि सब्जी (नोपल उत्पादन), फल और पशुधन चारे के लिए और दो कांटेदार जीनोटाइप। औपचारिक रूप से शाकीय (काँटे रहित) कैक्टस पियर की किस्मों को घर के आस–पास ही लगाना चाहिए, जहां मानव उपस्थिति से जंगली जानवरों के साथ–साथ घरेलू पशुओं और गिलहरी जैसे हानिकारक कीटों के लिए पर्याप्त सुरक्षा प्रदान हो सके। शाकीय जीनोटाइप मानव और जानवरों के उपभोग के लिए आसान और बेहतर है। इस जीनोटाइप की सुरक्षित खेती के लिए कम लागत वाली हरित गृह और जाल गृह (नेट हाउस) भी उपयुक्त हैं (चित्र)। अलग–अलग क्षेत्रों में बागानों का कांटेदार किस्मों के साथ अधिक व्यावहारिक होता है।

आईसीएआर–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में ऊतक संवर्धित कैक्टस पियर का मूल्यांकन

हरित गृह और खुले वातावरण स्थितियों में ऊतक संवर्धित शाकीय कैक्टस पियर के पौधों वृद्धि एवं विकास पर आकृति विज्ञान का मूल्यांकन किया गया। खुली स्थिति में पौधों को जंगली जानवरों के साथ–साथ घरेलू पशुओं और गिलहरी द्वारा गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त किया गया था। इसके अतिरिक्त, पौधों को वृद्धि धीमी गति से हुई जबकि हरित गृह में पौधे सुरक्षित, अधिक उपज और नोपल की गुणवत्ता खुली स्थिति से बेहतर थी। हरित गृह में नियमित रूप से 15–20 दिनों के अंतराल पर नोपल की तोड़ाई की जा सकती है और औसतन 1.5 किलोग्राम कोमल नोपल/वर्ष/पौधा की उपज प्राप्त की जा सकती है (तालिका 1)। शाकीय कैक्टस पियर का पोषण मूल्यांकन भी किया गया जो तालिका 2 में वर्णित है।

तालिका 1. शाकीय कैक्टस पियर पर आकृतिगत मूल्यांकन

पौध संख्या	नोपल संख्या प्रति पौधा (04.02.17)	नोपल संख्या प्रति पौधा (4/3/17)	खाद्य स्तर तक पहुंचने के लिए आवश्यक दिन	खाद्य स्तर पर नोपल का वजन (ग्राम)	नोपल की लंबाई (सेमी)	नोपल की चौड़ाई (सेमी)
1	17	22	23	36.32	16.5	8.0
2	16	22	18	22.52	12.0	6.5
3	16	23	23	39.34	16.7	9.0
4	18	21	18	33.20	13.3	8.2
5	22	29	19	30.73	13.7	7.5
6	25	31	18	22.21	12.0	6.4
7	11	16	24	46.31	18.0	8.7
8	08	11	23	36.94	16.0	7.0
9	19	23	20	27.86	15.4	6.0
10	14	19	19	23.61	13.0	7.0
औसत	16.6	21.7	20.5	31.90	14.66	7.63

स्रोतः कमलेश कुमार, प्रकाशित आँकड़ा

तालिका 2. शाकीय कैक्टस पियर पर पोषण मूल्यांकन

संख्या	पोषक तत्व विवरण	इकाई
1	नमी	91–93 प्रतिशत
2	शुष्क पदार्थ	7–9 प्रतिशत
3	राख/भस्म	13–15 (शुष्क भार आधारित) 1 प्रतिशत (नम भार आधारित)
4	म्यूसिलेज/तरल द्रव्य	15–22% (शुष्क भार आधारित)
5	कुल फिनोलिक्स	4.5–7.0 मि.ग्रा./ग्रा. (शुष्क भार आधारित)
6	फ्लेवोनोइड	200 मा.ग्रा./ग्रा. (शुष्क भार आधारित)
7	कुल प्रतिओक्सिकारक क्रिया (मि.ग्रा. समान विटामिन सी प्रति ग्राम)	10–16 मा.ग्रा./ग्रा. (शुष्क भार आधारित)

स्रोतः बेरवाल एवं सह–कर्मी, अप्रकाशित आँकड़ा

घर के पीछे बगीचे में शाकीय कैक्टस पियर का वृक्षारोपण

कैक्टस पियर का प्रवर्धन

कैक्टस पियर को फरवरी– अप्रैल और जुलाई– सितम्बर के महीनों के दौरान परिपक्व नोपल के माध्यम से प्रवर्धित किया जा सकता है। हरित गृह में इसे वर्ष भर प्रवर्धित किया जा सकता है। बेहतर संरक्षण और स्थापन के लिए नोपल्स को न्यूनतम दो सप्ताह तक विरोहण एवं निर्जलीकृत किया जाना चाहिए। सड़न से उन्हें बचाने के लिए उन्हें बोर्डेक्स मिश्रण या मैन्कोजेब से उपचारित किया जा सकता है।

सूक्ष्म–संबर्धन (माइक्रोपरोपेगेशन)

शाकीय कैक्टस पियर के उपयुक्त (इलाइट) जीनोटाइप, जो जननद्रव्य संग्रहण कार्यक्रमों के तहत एकत्र किये गये थे, को सूक्ष्म–संबर्धन के एकल कली एक्सप्लांट तकनीक द्वारा सफलतापूर्वक विकसित किया गया। शाकीय कैक्टस पियर के उपयुक्त (इलाइट) जीनोटाइप, जो जननद्रव्य संग्रहण कार्यक्रमों के तहत एकत्र किये गये थे, को सूक्ष्म–संबर्धन के एकल कली एक्सप्लांट तकनीक द्वारा सफलतापूर्वक विकसित किया गया। क्रियात्मक रूप से सक्रिय एवं परिपक्व नोपल से कलियाँ एकत्र की गईं और संबर्धन प्रारम्भ के लिए एकल कली खंड को उपयोग किया गया। अधिकतम गुणित शाखाओं (8 शाखा/एक्सप्लांट) का निर्माण एमएस माध्यम में प्राप्त किया गया जिसमें 30 ग्राम सुक्रोज, 8 ग्राम अगार और 2 मिलीग्राम बीए. 0.1 मिलीग्राम एनएए प्रति लीटर था। गुणित शाखाओं के पुंज को पुनः शाखाओं के विस्तार के लिये पौध वृद्धि नियामकों रहित माध्यम में संबर्धित किया गया। कृत्रिम परिवेशीय परिस्थितियों में आईबीए या एनएए माध्यम (चित्र 3) में विस्तृत शाखाओं में शत–प्रतिशत जड़े निकलीं।

शाकीय कैक्टस पियर के सूक्ष्म– संबर्धित पौधे

तुड़ाई

सब्जी के लिए कैक्टस पियर की कोमल नोपल्स तोड़ी जाती हैं, आरम्भिक अवस्था की कोमल नोपल्स जो 10 से 15 सेंटीमीटर तक लम्बी हों को उपभोग किया जाता है (चित्र 4)। नोपल्स में रेसे की मात्रा नोपल की उम्र बढ़ने के साथ साथ बढ़ती जाती है और तब ये प्रसंस्करण करने में अधिक कठिन हो जाते हैं और इसके बाद ये जानवरों के चारे के लिए उपयुक्त हैं। हरित गृह में नोपल्स की 15–20 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से तुड़ाई की जा सकती है, जिससे 1.5 किलोग्राम कोमल नोपल/वर्ष/पौधा की औसत उपज मिलती है।

तुड़ाई के लिए तैयार कैक्टस नोपल्स

कैक्टस पियर के आर्थिक उत्पाद

कई आर्थिक उत्पादों जैसे कि सब्जी और सलाद के लिए नोपल्स, फल, स्क्वैश, कोचिनियल रंग इत्यादि आर्थिक लाभ के कई उत्पाद तैयार किये जा सकते हैं।

कमलेश कुमार, धुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

शुष्क क्षेत्रीय सब्जी फसल बीज उत्पादन -एक परिचय

आहार में नियमित सब्जियों के उपयोग से मानव शरीर स्वस्थ, हृष्ट–पुष्ट एवं ऊर्जावान बना रहता है क्योंकि इनसे हमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन, खनिज व अन्य आवश्यक पौषक तत्व सहजता से प्राप्त होते हैं। आदिकाल से ही भारत में विविध प्रकार की सब्जियों को ताजा/सूखी तथा कच्ची/पकाकर उपयोग में लेने की परम्परा रही है तथा यह भोजन को रसीला, स्वादिष्ट एवं सुपाच्य बनाती है। एक ओर जहाँ सब्जियाँ मानव शरीर को संतुलित आहार एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में सहयोगी हैं, वहीं दूसरी ओर इनकी वैज्ञानिकता से व्यवस्थित खेती कर सर्वाधिक धनोपार्जन किया जा सकता है।

देश में किसानों की आजीविका का कृषि प्रमुख आधार है तथा कृषि–बागवानी में सब्जी फसल उत्पादन व्यवस्थाएँ अपनाकर आय व अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता है। ऋतुओं के अनुरूप विविध प्रकार की सब्जियों को फसल चक्र में समावेश कर खेत का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है तथा यह भूमि की उर्वरा शक्ति के संतुलत में भी लाभप्रद है। इस समय कृषि में अन्य फसलों की तुलना में सब्जियों की खेती द्वारा अधिकतम उत्पादन व आमदनी प्राप्त करने की क्षमता के साथ–साथ रोजगार की भी व्यापक संभावनाएँ हैं।

वर्तमान में कई प्रमुख व उपयुक्त कृषि–जलवायु वाले राज्यों में किसान सब्जियों का उत्पादन कर विशेष लाभ ले रहे हैं तथा घरेलु श्रम व संसाधनों का भरपूर उपयोग कर आर्थिक पक्ष को भी सुदृढ़ कर रहे हैं। परन्तु देश के कई राज्यों में ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां की कृषि–जलवायु के अनुरूप स्थानीय सब्जी उपयोगी फसलों को व्यवस्थित खेती में अपनाने की आवश्यकता है। अतः विविध कृषि–जलवायु वाले क्षेत्रों के अनुरूप स्थानीय व अल्पप्रचलित सब्जियों को बढ़ावा देकर किसानों को इनके उत्पादन के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है जिससे बाजार में इन सब्जियों की उपलब्धता बढ़ सके तथा वहाँ के लोगों को भी इनका लाभ मिल सके।

भारत–वर्ष में इस समय लगभग 55 प्रकार की सब्जियों का व्यावसायिक उत्पादन हो रहा है तथा इनकी खेती से अधिक उपज के लिए क्षेत्रीय जलवायु के अनुरूप भिन्न–भिन्न उन्नत प्रजातियाँ एवं बीज की उपलब्धता भी बढ़ रही है। वर्तमान समय में प्रमुख सब्जियों की अनेक उन्नत व संकर किस्में विकसित की जा चुकी हैं परन्तु उनके शुद्ध व प्रमाणित बीज किसानों को क्षेत्रीय कृषि–जलवायु व संसाधनों के अनुरूप खेती के लिए उपलब्ध करवाने की अतिआवश्यकता है। बीज फसल का पहला आधार है और इनसे सब्जियों की अधिक व गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए यह क्षेत्रीय कृषि–जलवायु के अनुरूप, आनुवंशिकीय शुद्ध, अधिक अंकुरण क्षमता, स्वस्थ व रोगाणुमुक्त होने चाहिए। क्योंकि सर्वगुणों से उपयुक्त बीज ही किसान की कड़ी मेहनत व लागत को सु–फल में परिवर्तित करता है। अतः यह अतिआवश्यक है कि आशा के बीज किसान को सहजता, शुद्धता एवं समय पर उपलब्ध हों जिससे भरपूर सब्जी फसल उत्पादन कर समाज को लाभान्वित कर सकें।

खेती में अधिक उत्पादन लेना ही किसान का पहला लक्ष्य होता है, परन्तु सब्जी फसलों में आनुवंशिकीय गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए वंशज लक्षणों को उपज से कई गुना अधिक महत्व दिया गया है। हमारे देश में किसानों द्वारा सब्जियों में इन दोनों पहलुओं का साथ–साथ समन्वय बहुत ही कठिन है क्योंकि ताजा सब्जी उत्पादन प्रायः अनुभवी व कम–शिक्षित किसान करते हैं, परन्तु शुद्ध बीज फसल उत्पादन के लिए तकनीकी दक्षता व प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। ताजा सब्जियों की खेती व विपणन कार्य की तुलना में बीज फसल उत्पादन बिना वैज्ञानिक ज्ञान, तकनीकी दक्षता एवं अनुभव से संभव नहीं है।

वर्तमान में देश के अनेकानेक क्षेत्रों में अशिक्षित व अप्रशिक्षित किसानों/ठेकेदारों के माध्यम से सब्जी फसलों का बीज उत्पादन किया जा रहा है एवं यह वैज्ञानिकी व आनुवंशिकीय गुणवत्ता की दृष्टि में दोषपूर्ण व अनुपयुक्त है। इसलिए सब्जी बीज उत्पादकों को विशेष कर तकनीकी ज्ञान जिसमें स्वः व पर–परागण से निषेचन क्रियाएँ, परागण के माध्यम (चींटी, तितली, भौंरा, मक्खी व अन्य कीट एवं हवा), फूल संरचनाएँ व फल जमाव,

प्रजातियाँ व इनसे संबंधित समूहों के मध्य पृथक्करण की दूरियाँ तथा जलवायु अनुरूप फसल चुनाव जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जानकारियों की आवश्यकता है।

सब्जी बीज उत्पादन तकनीकी

सब्जियों का बीज उत्पादन उनसे ताजा फसल उत्पाद (फल–फलियाँ, फूल–पत्ती, कंद–मूल) की तुलना में अधिकतम भिन्न, कठिन एवं तकनीकी दक्षता का कार्य है। सब्जी फसलों की उत्पति एवं उनके बीज उत्पादन की दृष्टि से भारत–वर्ष की जलवायु को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जिसमें पहला समूह शीतोष्ण–सम शीतोष्ण (temperate-sub-temperate) जलवायु जहाँ अत्यधिक ठंड युक्त पर्वतीय पारिस्थितिकी वाला होता है तथा विशेष उत्पति वाली सब्जी प्रजातियों (गोभी-वर्ग, गाजर, शलजम इत्यादि) का बीज उत्पादन इन्हीं क्षेत्रों में किया जा सकता है। दूसरा समूह अत्यधिक विस्तृत एवं विविधता युक्त उपोष्ण व उष्ण-कटिबंधीय (sub-tropical and tropical) जलवायु का जहाँ मैदानी, गर्म शुष्क व अर्द्धशुष्क कृषि क्षेत्र की पारिस्थितिकी होती है तथा यहाँ अनेकानेक सब्जी फसलों का बीज सहजता से उत्पादित किया जा सकता है।

देश के उत्तर–पश्चिमी गर्म मरुस्थलीय शुष्क क्षेत्र की जलवायु कृषि–बागवानी के लिए अत्यधिक प्रतिकूल है। यहाँ कम वर्षा, लम्बी समयावधि व अधिक तापमान (35 से 48 डिग्री सेल्सियस) वाला ग्रीष्मकाल तथा सर्दियों में तीव्र ठंड, अधिक न्यूनतम तापमान (–1 से –6 डिग्री सेल्सियस) व पाले की स्थिति जैसी वातावरणीय रूकावटों में भी सुनियोजित फसलों का चुनाव एवं उनकी समयावधि को क्षेत्रीय जलवायु व संसाधनों के अनुरूप उत्पादन प्रणालियों में समावेश कर व्यावसायिक सब्जी उत्पादन की प्रबल संभावनाऐं आँकी गई हैं। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में विगत 25 वर्षों से क्षेत्रीय जलवायु को आधार बनाकर किए गये अनुसंधान अध्ययनों से फसलों में गुणवत्तायुक्त उत्पादन क्षमता की संभावनाओं व रूकावटों एवं उपलब्ध संसाधनों का उपयोग जैसे मुख्य कारकों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कर व्यावसायिक बागवानी के लिए निष्कर्ष निकाले गये हैं तथा इससे एक सुनियोजित योजना का सृजन किया है जिसको बागवानी आधारित फसल उत्पादन प्रक्षेत्र प्रबन्धन (Horticulture based crop production site management approach, HBCPSMA) नाम दिया है।

यहाँ बागवानी के लिए फसलों को वातावरणीय प्रकोप के दुष्प्रभावों से सुरक्षा एवं निश्चित उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रक्षेत्र में उचित कृषि–जलवायु तैयार कर खेत प्रबंधन की विशेष आवश्यकता मानी है तथा यह प्रभावशाली, स्थिर एवं वैज्ञानिकता से भी परिपूर्ण हो, जिससे किसान उन्हें सहजता से अपना सकें। इसी के साथ चयनित फसलों/किस्मों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि व गुणवत्तायुक्त उपज के लिए उन्नत क्रियाओं व नवोन्वेषित तकनीकों को प्रक्षेत्र प्रबन्धन व्यवस्थाओं में अपनाना होता है। अतः मरुस्थलीय जलवायु व सूखा क्षेत्रों में अधिक कृषि उपज व आय प्राप्त करने के लिए खेजड़ी आधारित सब्जी फसल उत्पादन की योजनागत प्रणालियाँ एवं प्रारूप विकसित किये गये हैं जिनमें वर्षा आधारित व अल्पप्रचलित फसलों के लिए खेजड़ी पौध रोपण मॉडल केएम–1 व केएम–3 तथा सघन फसलों के लिए केएम–9 व केएम–11 सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

कृषि में व्यावसायिक जागरूकता, सब्जी फसलों की बाजार में बढ़ती माँग तथा यहाँ सिंचाई संसाधनों की सीमित उपलब्धता होने से इस क्षेत्र के किसान भी ताजा व नगदी सब्जियों पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। परंतु यहाँ के किसान वर्षा आधारित अथवा सिंचाई द्वारा ताजा सब्जी उत्पादन से भरपूर लाभ नहीं ले पा रहे हैं जिसका कारण क्षेत्रीय जलवायु के अनुकूल फसलों की उन्नत किस्मों के बीजों का अभाव एवं खेती में वैज्ञानिक तकनीकों का समावेश नहीं करना प्रमुख है। चूंकि यहाँ विषम परिस्थितियों युक्त कृषि–जलवायु होने से अनेकानेक प्रकार की सब्जी फसल उत्पादन संभव नहीं है, साथ ही इनकी गुणवत्ता एवं उत्पादकता भी प्रभावित रहती है। इसलिए यहाँ सब्जी फसलों व उनकी किस्मों के चयन एवं उनका उत्पादन उद्देश्य के लिए सुनियोजित योजनाएँ बनाकर खेती करना लाभदायक रहेगा।

संस्थान में बागवानी पर किये गये सतत् अनुसंधान कार्यों के निष्कर्षों के आधार पर गर्म शुष्क जलवायु में लगभग 55 प्रकार के पेड़–पौधों से सब्जी उपयोगी उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है जिनमें से 35 फसलों को सघन खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। इस क्षेत्र में पैदा की जाने वाली प्रमुख सब्जियों के साथ–साथ कुछ अल्प–प्रचलित व बहुवर्षीय स्थानीय सब्जी उपयोगी पेड़–पौधों के जननद्रव्यों से उन्नत प्रजातियाँ एवं सहज बीज उत्पादन / पौध प्रवर्धन तकनीकियाँ भी विकसित की गई हैं।

इस क्षेत्र में चयनित सब्जी फसलों की खेती के लिए जलवायु व संसाधनों के अनुरुप उनकी अनुकूल, उन्नत किस्मों व बीजों का अभाव है इसलिए यहाँ सब्जी बीज उत्पादन प्रणाली विकसित करने की विशेष आवश्यकता

है। यहाँ की कृषि–जलवायु विविधि प्रकार के सब्जी बीज उत्पादन के लिए सर्वाधिक अनुकूल है जिनमें कुष्माण्ड कुल की काचरी, काकड़िया/फूटककड़ी, आर्या–ककड़ी, तर–ककड़ी, वंगा–ककड़ी, सलाद–ककड़ी, खरबूजा, मतीरा, टिण्डा, लौकी, चिकनी तुरई, नसदार तुरई, कद्दू व करेला के उत्तम गुणयुक्त एवं रोग–रहित बीज उत्पादन किया जा सकता है। इसी प्रकार फल–फलियों वाली सब्जियाँ जिनमें ग्वारफली, चवलाँफली, सेमफली, कुम्बाफली, कौंचफली, मोठफली, मटर, भिंडी, सहजन, बैंगन, मिर्च व टमाटर का उच्च गुण एवं अधिक उपज से बीजोत्पादन किया जा सकता है। शुष्क जलवायु वाले कुछ चयनित क्षेत्रों में अगेती फूलगोभी, गाजर, मूली, पालक, मेथी, धनिया, सुवा, चौलाई, बथुआ, प्याज व लहसुन (कलियाँ) जैसी शीतकालीन सब्जी फसलों में अधिक एवं उच्च आनुवंशिकीय गुणवत्ता का वृहद स्तर पर बीज उत्पादन की व्यापक संभावनाएँ आँकी गई हैं।

सब्जी बीज उत्पादन की विधियाँ

सब्जी फसलों की निरन्तर खेती एवं उनके आनुवंशिकीय लक्षणों को बनाए रखने के लिए इनके संवर्धन के तरीकों जैसे – बीज, पत्ती, कलम, कली, कंद, स्कंद, जड़, तने की गांठ इत्यादि को अपनाकर प्रवर्धित किया जाता है। अधिकांश का बीज इनसे प्राप्त फल–फलियों के उत्पादन से मिलता है परन्तु कुछ सब्जियाँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें वानस्पतिक तकनीकी अपनाकर प्रसारित किया जाता है। सब्जियों के बीज दो पद्धतियाँ अपनाकर उत्पादित किये जाते हैं जिसमें पहली विधि जहाँ बीज बुवाई कर फसल खेत में स्व–स्थानिक (*in situ*) बीज उत्पादन किया जाता है। दूसरी विधि जिसमें फसल से प्राप्त उत्पाद (शीर्ष, कंद, स्कंद, जड़) को लेकर पुनः खेत में स्थापित (*ex situ*) कर बीज उत्पादन किया जाता है। इन दोनों ही विधियों का विभिन्न सब्जी फसलों के अनुरूप अपना अलग–अलग महत्व है। सब्जियों की स्व–स्थानिक विधि व एक ऋतु वाली जिसमें टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिंडी, ग्वार, चँवला, सेम, मटर, पालक, मेथी, धनिया व कुष्माण्ड वर्ग को ताजा फसल की भाँति ही बीजोत्पादन किया जाता है। परन्तु गाजर, मूली, शलजम, चुकंदर, प्याज व गोभी समूह फसलों का बीजोत्पादन दो ऋतुओं में होता है तथा इनके लिए अधिक श्रम व दक्षता की भी आवश्यकता होती है।

आनुवंशिकीय शुद्ध बीज उत्पादन के लिए सब्जियों में होने वाली परागण क्रिया के अनुरूप प्रक्षेत्र की फसलों में पृथक्करण दूरियाँ (isolation distance) रखने के लिए इनको दो मुख्य समूहों में विभक्त किया जा सकता है। पहला वर्ग जहाँ स्वः–परागण क्रिया जिनमें ग्वार, चँवला, सेम, मटर, टमाटर, मेथी इत्यादि कई फसलों एवं उनकी किस्मों का बीज उत्पादन एक ही प्रक्षेत्र में अत्यधिक कम दूरी (5–10 मीटर) अपनाकर किया जाता है। परन्तु बैंगन, मिर्च, भिण्डी जैसी कई ऐसी स्वः–परागण वाली फसलें हैं जिनमें पर–परागण क्रिया की भी संभावनाएँ रहती हैं इसलिए प्रक्षेत्र में इन फसलों/किस्मों के शुद्ध बीज उत्पादन के लिए कुछ विशेष पृथक्करण दूरियाँ (25–50 मीटर) रखना आवश्यक है। दूसरा समूह जहाँ पर–परागण क्रिया जिनमें कुष्माण्ड व गोभी वर्ग, गाजर, मूली, प्याज, पालक इत्यादि कई फसलों व किस्मों में सर्वाधिक पृथक्करण दूरियाँ (500–3000 मीटर) रखने की आवश्यकता होती है इसलिए इनके शुद्ध बीज उत्पादन के लिए खेत/प्रक्षेत्र/भौगोलिक क्षेत्र का चयन विशेष दक्षता के साथ किया जाता है।

सब्जियों की किस्मों के प्रजनक/मूल बीज से ही प्रमाणित या सच्चा बीज को फसल उत्पादन के लिए वितरित किया जाता है। इसलिए प्रजनक बीज का उत्कृष्टता से उत्पादन करना एक सैद्धांतिक अनिवार्यता है। पर–परागण क्रिया से निषेचन वाली सब्जियाँ जैसे गोभी व कुष्माण्ड वर्गीय एवं गाजर, मूली, प्याज आदि फसलें विषमयुग्मजी (heterozygous) होती हैं। इसलिए इनके सार्थक प्रजनक/मूल बीज के लिए चयनित पौधों में नियंत्रित पर–परागण क्रिया अपनाकर उत्पादन करना होता है। अतः इस कार्य के लिए विशेष क्षेत्र का चयन एवं अनुभव आवश्यक है। कुष्माण्ड कुल की अधिकांश फसलें उभयलिंगाश्रयी (monoecious) होती हैं जहाँ नर व मादा फूल पौधे की अलग–अलग गाँठों पर पाए जाते हैं तथा इस कुल की कई फसलों में परस्पर पर–परागण क्रिया से भी फल जमाव होता है अतः इनके प्रजनक व आधार बीज के लिए नियंत्रित परागण अथवा विशेष पृथक्करण दूरियाँ अपनाकर उत्पादन करने की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार मरुस्थलीय कृषि–जलवायु के कुछ सब्जी उपयोगी बहुवर्षीय पेड़–पौधों पर विगत 25 वर्षों से संस्थान में निरन्तर अनुसंधान कार्यों से इनके बहु–उपयोगी स्थानीय जननद्रव्यों में से उत्तम संततियों/प्रजातियों का चयन किया गया है तथा इन अल्प–प्रचलित फसलों को व्यावसायिक उत्पादन व्यवस्थाओं में समावेश करने के लिए इनके उच्च गुणवत्ता युक्त बीज उत्पादन/वानस्पतिक पौध प्रवर्धन की तकनीकियाँ भी विकसित की गई हैं। इन बागवानी उपयोगी बहुवर्षीय फसलों के पेड़–पौधों का खेती में अधिक से अधिक प्रसारित करने एवं इनके मातृवृक्ष खंडों से शुद्ध बीज उत्पादन/पौध प्रवर्धन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त तरीके भी तैयार किए

गए हैं। इसके अर्न्तगत खेजड़ी, कुमट, केर, लसोड़ा, सहजन, फोग व खींप की उत्तम संततियों के मातृवृक्षों से बीज लेकर पौधशाला में बीजू पौधे तैयार किये जाते हैं। परन्तु खेजड़ी की व्यवस्थित बागवानी के लिए बीजू पौधों को खेत में लगाकर उन पर उन्नत किस्मों से कलिकायन किया जाता है अथवा नर्सरी में ही कलिकायन किए पौधों को बगीचों में स्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार बहुवर्षीय सब्जियाँ जिनमें कुन्दरू (कलम), ककोड़ा (बीज), मीठा–नीम (बीज), ग्वारपाठा (सकर्स), पुदीना (कलम) व सहजन (बीज/कलम) का भी चयनित किस्मों के मातृ–पौधों से बीज/वानस्पतिक भाग लेकर नर्सरी में पौध तैयार की जाती है तथा उनको व्यवस्थित फसल उत्पादन के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

दिलीप कुमार समादिया, श्रवण एम. हलधर एवं अजय कुमार वर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

गर्म शुष्क क्षेत्र की व्यावसायिक फसल- काचरी

राजस्थान के मरुस्थलीय अंचल के लोगों के खान–पान, तीज–त्यौहार व लोकगीत, धार्मिक पूजन सामग्री आदि में काचरी का बड़ा महत्व है। यहां प्रवासी रिश्तेदारों को काचरी के सूखे फलों की सौगात (दिबड़ी) देने का रिवाज होता है। बारानी क्षेत्रों में बाजरा, ग्वार एवं मौठ की फसल में मतीरा, काकडियां, टिण्डा के साथ काचरी का उत्पादन वृहद स्तर पर होता है। वर्षा आधारित फसलों के साथ काचरी की खेती, बाजार में ताजा एवं सूखी काचरी की मांग, मसाला पाउडर में काचरी का प्रयोग इसकी उपयोगिता के कई रूप दर्शाते हैं।

काचरी की बेलें वर्षा ऋतु में परती भूमि, घरों, बाड़ों व खेतों के मध्य स्वत ही उग आती है तथापि परम्परागत फसलों के साथ इसके बीजों की बुवाई भी होती है। मरुक्षेत्र का काश्तकार वर्षों से काचरी का स्व–उत्पादित बीज काम में लेता आ रहा है जिसकी चयन प्रक्रिया में किसी प्रकार का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता है। खेत से संग्रहित काचरी के कुछ उत्तम फलों के बीजों को निकालकर अगली फसल की बुवाई हेतु सुरक्षित रखे जाने की परम्परा रही है। इसके पौधों तथा फलों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में बहुत विभिन्ताएँ पायी जाती हैं। काश्तकारी जागरुकता बढ़ने से बारानी के साथ सिंचित क्षेत्र में भी इसकी उन्नत खेती करने लगे हैं। इस प्रकार काचरी की खेती से किसान के आर्थिक लाभ की दर में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। एक वर्षीय लताओं पर पौध उगने के 60–80 दिन बाद फलों की तुड़ाई प्रारम्भ की जा सकती है। काचरी के ताजा फल खाने में स्वादिष्ट व गुणकारी होते हैं तथा इनमें अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते हैं। इसके फल सलाद रूप में भी खाए जाते हैं। फलों से अचार, चटनी एवं सब्जी व्यापक रूप से बनाई जाती हैं। प्रति 100 ग्राम ताजा फलों में 88.2 प्रतिशत जल, 7.45 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.28 प्रतिशत प्रोटीन, 1.28 प्रतिशत वसा, 1.21 प्रतिशत रेशा पाया जाता है। खनिज लवण युक्त 1.46 प्रतिशत कुल भस्म (राख) जिसमें 0.09 मिलीग्राम केल्सियम, 0.0029 मिग्रा. फास्फोरस, 0.182 मिग्रा. लौह, 0.0046 मिग्रा. तांबा, 0.052 मिग्रा. जस्ता एवं 0.058 मि.ग्रा. मैगनिज तत्व भी इसमें पाये जाते हैं। प्रति 100 ग्राम ताजा फलों से 29.81 मिग्रा. विटामिन सी एवं 47–24 किलो कैलोरी उष्मा मिलती है।

सुखाकर भण्डारण की हुई काचरी का प्रयोग सब्जी, चटनी, आदि में किया जाता है। मरुप्रदेश की लोकप्रिय सब्जी, '**पंचकूटा**' के पांच घटकों सांगरी, केर, लसोड़ा, एवं कुमट में काचरी भी एक मुख्यः घटक है। इसके चूर्ण का प्रयोग कई प्रकार के मसालों में व्यावसायिक स्तर पर होता है। सूखे फलों को नमक, काली मिर्च, जीरा, शक्कर व सौंठ के साथ मिलाकर एक विशेष चूर्ण बनाया जाता है जो कई प्रकार की पेट की बीमारियों, विशेषकर पाचन क्रिया व कफ़ में लाभदायक होता है। काचरी का उपयोग कुछ स्थानीय औषधियों में भी किया जाता है। सूखी काचरी के 100 ग्राम चूर्ण में 63.68ः कार्बोहाईड्रेट, 2.41ः प्रोटीन, 11.00ः वसा, 10.41ः रेशा, 12.50 मि.ग्रा. खनिज लवण, 17.02 मि.ग्रा. विटामिन सी, 0.8 मि.ग्रा. कैल्सियम, 1.56 मि.ग्रा. लौह, 0.025 मि.ग्रा. फास्फोरस, 0.04 मि.ग्रा. ताँबा, 0.45 मि.ग्रा. जस्ता तथा 0.495 मि.ग्रा. मैगेनिज तत्व पाये जाते हैं।

काचरी (कुकुमिस मेलो प्रजाति केलोसस व एग्रेटिस) कुष्मांड कुल का पौधा है। एक वर्षीय लता में नर व मादा फूल एक ही पौधे पर अलग–अलग आते हैं। एक लता पर 5–10 तक शाखाएं होती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में नर फूल एवं कुछ समय बाद मादा फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं। फूल प्रातःकाल 5–9 बजे के मध्य खिलते हैं। इसके फलों की गुणवत्ता में काफी विविधता पायी गई है। फल अण्डाकार, गोल, दीर्घायताकार अथवा लम्बे होते हैं तथा वजन प्रायः 5 से 125 ग्राम तक देखा गया है। प्रारम्भिक अवस्था में फल कड़वे होते हैं। पूर्ण विकसित होकर पकने पर फलों को सलाद, सब्जी, अचार एवं सुखा कर काम में लिया जाता है। एक विशेष स्वाद होने के कारण काचरियों को अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर पकाया जाता हैं।

शुष्क क्षेत्रों में काचरी वर्षा आधारित फसलों में स्वतः अथवा बीजों के छिड़काव द्वारा उगाते हैं और इनमें जो भी फल मिलते हैं उसी को काम में लेते रहते हैं। इस तरह उत्पादित काचरी के फलों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में काफी विभिन्ताएं होती हैं तथा आकार–प्रकार–स्वाद की स्थिरता व निश्चितता इनमें कभी नहीं हो पाती है। परम्परागत खेती में 6–7 फसलें एक साथ होती हैं इन्हीं में काचरी भी वर्षा ऋतु में सब्जी की फसल के रूप

में देखी जाती है। कम वर्षा एवं विषम परिस्थितियों में अच्छी उत्पादन क्षमता, बाजार में अच्छी मांग, खान पान में रची बसी तथा मई से नवम्बर तक ताजा फल के रूप में उपलब्ध होने के कारण ही काचरी की वृहद स्तर पर खेती की संभावनाएं एवं व्यापक स्तर पर प्रचार–प्रसार हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

उन्नत किस्में

ए.एच.के. 119

यह किस्म सब्जी, अचार तथा सुखाकर उपयोग हेतु उपयुक्त है। पूर्ण रूप से विकसित फल आकार में छोटे तथा अण्डाकार होते हैं। छिलका हल्का हरा कठोर, गहरी हरी धारियां लिए होता है। फलों का औसत भार 50–60 ग्राम, लम्बाई 5–6 सेमी. तथा व्यास 4.0–4.5 सेमी. होता है। फलों का गूदा 0.4 सेमी. मोटा तथा उसके बीच का खाली स्थान 3.04 सेमी. होता है जिसमें बीज अधिक मात्रा में होता है। शीघ्र पकने वाली किस्म होने के कारण इसमें बुवाई के 25–28 दिनों बाद नर फूल तथा 35–40 दिनों बाद मादा फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं। पूर्ण विकसित फलों की तुड़ाई 68–75 दिनों बाद प्रारंभ हो जाती है जो लगभग 110–120 दिनों तक चलती है। एक बेल से 20–23 फल आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। सामान्यतः बेल की लम्बाई 1.7–2.5 मीटर तक होती है जिस पर 5–7 मुख्य शाखाएं होती हैं। वैज्ञानिक तकनीक से खेती करने पर 95 से 100 क्विंटल फल प्रति हेक्टेयर उपज मिल जाती है।

इस किस्म की वर्ष में दो बार (फरवरी से मार्च तथा जून से अगस्त) खेती की जा सकती है। फरवरी–मार्च में बुवाई करने से इसके फलों को मई–जून की प्रचण्ड धूप में आसानी से सुखाया जा सकता है तथा काचरी पाउडर आधारित घरेलु उद्योग चलाए जा सकते हैं।

ए.एच.के. 200

यह भी शीघ्र पकने वाली किस्म है। इसके फलों को सलाद व सब्जी बनाने के लिए उपयुक्त माना गया है। पूर्ण विकसित फल आकार में बड़े तथा दीर्धायताकार होते हैं। छिलका कठोर तथा हल्का पीलापन लिए होता है परन्तु अधिक पकने पर हल्का केसरिया हो जाता है। फलों का औसत वजन 100–120 ग्राम, लम्बाई 7–8 सेमी. तथा व्यास 5.0–5.2 सेमी. तक होता है। फलों का गूदा एक सेमी. तथा बीच में 2.5 सेमी. खोखला भाग होता है जिसमें बीज की मात्रा कम होती है जिनको गूदे के साथ खाया जा सकता है। गूदा मीठा व स्वादिष्ट होता है।

इसमें बुवाई के 25–27 दिन बाद नर फूल तथा 30–35 दिन बाद मादा फूल आने प्रारंभ हो जाते है। पूर्ण विकसित एवं पके फलों की तुड़ाई फसल बुवाई के 65–70 दिन बाद प्रारंभ होकर 100 से 110 दिन तक चलती रहती है। सामान्यतः पौधे की लम्बाई 1.75–2.25 मीटर होती है तथा इसमें 5–6 शाखाएं होती हैं। एक बेल से लगभग 18–20 फल मिल जाते हैं और औसत पैदावार 115–120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हो जाती है। काचरी की इस किस्म की बुवाई भी वर्ष में दो बार, फरवरी से मार्च तथा जून से अगस्त अन्त तक की जा सकती है।

काचरी की उन्नत किस्म 'एएचके–119' में उत्पादन और व्यावसायिक संभावनाएं : संस्थान द्वारा विकसित काचरी किस्म एएचके–119 को दिनांक 25 जून, 2014 को किसान के खेत में लगाया। इन्होंने इस किस्म को बूंद–बूंद सिंचाई में लगया था। इसे जून (अगेती खरीफ फसल) में इसलिए लगया था जिससे कि इसमें अगेती फलन हो और विपणन के दौरान बाजार से इसका अच्छा मूल्य प्राप्त हो। किसान को इस योजना में मनोरूप सफलता मिली और काचरी के फल औसतन रू. 24.00 प्रति किग्रा. के हिसाब से विक्रय हुए। किसान के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में उनकी काचरी रू. 9.00 प्रति किग्रा. के हिसाब से विक्रय हो पायी थी, जिसका मूल कारण उस समय बाजार में काचरी की बहुलता होना था। इस प्रकार इस बूंद–बूंद सिंचाई पर आधारित इस काचरी की खरीफ फसल से रू. 2,20,000.00 सकल आय हुई थी। किसान श्री मुकेश पारीक से लिए गये एक साक्षात्कार के अनुसार संस्थान द्वारा विकसित काचरी किस्म 'एएचके–119' एक बेहतरीन किस्म है, जिसको एक निश्चित प्रबंधन द्वारा वर्ष में दो बार उगाया जा सकता है। यह एक अधिक उपज देने वाली किस्म है जो इस गर्म शुष्क वातावरण में अच्छी बढ़वार करती है। उन्होंने बताया कि इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने वर्ष 2013–14 के दौरान उनके खेत में इस किस्म का एक प्रदर्शन लगाया था जिसके द्वारा भी उन्हें बहुत लाभ प्राप्त हुआ। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान के सहयोग एवं परामर्श से वह आगामी मौसम 2014–15 में भी इस किस्म को खेत में बोना चाहते हैं। काचरी की यह किस्म आकार–प्रकार, स्वाद, रंग एवं अपने उत्पादन से सभी किसानों का ध्यान अपनी और आकर्षित करती है। इस क्षेत्र के किसान इस किस्म को अपने–अपने खेतों में उगाने को लालायित रहते हैं। यही कारण है कि इस किस्म का बीज एक दिन में ही बिक जाता है। यह किस्म सब्जी, अचार, चटनी एवं शुष्कीकरण करने के लिए बहुत उपयुक्त है। इसको सुखाकर बनाए जाने वाले पाउडर का

प्रयोग मसालों के रूप में भी किया जाने लगा है जिससे इसकी मांग अत्यधिक बढ़ गयी है। श्री मुकेश कुमार पारीक जिन्होंने यह सफलता की कहानी हमें बताई है वह, एक नवाचार अपनाने वाले प्रगतिशील किसान हैं। इन्होंने न केवल काचरी किस्म एएचके–119 से फलोत्पादन लिया है बल्कि इसके बीज तैयार कर इसे व्यावसायिक स्तर पर विक्रय भी किया है। वर्ष 2014 के दौरान इन्होंने संस्थान के वैज्ञानिकों की सलाह के अनुसार इस किस्म के 11.00 किग्रा. बीज बनाकर उनको रू. 2000.00 प्रति किग्रा. के हिसाब से बेचा।

शिव राम मीना एवं दिलीप कुमार समादिया
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

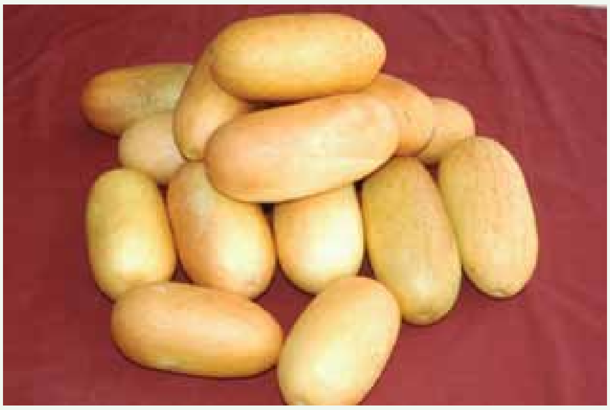

पादप संरक्षण एवं विकसित तकनीक

शुष्क फल व सब्जियों में प्रमुख कीट और व्याधि तथा उनकी रोकथाम

राजस्थान में शुष्क फलों वाली फसलों के अंतर्गत बेर, बेल, खजूर, लसोड़ा, अनार व आवंला आदि मुख्य फसलें आती हैं जो पौष्टिकता की नजर में बहुत ही कारगर हैं। अगर हम लोग मौसम के अनुसार आने वाले इन सभी फलों का समुचित मात्रा में उपयोग करें तो हमें अपने शरीर में बहुत से पौष्टिक तत्व मिल जाते हैं जो हमारे शरीर के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। शुष्क सब्जियों वाली फसलों में कद्दूवर्गीय (काचरी, फूट काकड़ी, लौकी, तोरई, कद्दू, तरबूज (मतीरा), खरबूजा) और सोलेनेसियस वर्गीय सब्जियों में टमाटर, बैगन एवं मिर्च आदि अपना विशेष स्थान रखती हैं। इनका उपयोग सलाद के रूप में ककड़ी व टमाटर सब्जी बनाने में लौकी, तोरई, करेला, काशीफल, छप्पन कद्दू, बैंगन मीठे फल के रूप में तरबूज व खरबूजा आदि का प्रयोग किया जाता है। इन सभी फसलों की उपयोगिता होने की वजह से इनको बचाना तथा इनका संरक्षण करना अति आवश्यक है।

शुष्क फलों और सब्जियों वाली फसलों में कई प्रकार की व्याधियां आती हैं जिससे इनकी उपज एवं गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जिसका सीधा असर किसानों की आमदनी पर पड़ता है। इसलिये इन फसलों की प्रमुख बीमारियों की रोकथाम करके अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। जिससे निश्चित रूप से किसानों की आमदनी बढ़ेगी। इसलिए इन प्रमुख व्याधियों/बीमारियों के बारे में जानना व उनकी रोकथाम करना अति आवश्यक है। अतः इन व्याधियों की रोकथाम हेतु निम्नलिखित उपाय करें–

बेर की प्रमुख व्याधियां

क) आल्टरनेरिया फल सड़न रोग

लक्षण

फलों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। जिन फलों पर ये धब्बे दिखाई देते हैं। वो रोग ग्रसित फल जल्दी टूट कर गिर जाते हैं। बाद में नीचे गिरे हुये फल सड़ जाते हैं जिनमें प्रायः दुर्गंध आने लगती है।

रोग कारक– आल्टरनेरिया आल्टरनाटा नामक कवक द्वारा होती है।

रोकथाम

- इसके नियंत्रण के लिए जिनेव या इंडोफिल एम–45 नामक दवा का 0–2 प्रतिशत घोल का छिड़काव लक्षण दिखाई देते ही करना चाहिए।
- नीचे गिरे रोग ग्रसित फलों को नष्ट कर देना चाहिए।

ख) छाछया रोग

लक्षण

इस रोग में पत्ती की ऊपरी सतह तथा फलों पर सफेद चूर्ण जैसी परत दिखाई देती है। यह रोग बेर में अक्टूबर से फरवरी तक पाया जाता है। जब यह रोग गंभीर अवस्था में फैलता है तो पत्ती की निचली सतह पर भी पाया जाता है, साथ ही साथ फल उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह रोग उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं मध्य प्रदेश आदि राज्यों के अर्ध–शुष्क एवं आर्द्र क्षेत्रों में ज्यादा पाया जाता है। यह रोग अक्टूबर से दिखायी देने लगता है और दिसम्बर तक चरम सीमा पर पहुँच जाता है। बीकानेर एवं उसके आसऋपास यह रोग नहीं पाया जाता है।

रोग कारक– ओइडियम इरिसाईफोइड्स एफ. एसपी. जीजिफी नामक कवक द्वारा होती है।

रोकथाम

- गर्मी में बेर के बगीचे की जुताई अवश्य करें।
- लक्षण नजर आने पर 01 एमएल केराथेन नामक कवकनाशी के घोल का 10–15 दिनों के अन्तराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- बेर की प्रजातियाँ जैसे–सेव, मुंडिया, जोगिया, सफेदा–1, अजमेरी आदि एस. के. नगर (गुजरात) क्षेत्र में रोग अवरोधी पायी गयी हैं।

आंवला की प्रमुख व्याधियां

क) रतुआ (रस्ट) रोग–

लक्षण

ग्रसित आंवले के फलों पर गोल अण्डाकार लाल धब्बे बन जाते हैं। बाद में ये धब्बे फल के अधिकतर भाग को ढ़क लेते हैं। जिससे फलों की गुणवत्ता तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रोग कारक– यह एक कवक रीविनेलिया अम्बलिका से होता है।

रोकथाम

- इसकी रोकथाम हेतु 0–2 प्रतिशत इंडोफिल जेड–78 या मैन्कोजेब का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर दो बार करना चाहिए।
- आंवला की प्रजातियाँ जैसे–फ्रांसिस व एन.ए.–6 आदि में फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) क्षेत्र में इस रोग की तीव्रता काफी कम पायी गयी हैं।

खजूर की प्रमुख व्याधियां

क) अंतः भूस्तारी पौध गलन (सकर रोट) रोग

लक्षण

इसमें मुख्य रूप से गलन की समस्या आती है जिसकी वजह से जड़ें सड़ जाती हैं जिससे पौधा मिट्टी से पानी तथा अन्य पोषण तत्व नहीं ले पाता है और अंत में पौधा मर जाता है।

रोग कारक– यह रोग फ्यूजेरियम या बोटरियोडिप्लोडिया जाति आदि कवकों द्वारा होती है।

रोकथाम

1) स्वस्थ मातृ पौधे से ही सकर लेने चाहि,।
2) इसके नियंत्रण के लिए सकर को बेविस्टीन (0–1 प्रतिशत) अथवा रिडोमिल (0–15 प्रतिशत) कवकनाशी घोल में 2 से 5 मिनट तक डुबोना चाहिए।

अनार की प्रमुख व्याधियां

क) जीवाणु नामक पत्ती एवं फल धब्बा रोग

लक्षण

इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे गहरे रंग के धब्बे बनते हैं। ग्रसित पत्तियां सड़ जाती हैं जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियों के अलावा फलों पर भी गहरे भूरे एवं काले धब्बे दिखाई देते हैं। बीकानेर एवं उसके आस–पास यह रोग नहीं पाया जाता है। जिस क्षेत्र में नमी ज्यादा होती है वहाँ पर यह बीमारी पायी

जाती है। यह बीमारी सबसे पहले 1952 में दिल्ली में पायी गयी।

रोग कारक– यह व्याधि जेंथोमोनास अग्जेनोपोडिश पीवी. पिउनिकी नामक जीवाणु द्वारा होती है।

रोकथाम

1) 200 से 500 पीपीएम का ट्रेट्रासाइक्लिन या स्ट्रेप्टोमाइसीन नामक दवा का छिड़काव करें।
2) पूसामाइसिन (500 पीपीएम) और कॉपरऑक्सीक्लोराइड (2 ग्रा.) को मिलाकर दो–तीन बार छिड़काव करें।
3) अनार की प्रजातियाँ जैसे– गणेश, मृदुला, रूबी आदि अनंतपुर (आंध्र प्रदेश) क्षेत्र में रोग ग्राही पायी गयी हैं। इसलिए इन प्रजातियों को इस क्षेत्र में न लगाया जाए।

कद्दूवर्गीय सब्जियों में प्रमुख व्याधि तथा उनकी रोकथाम

कद्दूवर्गीय सब्जियों में कई बीमारियां होती हैं जिनका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार है–

(अ) लौकी का आल्टबरनेरिया पत्ती झुलसा रोग

लक्षण

पत्तियों की ऊपरी सतह पर हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते है जो बाद में गहरे भूरे रंग के हो जाते है। ये धब्बे आपस में मिलकर पत्ती की सतह को काफी घेर लेते है। पत्तियों पर केन्द्रीयकृत गोल (कोनसेनटिरीक) गोले बनते है।

रोग कारक– आल्टरनेरिया कुकुमेरिना नामक कवक द्वारा होती है।

रोकथाम

1) मेनकोजिब दवा का 2 ग्रा. प्रति लीटर के हिसाब से 10 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।
2) मामूली रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे– पूसा नवीन, पूसा संतुष्टि व पूसा संदेश का प्रयोग करें।
3) खरपतवारों को भी नष्ट करना चाहिए।
4) स्वस्थ व प्रमाणित बीज ही प्रयोग करें।

आ) लौकी की चुर्णिल आसिता

लक्षण

रोग ग्रसित पौधों की पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद या धूसर, गोल व चूर्ण रूप में छोटे धब्बे बनते हैं जो बाद में पूरी पत्ती पर फैलकर ऊपरी सतह को ढक लेते हैं। इस रोग से पत्तियों व फलों का आकार छोटा व विकृत हो जाता है तथा ग्रसित फलों की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। तीव्र संक्रमण होने पर पत्तियाँ गिर जाती है। यह रोग खीरा व कद्दू आदि में भी पाया जाता है।

रोग कारक– इरायसिफी सिकोरेसियेरम नामक कवक द्वारा होती है।

रोकथाम

1 खेत व उसके समीप जंगली पौधों को उखाड़कर नष्ट करना चाहिए।
2 रोग की प्रारम्भिक अवस्था पर कैराथेन (1 मिग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करें।
3 गंधक के चूर्ण का 25–30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 10 दिन के अंतराल पर दो–तीन बार भुरकाव करें।

4 नीम गिरी का अर्क (5–10 प्रतिशत) भी इस बीमारी में उपयोगी है।

इ) खरबूजा की म्लानि रोग (विल्ट)

लक्षण

इस रोग द्वारा पौधों का ऊपरी भाग किसी भी अवस्था पर मुरझा कर सूख जाता है। पत्तियाँ पीली हो जाती है। कॉलर वाला क्षेत्र सिकुड़ जाता है। पौधों की जड़ें व भीतरी भाग भूरा हो जाता है। फूल आने व फल बनने की अवस्था में लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। रोगी पौधों की जाइलम नलियां रुक जाती हैं। पानी व पोषक तत्व नीचे से ऊपर नहीं जा पाता है जिससे पौधा शीघ्र मर जाता है।

रोग कारक– फ्यूजेरियम स्पेशीज

रोकथाम

1 रोग रोधी प्रजातियां या कम बीमारी पायी जाने वाली जीनोटाइप (ए.एच.एम.एम./बीआर–42) उगानी चाहिए।

2 धान व मक्का के साथ चार साल का फसल चक्र अपनायें।

3 गर्मियों में खेत की जुताई करें।

4 भूमि सौर्यीकरण करने से इस बीमारी को कम कर सकते हैं।

5 बोने से पहले बीज को बेविस्टीन (1 ग्राम/लीटर) से उपचारित करें तथा बीमारी आने के बाद इसी दवा की ड्रेन्चिंग करें।

ई) खरबूजा की मृदुरोमिल आसिता

लक्षण

इस रोग में पत्ती की ऊपरी सतह पर हल्के पीले कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में इन धब्बों के ठीक नीचे पत्ती की निचली सतह पर मृदुरोमिल फफूंद बैंगनी रंग की दिखाई देती है जो शिराओं द्वारा सीमित हो जाती है। इससे प्रभावित फल आकार में छोटे रह जाते हैं तथा फलों की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। रोगी पौधों के पीले धब्बे शीघ्र ही लाल भूरे रंग के हो जाते हैं।

रोग कारक : स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्युबेन्सिस नामक कवक द्वारा होती है।

रोकथाम

1. फसल चक्र को अपनाना।

2. फलों की तुड़ाई के उपरांत फसल के अवशेषों को जला देना चाहिए।

3 खड़ी फसल पर मैन्कोजेब 2.5 किग्रा. एक हजार लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर इस बीमारी को कम किया जा सकता है।

उ) तरबूज/मतीरा का विषाणु रोग

लक्षण

इस बीमारी द्वारा ग्रसित पौधों की वृद्धि कम होती है। पौधे छोटे व विकृत रह जाते हैं। ग्रसित पौधों की नयी पत्तियाँ छोटी, आकार में पीली धब्बे युक्त चितकबरे दिखती हैं। पत्तियाँ सिकुड़ जाती है तथा पीला मौजेक या मोटिल क्रम दिखाई देता है जिसमें क्लोरोटिक पैचेज दिखते हैं। फल छोटे व विकृत हो जाते हैं। आजकल यह बीमारी तोराई में भी अधिक पायी जाती है।

रोग कारक— इसका रोग कारक कुकुम्बर मोजेक वाइरस है तथा यह बीमारी सफेद मक्खी द्वारा हस्तांतरित होती है।

ऊ) तरबूज/मतीरा की कलिका ऊतक मृत्यु (नेक्रोसिस) बीमारी

लक्षण

रोग— ग्रसित पत्तियों की शिराओं से नेक्रोसिस धारियां बन जाती है। इन्टरनोड छोटे रह जाते हैं। कलिका की नेक्रोसिस हो जाती है, बाद में सूख जाती है। धीरे धीरे कलिका वाली पूरी शाखा सूखने लगती है। पत्तियाँ सिकुड़ जाती है तथा पीली पड़ जाती है।

रोग कारक— यह बीमारी कलिका नेक्रोसिस वाइरस से होती है।

विषाणु रोग तथा कलिका ऊतक मृत्यु व्याधि की रोकथाम

1. रोगी पौधों के भाग को इकट्ठा करके जला देना चाहिए।
2. स्वस्थ बीज बोना चाहिए।
3. इमिडाक्लोप्रिड (3–5 मिली. प्रति 10 लीटर पानी) दवा से उपचारित करें तथा खड़ी फसल पर छिड़काव भी करें, जिससे रोग वाहक कीट नष्ट हो जाते हैं।
4. खेत के चारों ओर बाजरा उगायें जिससे बीमारी का प्रकोप कम होता है।

सोलनेसी कुल की सब्जियों की व्याधि एवं उनकी रोकथाम

इन सब्जियों में कई प्रमुख बीमारियां होती हैं जिनका उल्लेख निम्न प्रकार है–

अ) मिर्ची का पर्ण कुंचित

लक्षण

सबसे पहले छोटी पत्तिया ग्रसित होती है पत्तिया पीली हो जाती है। पत्तिया ऊपर से मुड़कर मुरझाने लगती है। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है जिससे पौधे छोटे रह जाते है। अंत में मिर्च की उपज व गुणवत्ता पर विपरीत असर पड़ता है।

रोग कारक— यह बीमारी तम्बाकू पर्ण कुंचित नामक वाइरस से होती है। यह बीमारी सफेद मक्खी द्वारा हस्तांतरित होती है।

रोकथाम

1) खेत के चारों ओर मक्का जैसी बाधा फसलें (बेरियर फसलें) उगायें जिससे बीमारी की तीव्रता को कम कर सकते हैं।
2) रोगग्रस्तर पौधों का उखाड़कर खेत के बाहर जला देना चाहिए।
3) पीले फीता को खेत के चारों ओर बांधनें तथा साइपरमेथरिन (60–100 ग्राम/हेक्टेयर) का छिड़काव करने से सफेद मक्खी (वेक्टर) की जनसंख्या को कम कर इस बीमारी को भी कम किया जा सकता है।

2) फल एवं सब्जियों के कीट एवं नियंत्रण

शुष्क क्षेत्र में फलों व सब्जियों की कम उत्पादकता के कई कारण हैं जिनमें से जैविक कारक जैसे– कीट और रोग आदि आते है। इस शुष्क क्षेत्र के मुख्य कीट (खजूर स्केल, खजुर का लैसरमोथ, बेर फल मक्खी, बेर की ईल्ली, फल भेदक, माहु, थ्रिप्स, नीबू की तितली, अनार की तितली, केर की तितली, कद्दूवर्गीय फल मक्खी, हाड़ा बीटल, माहु, थ्रिप्स आदि) है, जो काफी आर्थिक नुकसान पहुंचाते है। बेर फसल में फल मक्खी (कार्पोमया वेसुवियना) व बेर की ईली सबसे विनाशकारी कीट है। फल मक्खी के गंभीर नुकसान से 80 प्रतिशत तक उपज

की हानि होती है। बेर की ईल्ली (अबेयस हिमालयान्स) से फलों में 28.8 प्रतिशत से 51.8 प्रतिशत तक नुकसान देखा गया। खजूर का लेसर मोथ फलों में 16 से 20 प्रतिशततक नुकसान होता है।

फलों में लगने वाले मुख्य कीटः

अ. फल की ईल्ली (अबैईसे हिमालैईस)

आर्थिक क्षतिः यह फल के पिछ्ले हिस्से में अण्डे देती है और अण्डे से सुंडी (ग्रब) निकलती है जो फल के गुठ्ली को खाती है। इसके बाद फल सूख कर नीचे गिर जाते है।

आ. बेर की फल मक्खी (कार्पोमिया वैसुविअना)

आर्थिक क्षतिः इस कीट का मैगट ही क्षति पहुंचाते है। इस फल मक्खी का प्रकोप अक्टुबर से लेकर मार्च तक होता है। ग्रसित फल के छेद से लसदार हल्के भूरे रंग का द्रव निकलता है ओर फल सड़नें लगता है।

इ. अनार की तितलीः डीओडोरिक्स (विरेकोला) आईसोक्रेटस

आर्थिक क्षतिः अण्डे से निकला लार्वा फल में बोर करके अंदर घुस जाता हैं। क्षति के विशिष्ट लक्षण

आक्रमक और प्रविष्टि छेद के बाहर लार्वे का गंध मलमूत्र फंस जाता है। बाद में फल दुर्गंध पैदा करने लग जाता है और जीवाणु एवं कवक का हमला हो जाता है। प्रभावित फल अन्त में नीचे गिर जाते है।

ई. वृक्ष तना भेदक, (इनडरबैला कुआड्रिनोटाटा)

आर्थिक क्षति : इसकी सूंडी अवस्था हानिकारक होता हैं। प्रारम्भ में यह छाल को खरोंच कर खाती है तथा बाद में तने, उनके जोड़ स्थानों से छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाती हैं। यह रात्रि के समय सक्रिय रहती है। सूंडी रात्रि के समय सुरंग अथवा छेद के पास छाल को खाती है तथा खाई हुई छाल के छोटे–छोटे टुकड़े मिलते है। यह इन जालों के अन्दर छिपकर तने की कोमल लकड़ी तथा खाध वाहिनियों को कुतर–कुतर कर खाती है जिससे सुरंग बनती है, फलस्वरुप तनों के उपरी भागों में पोषक तत्वों का प्रवाह रुक जाता है, तने कमजोर हो जाते हैं, शाखायें सूख जाती हैं तथा ग्रसित वृक्षों में फल कम लगते हैं।

उ. बेल पत्र की तितली, (पैपिलियो डिमोलिअस)

आर्थिक क्षति : इस कीट की सूंडी ही हानिकारक अवस्था होती है। जिसके काटने तथा चबाने वाले मुखाग्र होते है। सूंडी नीबू की पत्तियां खा लेती हैं तथा केवल डंठल ही शेष रह जाते हैं इससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा कभी–कभी तो सूख तक जाते है। इसका प्रकोप बरसात के दिनों में अधिक होता है।

ब. सब्जियों में लगने वाले मुख्य कीट :

1. कद्दू का लाल कीड़ा (रैफिडोपालपा फोवीकोलीस)

आर्थिक क्षतिः कद्दू का लाल कीड़े का व्यस्क एवं ग्रब दोनो नुकसान पहुचाते है। भृंग (व्यस्क) पत्तियों एवं फूलों को नुकसान पहुचाता है और ग्रब पौधे की जड़ों को खाता है। जमीन पर रखे हुए फलों के निचले भाग में छिद्र करके काफी संख्या में प्रवेश कर अंदर से खोखला कर देते है।

2. हाडा बीटल (ओसेपीलेक्ना विजींटिओपंकटाटा)

आर्थिक क्षति एवं नुकसानः इसके व्यस्क एवं ग्रब दोनो पौधे को नुकसान पहुचाते है। यह एक विशेष तरीके से पत्तियों को कुरेद कर धीरे धीरे सुखा देता है।

3. हीरक पृष्ठ शलभ (प्लूटेला जाईलोस्टेला)

आर्थिक क्षति एवं नुकसानरू इस कीट का लार्वा (सुण्डी) ही पौधे की पत्तियों को नुकसान पहुंचाता है। प्रारम्भिक अवस्था में लार्वा पत्तियों की निचली सतह में सुरंग के अंदर खाता है तथा बाद में बडा होने पर बाहर आकर पत्तियों में छिद्र बनाकर हरित पदार्थ खाकर क्षति ग्रस्त करता है।

4. बैंगन का फल एवं तना भेदक (लूसीनोईड्स ओरबोनेलिस)

आर्थिक क्षति एवं नुकसानः इस कीट का लार्वा (सुण्डी) ही पौधे के तनों एवं फलों को नुकसान पहुंचाता है। लार्वा प्रारंभिक चरण में कोमल टहनियों व तने में छेद बनाकर सुरंग बनाती है यह फूलों की कलियों और फलों को नुकसान करती है।

5. फल मक्खी (बैक्ट्रोसेरा (डैक्स) कुकुरबिटी)

आर्थिक क्षति एवं नुकसानः इस कीट का मैगट ही क्षति पहुंचाते है। मादा फल मक्खी अपने अंडरोपक को कोमल फलों में धॅसाकर गूदे में अण्डे देती है। ग्रसित फल के छेद से लसदार हल्के भुरे रंग का द्रव निकलता है। मैगट गूदे को खाकर उसमें बहुत से छेद कर देते है एवं फल सड़नें लगता है।

कीट नियंत्रण :

यह कीट प्रबंधन की वह विधि है जिसके द्वारा सभी उपयुक्त तकनीकों एवं उपायों का समन्वित उपयोग किया जाता है, ताकि फलों एवं सब्जियों को हानिकारक कीटों के आर्थिक नुकसान सें बचा सकें। इस प्रबंधन के अंदर निम्नलिखित प्रबंधन घटक आते है –

(अ) सस्य क्रियाएं

1. नर्सरी तैयार करना और हल से गहराई तक खुदाई करने से कीटों का सफाया किया जा सकता है। खेतों में नालियों की उचित व्यवस्था भी अपनाई जानी चाहिए।

2. पौधे के फलों को 2–3 दिन के अंतराल पर दो परत पेपर या प्लास्टिक से बांधना चाहिये जिससे फल मक्खी अपने अण्डे फलों पर नहीं दे पाती है। इसका उपयोग कददूवर्गीय फसलों में किया जाता है।

3. खेत की सफाई करना।
4. पौधों और फलों के क्षतिग्रस्त भागों को हटा कर और नष्ट कर देना चाहिए।
5. बीज की बुआई पूरे क्षेत्र में एक साथ और एक समय पर करें। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की उचित दूरी रखे। खेत में मिट्टी परीक्षण के बाद संतुलित मात्रा में खाद उर्वरक एवं आवश्यकतानुसार पानी दें, ताकि कीटों की संभावना कम हो सके।
6. अधिक उपज देने वाले कीट प्रतिरोधी फसल किस्मों को उगायें।

(ब) यांत्रिक क्रियाएं :

1. खेत पर चारों ओर उगे खरपतवार एवं पौधों पर से कीटों के प्रकोप का निरीक्षण करना चाहिए।
2. खेत में कीटों को हाथ से पकड़कर या उड़ते हुए पतगों को जाल में फांसकर मार देना चाहिए।
3. अंडों, लार्वा, संक्रामक कीटों के प्यूपा और व्यरस्कों, और जहां तक संभव हो पौधों के रोगग्रस्त हिस्सों को नष्ट कर देना।
4. लाइट ट्रैप्स का प्रयोग करना और उसमें फंसने वाले कीटों को नष्ट करना।
5. फिरामॉन टैप का प्रयोग करना चाहिए।

(स) जैविक कीट नियंत्रण :

- खेत में परभक्षी जीव जैसे – लेसविगंस, लेडी बर्ड बीटल, परभक्षी वास्प तथा परजीवी जैसे – *अपेन्टेलिस, ब्रेकॉन, रोगस, ट्राईकोग्रामा* इत्यादी का संरक्षण करें।
- परभक्षी पक्षियों जैसे कौआ, मैना आदि के बैठने एवं आकर्षित करने के लिए 4–5 लकड़ी के अड्डे प्रति हेक्टेयर की दर से लगाएं।
- रस चूसने वाले कीट दिखाई देने पर क्राईसोपर्ला 50,000 प्रति हेक्टेयर का 15 दिन के अन्तराल पर दो बार खेत में छोड़ें।
- मोयला, सफेद मक्खी मिलीबग इत्यादि रस चूसने वाले कीड़ों के नियंत्रण हेतु लेडी वर्ड बीटल जैसे परभक्षी का प्रयोग भी कर सकते है। खेत में *कोक्सिनेला* के 50,000 बच्चे प्रति है. की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- फसल की प्रारम्भिक अवस्था में कीटों के आक्रमण को रोकने के लिए नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें। जो कि मित्र कीट के संरक्षण में सहायक हैं।

(द) रासायनिक नियंत्रण :

रासायनिक कीटनाशकों का आवश्यकतानुसार सावधानी पूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

रासायनिक कीटनाशी का नाम	रासायनिक कीटनाशी की मात्रा
डाइमीथोएट 30 ई सी	1.5 से 2.0 मिली/ लीटर पानी
मैलाथियोन 50 ई सी	1.5 से 2.0 मिली/ लीटर पानी
स्पाईनोसेड 45 एस सी	0.5 से 0.7 मिली/ लीटर पानी
इंडोक्सिकर्ब 14.5 एस सी	0.5 से 0.7 मिली/ लीटर पानी

तने, पत्ति, फलों एवं फूल चूसक के लिये रासायनिक कीटनाशी

रासायनिक कीटनाशी का नाम	रासायनिक कीटनाशी की मात्रा
प्रोफेनोफोस 50 ई सी	1.5 से 2.0 मिली/ लीटर पानी
एसीफेट 75 एस पी	1.5 से 2.0 मिली/ लीटर पानी
ईमीडाक्लोपरीड 17.8 एस एल	0.5 से 0.7 मिली/ लीटर पानी
एसीटमेपरीड 20 एस पी	0.5 से 0.7 मिली/ लीटर पानी
थायोमिथोक्जाम 70 ड्ब्लू एस	0.5 से 0.7 मिली/ लीटर पानी

कीटनाशकों के मिश्रण का प्रयोग करें ।

- एक ही कीटनाशक का प्रयोग बार–बार न करें।
- पाइरीथ्राइड कीटनाशकों का प्रयोग कम करें या नहीं करें।
- मिलीबग पर रसायन सिर्फ ग्रसित पौधे पर ही छिड़कें।
- रसायनों का घोल केवल सिफारिस की गयी मात्रा में ही करें।

सुशील कुमार माहेश्वरी, श्रवण एम. हलधर एवं प्रो. पी. एल. सरोज
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

बागवानी फसलों में लघु सिंचाई द्वारा उर्वरक प्रबन्धन

पादप की बढ़वार के लिए विभिन्न रासायनिक तत्वों की आवश्यकता होती है। किसी भी पोषक तत्व के अभाव एवं अपर्याप्तता से पौधों की वृद्धि एवं विकास रूक जाता है। उर्वरक देने का उद्देश्य पौधों की पर्याप्त बढ़वार और उत्पादकता के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों को एक संतुलित मात्रा में प्रदान करना है। सिंचाई की उन्नत प्रणालियों में बूंद–बूंद सिंचाई, जल के दक्ष उपयोग के लिए उपलब्ध सर्वोत्तम तकनीकी है। खुली एवं संरक्षित खेती में बूंद–बूंद सिंचाई एवं फर्टिगेशन के उपयोग से जल एवं पोषक तत्वों की दक्षता में होने वाली बढ़ोतरी से उत्पाद के उत्पादन एवं गुणवत्ता में बढ़ोतरी हुई है। फर्टिगेशन में फसलों के दैनिक एवं मासिक आधार पर बूंद–बूंद सिंचाई के द्वारा दी जाने वाली जल एवं उर्वरक की सही मात्रा जानना महत्वपूर्ण है। फर्टिगेशन, उर्वरक प्रयोग की सबसे उन्नत एवं कुशल तकनीक है। यह जल एवं पोषक तत्वों का सही संयोजन, उत्पाद की उच्च उपज एवं बेहतर गुणवता प्राप्त करने की मुख्य कुंजी है।

सिंचाई की आवश्यकता :

मानसून वर्षा की अनिश्चितताः भारत में 80 प्रतिशत वर्षा मानसून अवधि के दौरान होती है। मानसून में वर्षा बहुत अनिश्चित है। इसलिये जब भी पौधों को पानी की जरूरत हो तब सिंचाई की जानी बहुत जरूरी है।

वर्षा का असमान वितरण : असमान वर्षा वितरण वाले क्षेत्रों में पानी की कमी पूर्ति करने के लिए अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता होती है।

अधिक उपज देने वाली फसलों की खेतीः – अधिक उपज देने वाली फसलों से अधिक जैव उत्पाद एवं आर्थिक उपज पैदा होती है। इसलिये जल का प्रयोग सिंचाई के रूप में आवश्यक है। उच्च जैव उत्पाद उत्पादन के लिये अधिक जल की आवश्यकता होती है।

मृदा की जल धारण क्षमता में अन्तर :

बलुई मृदा की जल धारण क्षमता कम होने के कारण इन मृदाओं में बार–बार सिंचाई की आवश्यकता रहती है जबकि मृत्तिका (चिकनी) मृदा की अधिक जल धारण क्षमता के कारण सिंचाई की कम आवश्यकता रहती है।

फसलों की वृद्धि एवं विकास के लिए जल की भूमिका –

- जल, जीव, द्रव्य का घटक है।
- चूंकि जल, विलायक के रूप में कार्य करता है इसलिये पौधे पानी में घुले हुए पोषक तत्वों का अवशोषण करते हैं।
- जल, वाष्पोत्सर्जन के माध्यम से जल, मिट्टी से पौधे के हरे उतकों तक पोषक तत्वों के लिए वाहक का कार्य करता है।
- जल का प्रकाश संश्लेषण में उपयोग होता है और जल द्वारा ही प्रकाश संश्लेषण के अन्तिम उत्पादों को पौधों के विभिन्न भागों में पहुंचाया जाता है।
- पौधे के वजन का 90 प्रतिशत से अधिक भाग जल होता है।
- पौधों में प्रकाश संश्लेषण द्वारा जल की उपस्थिति में खाद्य पदार्थों का संश्लेषण होता है।
- कोशिका के स्फीति दबाव को जल बनाये रखता है, जल स्फीति दबाव कोशिका की बढ़ोतरी और कोशिका विभाजन के लिये आवश्यक है जिससे पौधे की वृद्धि होती है।
- जल बीजों के अंकुरण, पौधों की जड़ विकास व पोषण तथा मृदा जीवों की वृद्धि के लिये आवश्यक है।
- जल पौधों की विभिन्न प्रक्रियाओं के लिये आवश्यक है, स्टार्च (मण्ड) को शर्करा में बदलने में भी जल सहायता करता है।
- जल वाष्पोत्सर्जन के लिये आवश्यक है। जिससे पोषक तत्वों का अवशोषण मृदा द्वारा होता है।
- जल पौधों के तापक्रम को बनाये रख कर उन्हें ठण्डा रखता है।
- जल मृदा की रासायनिक, भौतिक एवं जैविक प्रतिक्रियाओं में मदद करता है।

सिंचाई प्रणालिया

सिंचाई प्रणाली का मुख्य उद्देश्य पौधों को उनकी आवश्यकता के अनुसार जलापूर्ति, लवणों का निक्षालन, आवश्यक पोषक तत्वों एवं रसायनों की आपूर्ति करना है।

सिंचाई प्रणालियों के प्रकार

खुली सिंचाई/सतही सिंचाई प्रणालियां (गुरुत्वीय चलित विधियाँ) – इस प्रणाली में जल को मृदा की सतह पर सीधे रूप से प्रयोग किया जाता है। प्रक्षेत्र के ऊपरी हिस्सों में जल पाईप्स या नहर या अन्य प्रणाली द्वारा पहुंचाया जाता है जो भूमि की ढलान अनुसार गुरूत्वीय बल के द्वारा फैल जाता है। इसके अन्तर्गत हाथ से पानी देना, मुक्त बाद सिंचाई, सीमा पक्ति सिंचाई, थाला, कुंड सिंचाई, सर्ज सिंचाइ विधि है।

फलड सिंचाई

इस विधि में फसल को जल, मृदा सतह पर बहाव के रूप में पानी दिया जाता है इस विधि में मृदा सतह पर पानी के बहाव के लिये जमीन की सतह का उचित ढलान होना चाहिये। यह विधि उन क्षेत्रों में उपयोग में ली जाती है जहां पानी प्रचुर मात्रा में एवं सस्ता उपलब्ध हो और मृदा तथा फसल को किसी भी तरह का नुकसान ना हो। चावल में सिंचाई के लिये इस विधि का प्रयोग करते हैं।

सीमा पट्टी सिंचाई

इस विधि में खेत को छोटी मेड़ों द्वारा अनेक पट्टियों में विभाजित कर दिया जाता है। सीमा पट्टियों की लम्बाई, उनकी चौड़ाई से सामान्यतया तीन गुना रखी जाती है। पट्टियां समान्यतया चौड़ाई में समतल तथा लम्बाई में ढालदार होती है। इस विधि में सिंचाई नाली सीमा पट्टियों के ऊपरी हिस्सों पर होती है। यह विधि सभी सिंचित योग्य मृदाओं एवं कम अन्तराल वाली पक्तिबद्व फसलों एवं चारागाह फसलों जो एक घण्टे मृदा सतंप्तता को सहन कर सके के लिये उपयुक्त है। इस विधि से सात प्रतिशत ढलान वाली मृदाओं में चारागाह फसलों में सिंचाई की जा सकती है।

क्यारी विधि

इस विधि में खेत में छोटी मेड़ों से बनी लगभग समतल क्यारियों से पानी दिया जाता है। क्यारी की लम्बाई उनकी चौड़ाई के तीन गुना से कम होती है। क्यारियों में सिंचाई के लिए मुख्य एवं पार्श्व नालियां होती है। इस विधि में मुख्य नाली खेत के ऊपरी हिस्से में बनायी जाती है और क्यारियां मुख्य नाली से निकलने वाली पार्श्व नालियों के दोनों और बनायी जाती है। यह विधि सिंचाई के लिए सभी मृदाओं एवं फसलों के लिए उपयुक्त है। इस विधि में दो से तीन प्रतिशत ढलान वाली मृदाओं में सिंचाई की जा सकती है। इस विधि की सबसे बड़ी कमी यह है कि खेत का एक बड़ा भाग मेड़ों के अन्तर्गत आ जाता है।

कुंड विधि

इस विधि का आम तौर पर पक्तिबद्ध फसलों एवं सब्जियों की सिंचाई के लिये उपयोग किया जाता है। यह विधि उन मृदाओं के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है जिनमें अन्तस्पंदन की दर 0.5 से 2.5 सेमी प्रति घन्टा होती है। यह विधि 0.2–2.5 प्रतिशत ढलान एवं 1–2 लीटर/सैकण्ड धारा प्रवाह के लिए आदर्श है। कुंडों का आकार एवं आकृति फसल के प्रकार, कृषि उपकरण एवं फसल की पंक्तियों के अन्तराल पर निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में सतही जल निकासी की आवश्यकता होती है वहां कुंड विधि ज्यादा प्रभावी है। कुंडों की लम्बाई कम ढलान वाली बलुई मृदाओं में 30 मीटर एवं अधिक ढलान वाली भारी मृदाओं में 300 मीटर तक रखी जाती है। इस विधि में इसके मुख्य योजना प्रारूप मापदण्डों में अनुदैर्ध्य ढाल, धारा प्रवाह आकार, कुंड अन्तराल और कुंड की लम्बाई पर निर्भर करता है। इस विधि में सिंचाई जल कुंडों की सतह के 1/2 से 1/5 भाग के ही सम्पर्क में आता है। इस विधि में फसलों की अगेती बुवाई संभव है। कुंड सिंचाई विधि को उनके संश्लेषण के आधार पर दो प्रकार में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. सीधी कुंड जिनका ढलान 0.75 प्रतिशत तथा 2. कन्टुर कुण्ड – इनका ढलान हल्की मृदाओं में 5 प्रतिशत तथा स्थिर मृदा में 8–10 प्रतिशत तक रखते हैं।

सर्ज (वृद्धि सिंचाई विधि)

सर्ज सिंचाई में पानी का आन्तरयिक अनुप्रयोग, एक लम्बी कुंड में जिसकी लम्बाई 25 मीटर से 200 मीटर तक होती है उसमें निरन्तर या (5–10 मिनट) के समय अन्तराल से खुला और बन्द मोड की एक श्रृंखला में किया जाता है। इस विधि में पानी के खुले समय में पानी कुण्ड में एक निश्चित लम्बाई में बढ़ता है और इसके बाद पानी के अनुप्रयोग के बन्द समय में मृदा को आंशिक संतृप्त करता है एवं अन्तः स्पंदन दर उन्नत लम्बाई में कम हो जाता है। जब पानी पुनः खुले समय में दिया जाता है तो कुंड में पानी की अन्तः स्पंदन कम होने से कुंड के अन्तिम छोर तक शीघ्र पहुंच जाता है। इस विधि के बन्द

और खुला की प्रक्रिया से पानी की कटआफ से गहरा अन्तः स्त्रवण एवं अपवाह हानियां कम होती है। इस विधि से क्ले एवं बलुई मिट्टिओं में भूमि व पानी बचत में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं होता है। यह तकनीक भारत में अभी प्रारम्भिक अवस्था में है।

दाबित सिंचाई प्रणाली– इस दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्रारूप–1

ओवर हेड सिंचाई	**अन्डर कैनोपी सिंचाई (आच्छादन)**	**अधोः सतही सिंचाई**
स्प्रिकलर बिग गन, साधारण हैमर, स्प्रिंकलर, सेन्ट्रल पीयोट (केन्द्रीय धुरी) लीनियर (रेखिक) प्रणालियां, साइड रोलर सिंचाई विधि, माइक्रोस्प्रिंकलर, मेक्रोस्प्रिकलर, माइक्रो स्पेयर	बूंद–बूंद सिंचाई	बूंद–बूंद सिंचाई

स्प्रिकलर (फव्वारा) विधि

इस विधि में पानी कुछ सीमा तक वर्षा जैसी एक पतली स्प्रे (छिड़काव) के रूप में किसी फसल या मृदा सतह पर दबाव के साथ दिया जाता है। इस प्रणाली में स्प्रिकलर सिस्टम पम्पिंग इकाई से जुड़ा होता है। मुख्य लाइन से निकलने वाली पार्श्व लाईनों पर लगे राइजरों पर स्प्रिंकलर नोजल/हेड लगे होते हैं। इस प्रणाली में पानी के छिड़काव की दर को नियमित किया जा सकता है और प्राकृतिक वर्षा जैसा छिड़काव किया जा सकता है। इस प्रणाली में सावधानी पूर्वक नोजल, आकार, संचालित दबाव, स्प्रिंकलर अन्तराल का चयन कर, सिंचाई जल का एक समानता के साथ जो कि मृदा की अन्तः स्पंदन की दर के अनुरुप फसल के जड़ में आवश्यक पानी का उपयोग कर उपयुक्त सिंचाई की जा सकती है।

फव्वारा सिंचाई प्रणाली का उपयोग सभी फसलों (चावल और जूट को छोड़कर) और नम मिट्टी (भारी चिकनी मृदा के अतिरिक्त) में उपयोग में किया जा सकता है। यह विधि विशेष रूप से खड़ी ढलान या अनियमित स्थलाकृति के लिए अनुकूल है जहां पर मिट्टी कटाव का खतरा रहता है। वहां पर इस विधि का प्रयोग समोच्च, समोच्च दीवार, समोच्च थाला, समोच्च रेखित बांध, पलवार के साथ संयोजन के रूप में किया जा सकता है।

स्प्रिंकलर (फव्वारा) के लाभ –

(अ) ढलान वाले उबड़ खाबड़ पहाड़ी क्षेत्रों के लिए आदर्श रूप में उपयुक्त।

(ब) चाय, कॉफी, इलाइची और बगीचों की फसलों के लिए उपयुक्त।

(स) मूंगफली, कपास, अन्य फसलें जो फूल नहीं गिरने के प्रति अति संवेदनशील नहीं है के लिए उपयुक्त।

(द) घुलनशील उवर्रक, शाकानाशी, फफूंदनाशी, कीटनाशी का सिंचाई पानी के साथ अतिरिक्त उपकरणों के साथ आर्थिक रूप से प्रयोग किया जा सकता हे।

(य) यह फसलों को पाले और उच्च तापमान जो कि फसल उत्पादन और गुणवता को प्रभावित करते हैं से बचाता है।

(र) फसल के लिए भूमि की अधिक उपलब्धता।

(ल) इस विधि में पारम्परिक सिंचाई विधि की तुलना में 30–40 प्रतिशत लागत में बचत होती है।

(व) सतही विधि की तुलना में पानी की एक ही मात्रा में 40 प्रतिशत क्षेत्र की वृद्धि होती है।

(स) इस विधि में सतह की तुलना में जल उपयोग क्षमता 60 प्रतिशत श्रम की बचत होती है।

माईक्रो स्प्रिंकलर (सूक्ष्म फव्वारा)

इस प्रणाली में छोटे फव्वारों के द्वारा पानी कम दबाव पर फव्वारों के रूप में पेड़ों के जड़ क्षेत्र के चारों ओर दिया जाता है। यह एक ट्यूबिग नेटवर्क के रूप में स्थिर होता है। किन्तु इनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। सूक्ष्म फव्वारा से पौधों की जड़ क्षेत्रों में पानी की उचित मात्रा को दैनिक रूप से दिया जा सकता है। सूक्ष्म फव्वारा में जल बूंद–बूंद सिंचाई की तरह पौधे के जड़ क्षेत्र में दिया जाता है जबकि फव्वारा विधि में पूरी सतह पर पानी दिया जाता है। यह पद्धति पेड़/बगीचों वाली फसल और सब्जी की फसलों के लिए बेहद उपयुक्त एवं संरक्षित कृषि के लिए उपयुक्त है।

मेक्रो स्प्रिंकलर (रेनटान)

रेनगन, फव्वारा सयंत्र का संशोधित रूप है। जिसमें कम पूंजी की जरूरत होती है और पारम्परिक फव्वारा सयंत्र की तुलना में दूसरी फसलों के लिये संशोधित किया जा सकता है। इसका प्रयोग गन्ने की फसल में पलवार के साथ किया जाता है। इसके अतिरिक्त लॉन के लिए सबसे आदर्श है।

बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली

बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली सिंचाई की नवीनतम विधियों में से एक है जिसका प्रयोग पानी की कमी और लवण की समस्या वाले क्षेत्रों में तेजी से लोकप्रिय होता जा रहा है। इस प्रणाली में पानी पार्श्व पाईप लाइनों पर चयनित बिन्दुओं पर स्थित यान्त्रिक उपकरणों के माध्यम से असतत बूंदों, निरन्तर बून्दों या छोटे धाराओं या लधु स्प्रे के रूप में स्टीक है लेकिन धीमी गति से दिया जाता है। इस प्रणाली में वांछित पानी की मात्रा, विनियमित किया जा सकता है। इसमें पानी को उठाकर ओवर हैड पाइप लाइन के माध्यम से वितरित कर जिन पर निप्पल के जरिये इमिटर्स लगे होते हैं के द्वारा वांछित जगह पर पानी की आपूर्ति निरन्तर या आन्तराधिक की जा सकती है। इस विधि में पानी बहुत ही मितव्ययता से प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें गहरी टपकन और सतह वाष्पीकरण की वजह से जल हानि बहुत कम होती है।

यह विधि अधिक अन्तराल वाली, उच्च मूल्य वाली फसलें जैसे – नारियल, अंगूर, केला, नीबू वर्गीय आदि बागवानी फसलों के लिए उपयुक्त है। बूंद–बूंद सिंचाई, जल की कमी वाले क्षेत्रों, ऊबड़–खाबड़ या खड़ी ढलान वाली स्थलाकृतियों कम मिट्टी गहराई वाले क्षेत्रों, जहां श्रम शक्ति बहुत मंहगी हो और फसल का मुल्य ज्यादा हो के लिए सर्वोत्तम एवं उपयुक्त सिंचाई विधि है। शोध अध्ययनों से इस विधि के प्रयोग से 40–60 प्रतिशत पानी बचत के साथ विभिन्न फसलों का उत्पादन में बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली के घटक –

(अ) मुख्य घटक :

1. मुख्य पाइप लाइन
2. उप मुख्य लाइन
3. पार्श्व लाइन
4. इमिटर्स (उत्सर्जक)

(ब) सहायक घटक

– वाल्व

– दबाव मापक

– उर्वरक अनुप्रयोग घटक

– पौधों की वृद्धि और उपज में बढ़ोतरी।

– पानी, श्रम एवं ऊर्जा की बचत।

– समस्याग्रस्त मृदा के लिए सर्वोत्तम उपयुक्त।

– खरपतवारों का बेहतर नियंत्रण।

– कर्षण क्रियाओं के लिए उपयुक्त एवं सरल संचालन।

– लवणीय जल का उपयोग किया जा सकता है।

– उर्वरक उपयोग दक्षता में बढ़ोतरी।

– संचालन में लचीलापन एवं स्थापना में आसान

– उर्वरक एवं अन्य रासायनिक सुधारक व्यक्तिगत या अलग–अलग पौधों में प्रयोग कर सकते हैं।

उप/अधोःसतह सिंचाई/उप मिट्टी सिंचाई प्रणाली

इस प्रणाली में पानी मृदा की सतह पर न देकर इसकी अधोःस्तर में दिया जाता है। इसमें पानी का श्रृंखलाबद्ध खाइयों के जरिये जो की मृदा की अभेदय परत तक गहरी होती है में दिया जाता है। जहां से जल पार्श्वीय एवं उर्ध्वाधर केशिकात्व से कोशिकाओं के माध्यम से जड़ क्षेत्र की मृदा को सृतप्त करता है। कृत्रिम उप सतही सिंचाई प्रणाली में पानी को खुली खाइयों या अधो भूमिगत पाइपों जैसे कि टाइल नालियों या मोल नालियों या छिद्रित पाइपों के माध्यम से पौधों के जड़ तन्त्र की मृदा में दिया जाता है। खुली खाइयों या खड्डों की गहराई 30 से 100 सेन्टीमीटर तक एवं उनके बीच में अन्तराल 15–30 सेमी रखा जाता है। इस प्रणाली में पानी अनुप्रयोग तंत्र में आपूर्ति नालियों, खाइयां या खड्डों जो कि उपयुक्त अन्तराल पर उपस्थित होती है जिसमें खेत को कवर किया जा सकता है। इसमें जल विकास खाइयों के माध्यम से आधिक्य जल का निकास किया जाता है। इस के लिए मृदा में दो मीटर या अधिक गहराई वाली अभेद्य संस्तर उच्च पारमम्यता वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी समान स्थलाकृतिक दशाएं और मध्यम ढलान वाली मृदाएं सबसे उपयुक्त होती है। यह प्रणाली लम्बी अवधि वाली बहुवर्षीय उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए उपयुक्त है, जहां सतही सिंचाई की कोई अनिवार्यता नहीं है। यह प्रणाली गुजरात और कश्मीर के बलुई–दुमट मृदा वाले क्षेत्रों में काम में लायी जाती है।

बी.डी. शर्मा एवं रवि कान्त स्वामी
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

स्वास्थ्यवर्धक आँवला आधारित मुखवाश

परिचय

आंवला एक छोटे आकार और हरे रंग का एक बहुत ही पौष्टिक फल है, इसका स्वाद खट्टा होता है। आयुर्वेद के अनुसार आवला बहुत ही स्वास्थ्यवर्धक फल माना गया है। आवला विटामिन "सी" का सर्वोत्तम एवम प्राकृतिक स्रोत है। यह फल वृक्ष भारत में प्राचीन काल से उगाया जाता है। आवलें फल में विध्यमान टैनिन विटामिन 'सी' एवं एस्कोर्बिक एसिड को गर्मी के प्रभाव से कभी नष्ट नहीं होने देता है। आवले के फल को परंपरागत रूप से मुरब्बा, अचार, कैडी, जैम, जेली, स्कवैश, आदि बनाने में उपयोग किया जाता है। महर्षि चरक ने उस फल को जीवन दात्री तथा अमृतफल के बराबर लाभकारी माना है। यह फल औषधीय गुणों से भरपूर तथा विभिन्न रूपों उपयोग के कारण आवला 21 वीं सदी का प्रमुख फल हो सकता है। आंवले के फल अम्लीय एवं कसैले होने के कारण तुरन्त उपयोग के लिए उपायुक्त नहीं होते है अतः फलों का उपयोग संसाधित पदार्थ बनाकर उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय के अनुसार उपभोक्ताओं की बदलती जीवन शैली के साथ, स्वस्थ एव प्राकृतिक खाध्य घटकों के समावेश के साथ अद्वितीय खाध पदार्थ की बहुत जरुरत है। उसी पृष्ठभूमि के साथ शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर के तुड़ाई उपरान्त प्रौध्योगिकी प्रयोग शाला में आंवला से सबंन्धित संशोधित रूप में एक आंवला आधारित मुखवाश उत्पाद तैयार किया गया है।

बनाने की विधि

आंवला आधारित मुख वाश तैयार करने के लिए ताजे फलों का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले फलों को अच्छी प्रकार से धो लिया जाता है। उसके बाद संक्रमित अथवा क्षतिग्रस्त भागो को अलग कर दिया जाता है।

उसके बाद फलों को खुले एवं स्वच्छ स्थान पर अच्छे से सूखा लिया जाता है। इससे फलों से नमी दूर हो जाती है। उसके बाद फलों को चोपिंग बोर्ड पर कद्दूकस की सहायता से छोटे छोटे टुकडे (लच्छे) में कस कर तैयार किया जाता है। उसके बाद कसा हुआ चुकन्दर, सोंफ एव शुगर कैंडी (मिश्री) मिला दिया जाता है। यह सभी पदार्थ आवला आधारित मुख वाश बनाने में उपयोग किये जाते है। यह सभी सामाग्री (आवला : चकुंदर : शुगर कैंडी) को निम्नलिखित अनुपात के उपयोग किया जाता है (1:1:0. 25) यह अनुपात एक किलो मुख वाश तैयार करने के लिए दिया गया है। अगर व्यावसायिक रूप से मुख वाश तयार करना है तो साभाग्री अनुपात के अनुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। उसके बाद मित्रण में शुगर केंडी मिलाकर 4 से 5 घंटे तक रख देते है। उसके बाद मिश्रण को सुखाई मशीन से 60 डिग्री तापमान पर 15 से 20 घंटे सुखाया जाता है। इस दौरान मिश्रण को बार–बार पलटते रहना चाहिए। जिससे फलों को गर्म हवा से नुकसान नहीं पहुंचे। इस प्रक्रिया के द्वारा तैयार मिश्रण मुंह फ्रेशनेर रूप में सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है।

विजय राकेश रेड्डी, एस., रामकेश मीना एवं दीपक कुमार सरोलिया
भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

विविध

सॉयल हैल्थ कार्ड स्कीमः कृषि क्रान्ति के लिए वरदान

भारत एक कृषि प्रधान देश हैं जिसकी लगभग 70 प्रतिषत जनसंख्या प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से खेती पर निर्भर हैं तथा कृषि का देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में मुख्य भूमिका हैं। वर्ष 2015–16 के अनुसार देश के कुल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 14.13 प्रतिशत केवल कृषि और सम्बन्धित गतिविधियों से ही प्राप्त होता हें। देश की कृषि योग्य भूमि लगातार कम होने के साथ–साथ इसकी उर्वरा शक्ति भी कम होती जा रही है, तथा देश की बढती हुई जनसंखया के साथ खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना तथा कम लागत में अधिकतम उत्पादन कर किसानों की आमदनी बढ़ाकर देश को प्रगतिशील बनाना कृषि वैज्ञानिकों का लक्ष्य हैं।

स्वस्थ मृदा और स्वस्थ भोजन के बीच घनिष्ठ संबंध है। कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग के कारण हमारे देश की मिट्टी बहुत जहरीली हो गई है। जहरीली मिट्टी से उगने वाली फसल से बनाए जाने वाले भोजन से स्वास्थ्य संबंधीत समस्याएं बढ़ेंगी। रासायनिक उर्वरक डालकर हम अधिक पैदावार तो ले सकते हैं, लेकिन उस फसल में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है, जो स्वस्थ फसल के लिए आवश्यक है। गैर–विवेकपूर्ण तरीके से उर्वरकों के इस्तेमाल से मिट्टी की उर्वरकता में कमी आयी है जिसके फलस्वरूप मिट्टी के सूक्ष्म पोषक तत्वों में कमी हो जाती है और कृषि पैदावार में भी कमी आ जाती है। इस समस्या की गंभीरता को समझते हुए हमें मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार लाना आवश्यक है। यह अतुलनीय सत्य है कि खेती सीधे तौर पर मिट्टी से जुडी है। और मिटटी पर ही किसानों की उन्नति निर्भर करती है कहते हैं *''स्वस्थ धरा, खेत हरा''* देश के कृषि विशेषज्ञ समूह ने यह पाया कि किसानों में जानकारी के अभाव के कारण खेती में रासायनिक उर्वरकों व कृषि रसायनों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग किया जा रहा है इससे मिटटी की सेहत लगातार बिगड़ती जा रही हैं तथा किसानों के फसल उत्पादन व पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड रहा हैं। इसी सोच को लेकर ही भारत सरकार ने किसानों के कल्याण और फसल की उच्च उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रीत करते हुए फरवरी 19, 2015 में ''सॉयल हैल्थ कार्ड'' (एचएससी) *स्कीम* का शुभारंभ किया।

सॅायल हैल्थ कार्ड का इतिहास

वर्ष 2003–04 में वैज्ञानिक उपायों की पहल व मृदा स्वास्थ्य के देखभाल के लिए सर्वप्रथम देश के गुजरात राज्य में किसानों को सॅायल हैल्थ कार्ड उपलब्ध कराए गए। इस दिशा में राज्य में लगभग 100 से ज्यादा मिटटी परीक्षण प्रयोगशालाएं स्थापित की गई तथा राज्य में इस योजना के परिणाम काफी संतोषजनक रहें हैं।

सॅायल हैल्थ कार्ड की आवश्यकता क्यों?

कृषि में मृदा स्वास्थ्य की स्थिति व खाद की भूमिका के बारे में किसानों को जागरूक कर देश में खाद्यान्न फसलों से अधिकतम उत्पादन लेने में मदद मिलेगी तथा देश में फसल उत्पादन में गिरावट से निपटने में सहायता मिलेगी और कृषि उत्पादन में दबाव कम होगा।

मृदा परीक्षण के उददेश्य एवं आवश्यकता

मृदा परीक्षण के निम्नलिखित उददेश्य है।

1. मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा ज्ञात करना
2. मृदा परीक्षण के आधार पर फसलों के लिए संस्तुति देना।
3. मृदा परीक्षण के आधार पर क्षेत्रों का मूल्यांकन करना तथा उनका उर्वरता के आधार पर मानचित्र तैयार करना।
4. समस्या ग्रस्त भूमियों के लिये मृदा सुधारकों की सही–सही मात्रा का निर्धारण करना।

पौषक तत्वों की मात्रा का निर्धारण आदि सामान्यतः निम्नलिखित तथ्यों को ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

(1) जैविक कार्बन
(2) उपलब्ध नाईट्रोजन
(3) उपलब्ध फास्फोरस
(4) उपलब्ध पोटाश
(5) मृदा पी0एच0
(6) घुलनशील
(7) विधुत चालकता
(8) मृदा गठन
(9) फ्री0 कार्बोनेट की मात्रा एवं मृदा सुधारकों की मात्रा।

मृदा परीक्षण में मिटटी के नमूने के सही होने का विशेष महत्व होता है। इसलिए मृदा का नमूना इस ढंग से लेना चाहिए कि वे जिन खेतों से लिए जाये वे उनकी मिट्टियों का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर सकें। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि इन्हीं जांच के परिणामों के आधार पर उर्वरक संस्तुतियां तैयार करनी होती है। किसी क्षेत्र में भली भांति वितरित भागों से यादृच्छिक ढंग से मृदा का जो नमूना लिया जाता है, उसे प्राथमिक नमूना कहते है। जब प्राथमिक नमूनों को आपस में भली भांति मिला लिया जाता है। तो उसे प्रतिनिधि या संयुक्त नमूना कहते है।

मिट्टी की जाँच क्यों?

सभी फसलों को सफलतापूर्वक जीवन चक्र पूरा करने के लिए कम से कम 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिनमें आक्सीजन, कार्बन एवं हाईड्रोजन की पूर्ति वायु तथा जल से होती है। शेष 14 तत्वों की आपूर्ति मिट्टी से होती है। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने से फसलों के उत्पादन एवं गुणवत्ता में काफी गिरावट आती है। सभी फसलों की अच्छी बढ़वार के लिए भी मिट्टी की भौतिक संरचना व बनावट सही होना काफी महत्वपूर्ण है। इसके अलावा कई बार मिट्टी कुछ समस्याओं से जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, चूना युक्त होना, विषाक्तता, इत्यादि से ग्रस्त होती हैं। इन सब जानकारियों के बिना सही किस्म के चुनाव के बावजूद किसान उचित लाभ से वंचित रह जाते है।

मिट्टी परीक्षण द्वारा न केवल उर्वरक एवं खादों की सही मात्रा की आवश्यकता ज्ञात की जा सकती है। बल्कि सही उर्वरक के चुनाव, सही प्रयोग विधि व सही समय आदि अन्य पहलुओं का भी पता चलता है।

मिट्टी की जांच कब करायें

मिट्टी की जांच कराने के लिये सर्वोत्तम समय मई एवं जून का महीना उपयुक्त होता है इसके अलावा अक्टूबर व नवम्बर माह में भी मिट्टी परीक्षण कराया जा सकता है।

मिट्टी का नमूना लेने की विधि

मिट्टी की जॉच में सबसे अहम् प्रक्रिया उसका प्रतिनिधि नमूना लेना हैं। आप सब जानते है कि इस आधे किलोग्राम के एक नमूने को पूरे आधे हेक्टेयर या एक एकड़ के लगभग दस लाख किलोग्राम मिट्टी का प्रतिनिधित्व करना है। अतः यह कार्य व्यवस्थित एवं सावधानीपूर्वक होना चाहिए। जहॉ तक हो सके मिट्टी का नमूना खाली खेत से, फसल कटाई के बाद ही लेना चाहिए। यदि खड़ी फसल वाले खेत से नमूना लेना हो तो

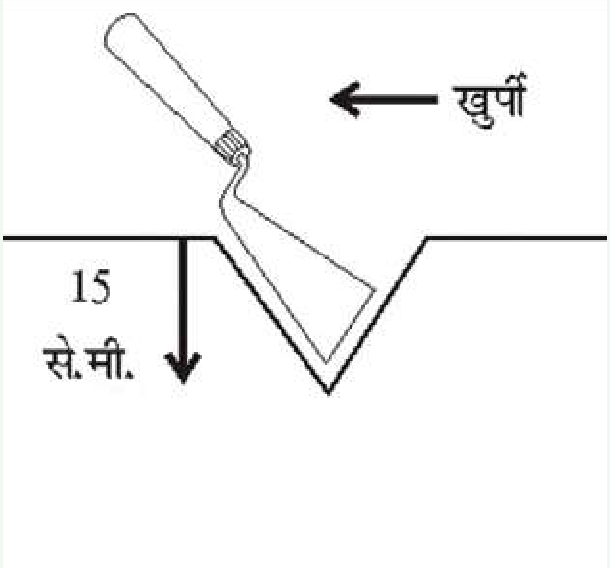

कतारों के बीच से नमूना लें। नमूना लेने के लिए हमें ऐसे यंत्र का चुनाव करना चाहिए जिसके द्वारा सभी स्थानों व गहराइयों से समान मात्रा में मिट्टी ली जा सकें। ज्यादातर खुरपी या कुदाल का प्रयोग किया जाता हैं। प्रत्येक नमूना लेने के पूर्व, चयनित यंत्र, बरमा, खुरपी या कुदाल को अच्छी तरह साफ कर लें। किसी खेत की मिट्टी का प्रतिनिधि नमूना प्राप्त करने के लिए पूरे फार्म को खेत की मिट्टी की बनावट, रंग और उत्पादकता के आधार पर बाँट लेना चाहिए। जिस खेत या फार्म का एक समान भाग का नमूना लेना हो उसके 10–15 स्थानों पर निशान लगा लें। नमूना लेने के लिए निशानदेह प्रत्येक स्थान की ऊपरी सतह से घास– फूंस, कंकड–पत्थर, कूड़ा आदि साफ कर लें। निर्धारित स्थान पर खुरपी से अंग्रजी के "**वी**" (ट) आकार का 15 सें.मी. (6 इंच) गहरा गड्ढा खोदे।

गड्ढे से फालतू मिट्टी निकाल कर खुरपी की सहायता से उसकी दीवार से लगभग एक अंगुली मोटी (लगभग 2 सें.मी.) मिट्टी की परत निकाल लें। इस मिट्टी को एक साफ सूखे हुए तसले, ट्रे, किसी साफ कपड़े या बोरी पर रख दें। इस प्रकार अन्य निर्धारित स्थानों के गड्ढ़ों से भी मिट्टी लें।

सभी 10–15 स्थानों से ली गई मिट्टी को एक जगह इक्कठा कर के आपस में अच्छी तरह से मिला लें। इसमें से घास, पौधों की जड़ें, कंकड़–पत्थर आदि निकाल दें। तत्पश्चात् नमूने में उपस्थित बड़े ढ़ेलों को लकड़ी के बेलन की सहायता से बारीक पीस दें, तथा नमूने की पूरी मात्रा को 2 मिलीमीटर छेदों वाली छलनी से छान लें। साफ मिट्टी को तसले या कपड़े आदि पर मोटी तह में फैला दें। इस मिट्टी को चार बराबर भागों में क्रास या जोड़

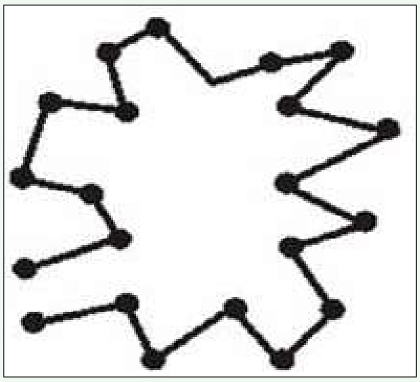

का निशान बनाते हुए बाँट लें। इनमें से आमने सामने की दो भागों की मिट्टी रखकर शेष दो भागों को फेक दें। रखे हुए दो भागों की मिट्टी को अच्छी तरह मिला लें और पूर्ववत् फैला कर चार भागों में बाँट लें। पहले की तरह दो भाग की मिट्टी रखकर शेष दो भाग को फेंक दें। यह क्रिया तब तक जारी रखें जब तक मिट्टी का कुल नमूना लगभग 500 ग्राम न रह जायें। वास्तव में इस तरह इक्कठा किया गया मिट्टी का नमूना ही प्रतिनिधि नमूना कहलाता है।

उपकरण एवं सामग्री

(1) बाल्टी (2) बरमा, (टयूब) (3) खुरपी (4) फावड़ा (5) पटरी (6) टैग टीन या मोटे कागज का टुकड़ा (7) कपड़े या पालीथीन की थैली 93 सेमी0 × 25 सेमी0 लेबल के सामने (8) बेलन (9) छलनी (2 मिमी0)

मिट्टी नमूने के साथ भेजी जाने वाली सूचनायें

- कृषक का नाम व पूरा पता
- नमूना एकत्र किये गये खेत का नाम/खसरा नं. दिनांक
- नमूना लेने की गहराई
- बोई गई पिछली फसल का ब्यौरा
- भविष्य में बोई जाने वाली फसलों के नाम
- सिंचाई के साधन
- अन्य समस्या यदि कोई हो

मिट्टी नमूना लेते समय ध्यान देने योग्य बातें

- नमूना लेते समय खेत के ढाल तथा मिटटी के रंग व गठन, फसल प्रबंध, फसल चक्र आदि पर सावधानी पूर्वक ध्यान देना चाहिए व जितने क्षेत्रफल में समानता हो, संयुक्त नमूना वहीं से लेना चाहिए।
- खेत में गीली मिट्टी, अधिक ऊंची नीची जगह एवं खड़ी फसल से नमूना नहीं लेना चाहिए।
- खाद के गडढे, मेंढ़ तथा वृक्षों के नीचे से, रोड के पास, कीचड के गड्ढ़े, सिंचाई की नाली और खेत की बाउंड्री के पास वाली जगह या कहीं पर सख्त परत से नमूना एकत्र नहीं करना चाहिए।
- तैयार नमूना कभी खुला नहीं छोडना चाहिए।
- मृदा नमूना खेत के उस स्थान से नहीं लेना चाहिए जहां पर उर्वरकों का बोरा रखा गया हो क्योंकि

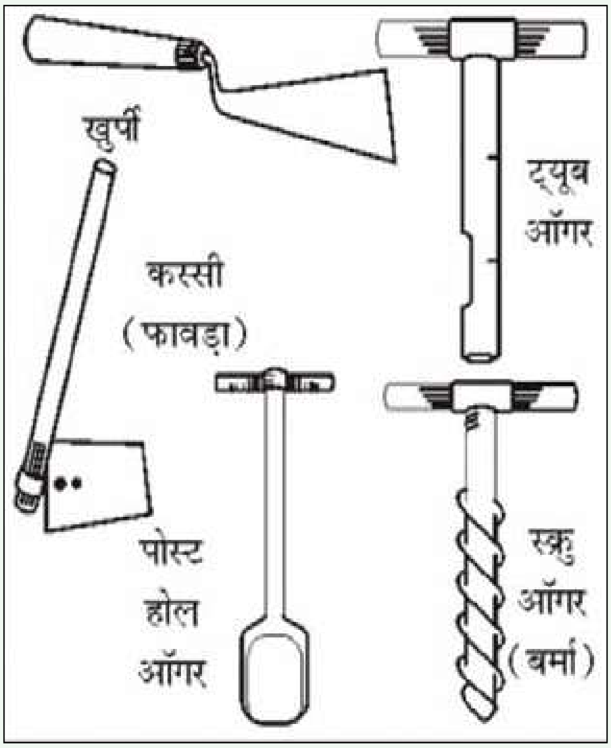

वहां पर उर्वरक का कुछ न कुछ भाग जरूर गिर जाता है।

- मृदा नमूनों को उर्वरकों के बोरो के पास व ऊपर नहीं रखना चाहिए।
- अगर किसी खेत की मृदा परीक्षण पहले किसी प्रयोग शाखा में हो चुका है तो उसका विवरण भी देना आवश्यक है।
- नमूना जिस गहराई से लिया जाय, वह नमूने के पैकेट पर अंकित होना चाहिए।
- फसल के बुवाई के लगभग एक से डेढ़ माह पूर्व ही मिट्टी नमूने परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए।

मृदा उर्वरता में कमी के कारण–

- मृदा में लगातार खेती होने एवं पर्याप्त खाद उर्वरकों का प्रयोग न किया जाना।
- मृदा में जैवांश जैविक कार्बन का लगातार घटता स्तर।
- प्रयोग किये जा रहे उर्वरकों के उपयोग क्षमता का कम होना
- मृदा क्षरण से पोषक तत्वों का धीरे–धीरे ह्रास।
- उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग।
- देश के विभिन्न भाग में उर्वरकों के प्रयोग में असमानता।
- सघन खेती का प्रचलन, जिससे एक साथ कई पोषक तत्वों की कमी होना।
- मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग न होना।

उर्वरता बनाये रखने के लिये सुझाव–

- उर्वरकों का प्रयोग हमेशा मृदा परीक्षण के आधार पर एवं फसल विशेष की संस्तुति के अनुसार ही करें।
- उर्वरक प्रबन्धन एक फसल में न करके पूरे फसल चक्र में अपनाएं।
- फसल चक्र में हरी खाद, फसलों के अवशेष तथा दलहनी फसलों का समावेश अवश्य करें।
- दलहनी फसलों में जैविक उर्वरकों का प्रयोग अवश्य करें।
- फसल चक्र में फसलों का चुनाव इस प्रकार करें कि प्रथम फसल से बचे हुये पोषक तत्वों का सही उपयोग हो सके एवं मृदा से पोषक तत्वों का सही अवशोषण हो सके।
- उर्वरकों का प्रयोग हमेशा संतुलित रूप में करें जिससे उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्धि हो सकें।
- सघन खेती में समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन अपनाएं जिसमें उर्वरकों के साथ गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेषों एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है।
- नत्रजन उर्वरकों का प्रयोग कई बार में करें। फास्फोरस का प्रयोग रबी वाली फसलों में करें। फसल चक्र के साथ उर्वरक चक्र भी अपनाये जिससे सही उर्वरक उपयोग क्षमता आ सकें।
- उर्वरकों का प्रयोग सही समय, सही विधि एवं सही साधन से करें।

अतः सक्षिप्त में हम यहां कह सकते है कि मृदा की उर्वरता हमारी सबसे महत्वपूर्ण पूंजी है। अगर स्वस्थ मृदा, होगी तो हम अधिक अन्न उपजा सकेंगे और बढ़ती जनसंख्या तथा घटते हुये खाद्य उत्पादन के बीच सन्तुलन स्थापित कर सकेंगे।

मिट्‌टी परीक्षण

मिट्‌टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा परीक्षण के बाद, रिपोर्ट तैयार करके, उनकी व्याख्या एवं उपयोग निम्न प्रकार करें। मिट्‌टी परीक्षण के आंकडों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके विशेष सिफारिशें की जा सकती हैं जिससे मिट्‌टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाकर उससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

विद्युत चालकता की व्याख्या

विद्युत चालकता	1.0 से कम	1.0–2.0	2.0 से अधिक
व्याख्या	सामान्य मिट्टी, किसी भी फसल के लिए उपयुक्त।	सीमांत लवणीणता है, फसलों के बीज अंकुरण के लिए हानिकारक हो सकते हैं।	अत्यधिक लवणीय है, फसलों के लिए हानिकारक हो सकते हैं।
सिफारिशें	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है।	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता हो सकती है (हल्की मिट्टी में वांछनीय)।	भारी मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की जरूरत है। विशेष रूप से जब संवेदनशील व अर्ध–लवण – सहनशील फसलें उगानी हों।

मिट्टी अभिक्रिया की व्याख्या

अभिक्रिया	6.0 से कम	6.0–8.5	8.6–9.0	9.0 से अधिक
व्याख्या	अम्लीय मिट्टी है, कुछ फसलों के लिए अनुपयुक्त हो सकती है	सभी फसलों के लिए उपयुक्त है।	क्षारीय है, कुछ फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है।	अत्यधिक क्षारीय हैं, फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है।
सिफारिशें	चूना व कार्बनिक खादों से सुधार की आवश्यकता होगी।	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता होगी। हल्की मिट्टी में वांछनीय। इसके लिए जिप्सम व कार्बनिक खादों के उपयोग की आवश्यकता है।	मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की आवश्यकता होगी। जिसके लिए जिप्सम, हरी खाद व कार्बनिक खादों का उपयोग किया जाना चाहिए।

मिट्टी उर्वरा (प्राथमिक तत्वों) की व्याख्या

मिट्टी उर्वरा	जैविक कार्बन प्रतिशत	उपलब्ध पोषक तत्व (कि.ग्रा./है.)			व्याख्या
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	
निम्न	0.50 से कम	280 से कम	11 से कम	120 से कम	पोषक तत्वों की कमी
मध्यम	0.5–0.75	280–560	11–25	120–280	पोषक तत्व सामान्य है
उच्च	0.75 से अधिक	60 से अधिक	25 से अधिक	280 से कम	पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक है

गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्तर नीचे दिए गए मापदंडों से कम होने पर संबंधित उर्वरक के प्रयोग की आवश्यकता है।

पोषक तत्व	मिट्टी में कमी के स्तर (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)
गंधक	10
लौह	4.5
मैग्नीज	2.0
जस्ता	0.6
बोरोन	0.5
कॉपर	0.2
मॉलीब्डेनम	0.1

मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की क्रान्तिक सीमा के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वधारी उर्वरकों की संस्तुतिः

फसल उत्पादन में सूक्ष्म तत्वों लोहा, मैग्नीज, जस्ता, तांबा, वोरोन एवं मेलिब्डेनम का उतना ही महत्व होता है जितना कि नाईट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश का होता है। इसलिए सूक्ष्म तत्वों की कमी फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। हालांकि फसल उत्पादन में इन तत्वों की आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है इसी वजह से इनको सूक्ष्म तत्व कहा जाता है। इनकी अधिक मात्रा अगर पहले से मिट्टी में उपलब्ध हो या उर्वरकों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाए तो फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता हैं। अतः इनके प्रयोग में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इनका प्रयोग तभी करना चाहिए जब मिट्टी में इनकी कमी हो और कमी व अधिकता का पता मिट्टी परीक्षण से ही चल पाता है। इस संदर्भ में प्रयोगों द्वारा फसल उत्पादन के लिए विभिन्न सूक्ष्म तत्वों की मिट्टी में उपलब्ध क्रान्तिक सीमा ज्ञात कर ली गई है। यदि सूक्ष्म तत्वों की मात्रा क्रान्तिक सीमा से कम हो तो इनके उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए उर्वरकों की संस्तुत मात्रा सारणी में दी गई है।

सारणीः मिट्टी में उपलब्ध सूक्ष्म तत्वों की क्रान्तिक सीमा एवं सूक्ष्म पोषक तत्वधारी उर्वरकों की संस्तुत मात्रा

सूक्ष्म तत्व	उपलब्धता की क्रान्तिक सीमा (पी.पी.एम.)	सूक्ष्म तत्वों के उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्राम./हेक्टेयर) व नाम	पर्णीय छिड़काव (ग्राम/100 लीटर पानी)
लोहा	4.5	50 फेरस सल्फेट	300
मैगनीज	1.0	25 मैगनीज सल्फेट	200
जस्ता	0.6	25 जिंक सल्फेट	200
तांबा	0.2	25 कापर सल्फेट	200
बोरोन	0.5	2 सोडियम वोरॉट	100
मेलिब्डेनम	0.1	2 अमोनियम मेलिब्डेनम	100

सॉयल हैल्थ कार्ड व इसका महत्त्व

सॉयल हैल्थ कार्ड बनाने के लिए किसान के व्यक्तिगत फार्म से खसरा नम्बर व भू–स्थिति के अनुसार मिट्टी के नमूनों को एकत्रित किया जाता हैं। फिर इन नमूनों का केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रो में स्थापित मिट्टी जॉच प्रयोगशालाओ में परीक्षण किया जाता है तथा विशेषज्ञों द्वारा मिटटी में उपलब्ध प्राथमिक पोषक तत्वों (नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश), द्वितीय पोषक तत्व (सल्फर) व सूक्ष्म पोषक तत्वों (जिंक, बोरोन, आयरन, मैग्नीज, एवं कॉपर आदि) की ताकत एवं कमजोरी का विलेशण कर परिणामों का सुझाव सॉयल हैल्थ कार्ड पर दर्शाया जाता हैं। इस कार्ड पर उपलब्ध सुझाव/जानकारी के आधार पर किसान द्वारा कम लागत

में अपनी फसलों से अधिक उत्पादन के लिए अपेक्षित विभिन्न पोषक तत्वों और उर्वरकों का फसल वार विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सकता है तथा अपने खेत की मिटटी की स्थिति को आसानी से पहचाना जा सकता है। किसान मिटटी एवं फसल की समुचित जानकारी के अभाव के कारण फसलों में उर्वरकों तथा प्राथमिक पोषक तत्वों का अनुचित तरीके से प्रयोग कर रहें है व सूक्ष्म पोषक तत्वों की अनदेखी की जा रही है। जिस कारण से मिटटी की उर्वरा शक्ति व उत्पादन की गुणवत्ता में गिरावट के साथ–साथ पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड रहा हैं। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञों द्वारा किसानों को यह भी सलाह दी जाती है कि फसलों में कार्बनिक (कम्पोस्ट व गोबर की खाद) व जैविक खादों के प्रयोग को बढ़ाने के साथ–साथ संरक्षित खेती तथा फसल विविधिकरण को भी अपनाने पर जोर देना चाहिए। जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बनी रहती हैं। यह वास्तविक हैं कि कृषि उत्पादन के लिए मृदा एक महत्तवपूर्ण घटक है इसकी गुणवत्ता में सुधार करके ही फसलों से अधिक उत्पादन लिया जा सकता हैं। जिससे किसानों की आमदनी को बढाया जा सकता है। यह स्कीम किसानों की प्रति इकाई अपनी उत्पादकता बढाने, मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखना व बेहतर आय सुनिश्चित कराने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करती है।

सॉयल हैल्थ कार्ड का नमूना

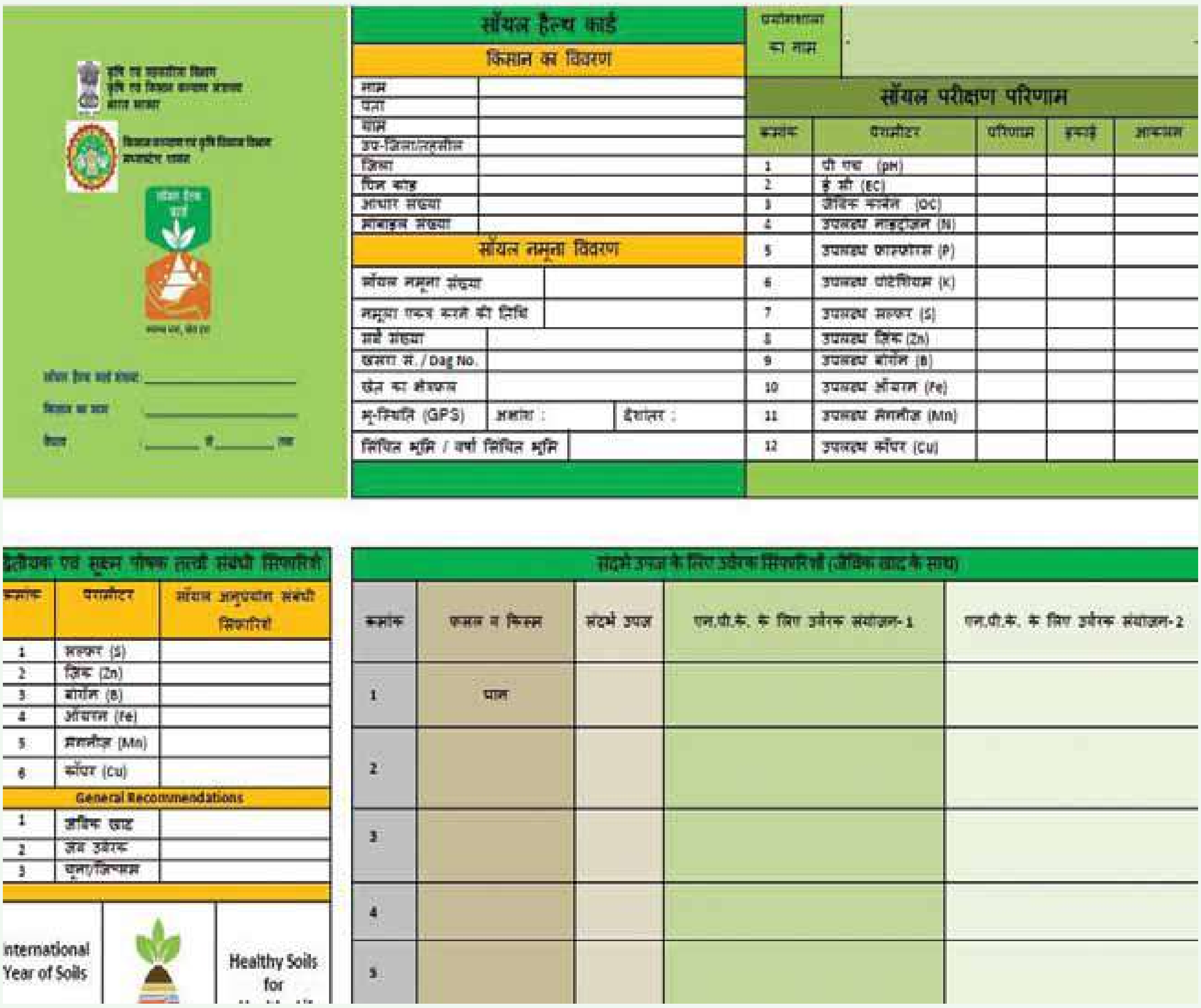

अनिता मीणा मुकेश कुमार जाटव, रूपचन्द एवं बी. डी. शर्मा

भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

किसानों का संबल : कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्–के.शु.बा. संस्थान संचालित कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल, वेजलपुर गाँव में किसानों के लिए 'प्रकाश स्तम्भ' के रुप में स्थापित है। केन्द्र जिले के किसानों के "हर डगर का हमसफर" साबित हो रहा है। इस जनजाति बहुल जिले के किसानों को कृषि सम्बंधित नविन तकनीकियों से प्रत्यक्ष कराने में केन्द्र महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मृदा, सस्य, उद्यान, पौध संरक्षण, पशुपालन, महिला एवं युवा सशक्तिकरण आदि क्षेत्रों में केन्द्र सकारात्मक एवं सार्थक कार्य कर रहा है। पंचमहल जिले के किसान मुख्य रुप से मकई, अरहर, धान, इत्यादि की फसल उगाते हैं। उपरोक्त खाद्यान्न इनका मुख्य आहार है। केन्द्र ने सर्वप्रथम इन पारंपरिक फसलों पर ध्यान केन्द्रित किया। अधिकांशतः किसान विशेषतौर पर जनजाति वर्ग के किसान पुरानी अचिन्हित प्रजाति के बीजों की बुआई करते थे जिससे अच्छी उपज नहीं मिल पाती थी अतः केन्द्र द्वारा विभिन्न फसलों की नयी प्रजातियों के अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन करवाए गए जो तालिका–1 में दर्शाए गए हैं।

तालिका–1 प्रदर्शित प्रजातियाँ

फसल	प्रजातियाँ
मक्का	गुजरात मक्का–6, एच,क्यू.पी.एम.–1, गंगा सफेद–2, गुजरात मक्का–4
गेहूँ	लोक –1, जी.डब्ल्यू–496, जी.डब्ल्यू–366
धान	गुर्जरी, जी.आर–11, जी.आर–13
अरण्डी	जी.सी.एच.–7
तिल	गुजरात तिल.1,2,3
मूँगफली	जी.जी.–2, टी. जी. 37 अ
अरहर	बी.डी.एन.–2, वैशाली, ए.जी.टी.–2
मूँग	जी.एच.–4, जी.एच.–5, मेहा
सोयाबीन	जे.एस.–335
चना	जी.जी.–1, जी.जी. 2

प्रदर्शन में प्रजाति के साथ–साथ बीज दर एवं पौधों से पौधों की दूरी में सुधार, अनुशंसित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का उपयोग, बीज उपचार आदि की जानकारी दी गयी। इन जानकारियों को किसानों को बताने एवं कुशलतम् प्रयोग हेतु समय–समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं विविध प्रसार कार्यक्रम आयोजित किए गए।

वर्ष 2016 को "अंतर्राष्ट्रीय दाल वर्ष" के रुप में घोषित किए जाने के दौरान राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत दलहन के कुल 160 प्रदर्शन लगवाए गए। आदिवासी कल्याण योजना के अंतर्गत भी आदिवासी किसानों को अरहर एवं उड़द के प्रदर्शन लगवाए गए इन प्रयासों से लाभान्वित किसान दाल के लिए आत्मनिर्भर हुए एवं अच्छी आय भी प्राप्त कर रहे हैं। फसलों के अच्छे प्रदर्शन को दिखाने हेतु प्रक्षेत्र दिवस का आयोजन किया गया। अच्छी फसल एवं अच्छे उत्पादन को देखकर जिले के अन्य किसान भी नविन प्रजातियों एवं शस्य क्रियायों को अपनाया है, इससे किसानों के उत्पादन में काफी वृद्धि आंकी गयी है। कृषि विज्ञान केन्द्र के अंतर्गमन का प्रभाव उत्पादन के रुप में प्रदर्शित हुआ है। जो तालिका–2 में दर्शायी गयी है।

तालिका–2 केन्द्र द्वारा प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के माध्यम से किये गए अंतर्गमन का प्रभाव

फसल		अंतर्गमन से पूर्व उत्पादन (क्यू./हे.)	अंतर्गमन के पश्चात् उत्पादन (क्यू./हे.)	बढोत्तरी %
धान्य फसलें	मक्का	22.15	30.48	37.60
	गेहूँ	19.33	26.34	36.24
	धान	27.20	35.24	27.12

फसल		अंर्तगमन से पूर्व उत्पादन (क्यू. / हे.)	अंर्तगमन के पश्चात् उत्पादन (क्यू. / हे.)	बढोत्तरी %
दलहनी फसलें	अरहर	08.90	13.50	51.60
	चना	13.52	17.07	26.25
	मूँग	06.80	09.60	41.17
	सोयाबीन	10.10	13.60	34.60
तिलहनी फसलें	अरण्डी	21.17	30.92	42.00
	तिल	03.96	04.99	26.00
	मूँगफली	09.20	12.50	35.80

केन्द्र ने किसानों को अच्छी तरह समझाया है कि, 'स्वस्थ धरा–खेत हरा' किसानों के लिए मूल मंत्र है। अच्छे उत्पादन के लिए मृदा परिक्षण एवं उसके आधार पर उर्वरकों के उपयोग की जानकारी किसानों को दी गयी है। केंचूए की खाद, कृषि अवशेषों से कम्पोस्ट बनाने की विधि की जानकारी प्रशिक्षण के माध्यम से दिया गया है। किसान इन तकनीकियों का उपयोग कर रहे हैं। अजोला उत्पादन एवं खाद के रुप में उसके प्रयोग की जानकारी भी किसानों को दी गयी है। धान उगाने वाले किसानों ने अजोला के प्रयोग से लगभग 30% तक उर्वरक के खर्च को कम किया है जिससे उनके भूमि के स्वास्थ्य की रक्षा हो रही है।

टपक एवं फब्वारा विधि से सिंचाई के लिए भी किसानों को प्रेरित किया गया है। अरहर की फसल में अन्य वैज्ञानिक तकनीकियों के साथ टपक सिंचाई के प्रयोग से उत्पादन में 51.6 प्रतिशत तक की वृद्धि हुयी है।

बागवानी के क्षेत्र में केन्द्र किसानों का सतत पथ प्रशस्त कर रहा है। इस क्षेत्र के किसान बैंगन, मिर्च, लौकी, भिंडी, कुंदरु आदि की फसल लेते थे, प्रजातियाँ भी पुरानी एवं अचिन्हित लगाते थे, जनजाति किसान तो मात्र बरसात के मौसम में ही बेल वाली (लौकी वर्गीय) फसल लेते थे। कृषि विज्ञान केन्द्र ने इन सब्जियों की उन्नत प्रजातियों के प्रदर्शन किसानों के क्षेत्रों पर लगवाया। बरसात के अलावा अन्य मौसम में भी शाक–भाजी उत्पादन के लिए प्रेरित किया गया। शीत ऋतु में लगाए जाने वाले सब्जियों में गोभी के उत्पादन में किसानों को अग्रेसित किया गया। सम्प्रति पंचमहल के किसान शीत ऋतु में फूल गोभी की खेती सफलता पूर्वक कर रहे हैं और प्रति एकड़ 65000–80000 रू. का आय अर्जित कर रहे हैं। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा सब्जियों की प्रदर्शित प्रजातियाँ तालिका–3 में दर्शायी गयी है।

तालिका– 3 सब्जियों में केन्द्र द्वारा प्रदर्शित प्रजातियाँ

फसल	प्रदर्शित प्रजातियाँ
बैंगन	गुजरात संकर बैंगन.–1, डोली.–5, डी.बी.आर. टी.–1
मिर्च	पूसा सदाबहार, अर्का मेघना, श्री वंडर, गुजरात सब्जी मिर्च.–111,121,131
भिंडी	गुजरात भिंडी–1,5
टमाटर	गुजरात टमाटर.–2
लौकी	पूसा नवीन
गोभी	एन.एस.सी. 101, पूसा केतकी संकर
चौली	अर्का मंगला, पूसा कोमल, पूसा सुकोमल, काशी कंचन, काशी उन्नति, रसीली
तुरई	थार करनी
ग्वार	गोमा मंजरी

कृषक महिलाओं को वर्ष भर गृह वाटिका लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। समय–समय पर शाक–सब्जियों के बीज भी दिए गए। साथ ही गृह वाटिका लगाने का प्रशिक्षण भी दिया गया। यह कदम पोषण सुरक्षा में मददगार साबित हो रहा है एवं आय का साधन भी साबित हुआ है।

फलों के उत्पादन में केन्द्र के अंर्तगमन से काफी लाभ हुआ है। अधिकांशतः किसान आम के वृक्ष खेतों की मेड़ पर लगाते थे, प्रजाति का भी कोई विशेष ध्यान नहीं रखा जाता था। केन्द्र ने किसानों को आम के पौध लगाने के लिए प्रेरित किया, इसके लिए प्रशिक्षण, किसान गोष्ठी, वैज्ञानिक – कृषक चर्चा, प्रदर्शनी आदि आयोजित कर किसानों को समझाया गया। परिणामस्वरुप काफी

किसानों ने आम के केसर, राजापुरी, मल्लिका आदि प्रजाति के बाग लगाए हैं एवं प्रक्रिया सतत् जारी है। जिन किसानों के पास कम भूमि है उन्हें घर के आस–पास के जमीन एवं खेतों की मेड़ आदि पर आम के पौध लगाने के लिए प्रेरित किया गया। आम के अलावा जामून, इमली, बेर, खिरनी, मौसम्बी, अमरुद आदि के पौध भी लगवाए गए हैं। गुजरात राज्य सरकार से प्राप्त एक परियोजना एवं आदिवासी कल्याण योजना (टी.एस.पी.) के तहत जाम्बूघोड़ा एवं घोघम्बा तहसील के आदिवासी एवं गरीब किसानों को केले की खेती के लिए प्रेरित किया गया इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण, केले के पौध, उर्वरक, कीट व्याधिनाशक औषधि इत्यादि की मदद दी गयी। किसानों ने भी खूब मेहनत किया परिणाम स्वरुप प्रति एकड़ 85000–110000 का लाभ कमाया। परियोजना समाप्त होने के पश्चात् उस क्षेत्र के किसान अब केले की खेती निरंतर कर रहे हैं और अच्छा लाभ कमा रहे हैं। क्षेत्र के किसानों के आहार में फलों का समन्वय हुआ है, साथ ही इन फलों से उनके आय में भी वृद्धि हुयी है।

फलों सब्जियों का समय पर तुड़ाई, एवं वर्गीकरण की जानकारी भी किसानों को दी गयी जिससे उनके उत्पादों की अच्छी आय मिल रही है।

जनजाति क्षेत्रों में कृषि को बढ़ावा देने में पौध संरक्षण की प्रमुख भूमिका रही है। पौध संरक्षण ज्ञान को बढ़ाने और किसानों के कौशल में सुधार के लिए समेकित नाशीजीव प्रबंधन, बीज उपचार, कीटनाशकों का सुरक्षित उपयोग, वनस्पतिक कीटनाशकों का निर्माण उनका उपयोग, फेरोमोन ट्रैप, टी–पर्च का उपयोग, मधुमक्खी पालन आदि के प्रशिक्षण किसानों को दिये गये।

विभिन्न फसलों में जैसे ग्रीष्म एवं खरीफ मौसम में भिण्डी का पीला मोजेक रोग का समेकित प्रबंधन, बैंगन में फल एवं तना बेधक कीट का, चना में फली वेधक कीट का, धान के मुख्य कीटों का, कपास के रस चूसक कीटों से फसल के बचाव के लिए समन्वित कीट–व्याधि नियंत्रण कार्यक्रम का संचालन किया गया है जिससे किसानों के फसलों में कीट–व्याधि से होने वाले नुकसान में 22–28% तक कमी आयी है। किसानों को जैविक कीट नियंत्रक साधनों की ओर आकर्षित किया गया है। फसलों में त्रिलिंग लोभी फंदों (फेरोमोन ट्रैप) से कीटों के प्रभाव को आंकने के पश्चात् उचित दवाओं का प्रयोग करना सिखाया गया है अन्यथा किसान कीटों से होनेवाले हानि के डर से आवश्यकता न होने पर भी अत्यधिक विषैली रसायनों का प्रयोग करते थे।

जैविक कीट व्याधि नियंत्रक औषधियाँ बनाने का प्रशिक्षण इत्यादि भी दिया गया है। प्रशिक्षित किसान निबौली, गो मूत्र, नीम, सीताफल, आक, आदि की पत्तियों से औषधियाँ तैयार कर खेतों में प्रयोग कर रहे हैं, इससे किसानों के खर्च में कमी आयी है, वहीं पर्यावरण को भी लाभ मिल रहा है। किसानों को मधुमक्खी पालन के लिये प्रेरित किया जा रहा है।

कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा जन जाति क्षेत्र के किसानों का सर्वेक्षण किया गया। उनकी वर्तमान आर्थिक स्थिति, पशुपालन की जानकारी, उनका रखरखाव, उत्पादकता तथा कमियों का अवलोकन किया गया। पशुओं के उचित प्रबंधन से सम्बंधित जानकारी देने के लिए विभिन्न गाँवो में प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा पशु स्वास्थ्य कैम्पों का आयोजन किया गया। क्षेत्र के किसानों को वैज्ञानिक विधि से पशुपालन करने तथा पशु स्वास्थ्य के बारे में जानकारी दी गई। पशुओं को समय–समय पर कृमिनाशक दवा दिलाई गयी, टीकाकरण किया गया जिससे क्षेत्र के पशुओं में रोग एवं मृत्यदर कम हुई तथा पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि हुई है। गाय व भैंस पालन के क्षेत्र में किसानों को उन्नत तकनीक के बारे में जानकारी दी गई। प्रथम पंक्ति प्रदर्शन व खेत पर परिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत किसानों को केन्द्र द्वारा निर्मित पशु चॉकलेट तथा खनिज लवण प्रदान किये गये जिससे पशुओं के दुग्ध उत्पादन में 30–35: की वृद्धि पाई गई तथा प्रजनन हीनता में सुधार हुआ है।

बकरी पालन को क्षेत्र के किसानों द्वारा मुख्य व्यवसाय के रुप में अपनाया जाता है लेकिन वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव एवं कम उत्पादक बकरियों के पालन से उनको लाभ कम मिलता था। ''बकरी पालन द्वारा किसानों का आर्थिक उन्नयन'' नामक परियोजना के तहत किसानों को बकरी पालन की उन्नत तकनीकियों की जानकारी प्रदान की गयी तथा सिरोही नस्ल की बकरियों की 10 बकरी एवं 1 बकरे की 10 ईकाई (210 बकरी एवम 21 बकरे) प्रदान किये गये जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुयी है। क्षेत्र के अन्य बकरियों के नस्ल सुधार भी हुआ हैं।

बकरी पालन के बाद मुर्गीपालन जनजाति किसानों द्वारा अपनाया जाने वाला एक प्रमुख व्यवसाय है। क्षेत्र में पाली जानेवाली मुर्गियों का वार्षिक अण्डा उत्पादन मात्र 30–40 ही है तथा उनका शारीरिक वजन औसतन 1.25 से 1.50 कि.ग्रा तक होता है। इसको ध्यान में रखते हुए केन्द्र द्वारा प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के तहत किसानों को 'निर्भिक' तथा 'प्रताप धन' नामक प्रजाति की मुर्गियों का वितरण किया गया जिसके कारण वार्षिक अण्डा उत्पादन

160 तक तथा वजन 2.5–3 किलो ग्राम तक प्राप्त हो रहा है फलस्वरुप, किसानों की आमदनी में चार गुणा तक वृद्धि हुयी है।

चारा उत्पादन के क्षेत्र में पशुपालकों को वैज्ञानिक पद्धति की जानकारी दी गयी। प्रथम पंक्ति प्रदर्शन के अंर्तगत् रिजका, नैपियर, ज्वार, मक्का आदि के बीज वितरित किये गये जिससे किसानों में चारा उत्पादन के प्रति रुचि बढी तथा वर्ष भर चारे की उपलब्धता के कारण पशुओं के दुग्ध उत्पादन में वृद्धि हुयी है।

किसानों तक कृषि सम्बंधी नवीन जानकारी पहुँचाने के लिए आवश्यक प्रसार गतिविधियों की मदद ली जाती है जिनमें चलचित्र प्रदर्शन, किसान मेला, किसान गोष्ठी, लेखन सामग्री, मोबाईल फोन द्वारा संदेशों का आदान प्रदान आदि मुख्य है। किसानों को समय–समय पर कृषि भ्रमण के लिए ले जाया जाता है जिससे वे कृषि क्षेत्र में आए नई तकनीकियों को देख सकें। रेडियो वार्ता, दूरदर्शन कार्यक्रमों आदि से सम्पूर्ण क्षेत्र के किसानों में नवीन जानकारी का संचार किया जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र पंचमहल के इन प्रयासों से क्षेत्र के किसान जागरुक, और प्रेरित हुए हैं। नयी तकनीकियों की जानकारी मिलने से उनके आत्मविश्वास में प्रखरता आयी है। जिसका प्रभाव उनके कृषि एवं पशु उत्पादकता में साफ दृष्टिगोचर हो रहा है।

हम बड़े गर्व से कह सकते हैं कि,

कृषि समस्या निपटाने में,

पोषण सुरक्षा लाने में

किसानों का बना संबल,

कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल !

कनकलता, जयपाल सिंह, बलबीर सिंह खद्दा, ए. के. रॉय, राज कुमार, शक्ति खजूरिया
कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल, वेजलपुर
(गोधरा–गुजरात)

"अगर आज हिन्दी राजभाषा मान ली गयी तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि, इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण सारे देश की भाषा है !"

–नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

गंगेरन (ग्रेविआ टेनाक्स) शुष्क मरुस्थल की बहुउपयोगी झाड़ी

बहुउद्देशीय पादप वंशो में ग्रेविआ वंश जो कि टिलिएसी कुल का सदस्य है की एक प्रमुख भूमिका है। ग्रेविआ की प्रजातियाँ फल, पशुचारा, रेशे, औषधी, जलावनी लकड़ी का स्रोत है। जैसे कि भीमल (ग्रीविया आपटिवा) शिवालिक हिमालय क्षेत्र का प्रमुख लघु वृक्ष है जो कि ग्रामीण जनों की विभिन्न दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करता है। इसी तरह से मध्य भारत व उत्तर प्रदेश में इसकी दूसरी महत्वपूर्ण वन्य प्रजातियां जैसेकि जंगली फालसा (ग्रीविआ फलेवीसेंस), गुरसकरी (ग्रीविया हिरसुटा) आदि हैं। इसी प्रकार से गंगेरन (ग्रीविया टेनाक्स) शुष्क उष्ण मरुस्थल की एक बहुउपयोगी महत्वपूर्ण झाड़ी है। प्रायः यह जंगली दशा में ही पायी जाती है, लेकिन इसको खेतों की जैविक बाड़ में भी लगाते हैं। इसे गंगेटी, गनगन, कंकेरन, चबेनी आदि स्थानीय नामो तथा संस्कृत में नागबाला के नाम से जाना जाता है।

गंगेरन (ग्रीविया टेनाक्स) अल्जीरया, वोटसवाना, इथोपिया, ईरान, केन्या, माली, मारटियाना, मोरोक्को, नामिबिया, नाइजिरिया, सऊदी अरब, सेनगेल, सोमालिया, दक्षिण अफ्रीका, सूडान, तंजानिया, उगांडा, जिम्बाबवे आदि में मिलती है। भारतवर्ष में मुख्यतः यह प्रजाति राजस्थान व गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में पाई जाती है। पश्चिमी राजस्थान में यह बाड़मेर, जोधपुर, जैसलमेर एवं बीकानेर जिलों में मिलती है। यह झाड़ी प्रायः पहाड़ियों के ढाल, बंजर पथरीली भूमि तथा खेतों की मेड़ों पर मिलती है। यह शुष्क क्षेत्र में रेतीली, चट्टानी व लैटेराइट मृदाओं में सामान्यता मिलती है लेकिन यह गहरी रेतीली दुमट मृदा में अच्छी वृद्धि करती है।

वानस्पतिक विवरण एवम् अनुकूलनशीलता

गंगेरन शीतकालीन, पर्णपाती, उर्ध्व, बहुशाखीय, लगभग 1 से 3 मीटर की ऊंचाई वाली झाड़ी है। इसकी शाखाएं रोमिल होती है जो पहले हरे रंग की और बाद में राख के रंग जैसी हो जाती हैं। इसकी पत्तियां विभिन्न आकार प्रकार की 2.0 से 6.0 से.मी. लम्बी, 1.0 से 4.0 से.मी. चौड़ी, अण्डाकार, हृदयाकार, अण्डाकार–आयताकार होती हैं, इनके किनारे के दांते गोल होते हैं अर्थात् कुठदन्ती होते है। पत्ती की ऊपरी सतह अरोमिल व निचली सतह रोयेंदार होती है। पुष्प सफेद, 1.0 से 2.0 से.मी. लम्बे वृंतक पर लगे होते हैं। फल 1.0 से 1.5 से. मी. व्यास के चमकदार, अरोमिल व नारंगी रंग के होते हैं, जिसमें 1–4 तक गुठलियां होती है। इसमें नवम्बर से ही पत्तियां झड़ना शुरू हो जाती हैं। सूखे की स्थिति में इससे पहले भी पत्तियां झड़ जाती है। जनवरी से जून तक यह झाड़ी पत्ती रहित रहती है। मानसून के आगमन के साथ ही इसमें नई पत्तियां आना प्रारम्भ हो जाती हैं।

यह शुष्क झाड़ी अत्यधिक तापमान एवं शुष्क दशा को सहन करने में सक्षम है क्योंकि इसकी जड़े बहुत ही गहरी होती है तथा जड़ तन्त्र काफी सुदृढ़ व इतना प्रभावी होता है कि यह पथरीली दरारों में भी प्रवेश कर वहां भी पनपती है। इस तरह यह झाड़ी रेतीली मृदाओं से लेकर चट्टानों तक कहीं भी अपने आपको सुस्थापित कर सकती है। जो कि वातीय व जलीय क्षरण को रोकता है। यह झाड़ी अपेक्षाकृत पारिस्थितिक रूप से पर्यावरणीय तनाव को सुगमता से सहन कर सकती है एवं पारिस्थितिक संतुलन को बनाने में सहायक है।

आर्थिक महत्व

खाद्य फलः शुष्क क्षेत्रों में यह प्रजाति अपने खाद्य फलों की महता से जानी जाती है (छायाचित्र 1)। गंगरेन का पका फल खट्टा मीठा होता है, ग्रामीण जन इसके फलों को बड़े चाव से खाते हैं। इसके फल पोषकतापूर्ण होते हैं, इनमें लोह व केल्सियम तत्व प्रचुर मात्रा में होते है। इनके फलों को गर्भवती महिलाओं तथा जिन बच्चों में खून की कमी होती, हेतु एक विशेष आहार के रूप में जाना जाता है। मरुस्थलीय पक्षी व वन्यजीव भी इसके फलों को चाव से खाते हैं।

चाराः गंगरेन मरुस्थलीय पशुओं विशेषकर बकरी व ऊटों के लिए एक अच्छा पल्लव चारा है। बकरिया इसे बहुत पसंद करती है। इससे पशुओं को पौष्टिक चारा मिलता है। इसकी पत्तियों का चारा अक्टूबर–नवम्बर माह में इकट्ठा करते हैं। एक झाड़ी से लगभग 250 ग्राम सूखा पत्ती चारा मिलता है। प्रायः रेंजभूमि में अधिक चराई दबाव के कारण इसके पौधों की पूर्ण वृद्धि नहीं हो पाती और छोटी झाड़ी का रूप ले लेती है। (छायाचित्र

छायाचित्र 1: गंगेरन फलन अवस्था

छायाचित्र 2: गंगेरन अधिक चराई दबाव को दर्शाते हुए

2) लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इससे पशुओ को चारा मिलता रहता है।

औषधीय गुण: गंगेरन एक परम्परागत औषधीय पादप है और विभिन्न बिमारियों/विकारों के निदान हेतु इसके विभिन्न भागों का उपयोग किया जाता है। इसको हड्डी जोड़ने, हड्डी को सुदृढ़ और उतकों को स्वस्थ करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसको आमाशय के गड़बड़ होने, चर्म संक्रमण, आंत संक्रमण, खांसी, ज्वर, अतिसार, पेचिस, पीलीया, गठिया आदि रोगों के निदान हेतु प्रयुक्त किया जाता है। स्थानीय जन गंगेरन की छाल, पत्ती, जड़ व फलों को औषधि के रूप में प्रयुक्त करते है। इसके काष्ठ का क्वाथ खांसी व बदनदर्द में देते है एवम फलों का उपयोग क्वाथ दमा, खांसी, और मूत्र संबंधी समस्याओं में करते हैं। पश्चिमी राजस्थान में इसकी जड़ के चूर्ण का उपयोग हड्डियों के जोड़ने में लाभप्रद माना गया है। इसकी पत्तियों का रस गुरदे की पथरी के निवारण हेतु उपयोग करते हैं। फलों का शीतल प्रभाव होने के कारण ग्रामीणजन गर्मियों में इनका उपयोग प्यास को शांत करने में करते हैं।

रेशा: स्थानीय लोग गंगेरन की शाखाओ का उपयोग, जो की लचीली होती है टोकरी बनाने में करते है। इससे रेशा भी निकालते है जो कि रस्सी आदि बनाने में काम में लेते हैं।

ईंधन: इसकी सूखी शाखाओं को ईंधन के रूप में उपयोग करते हैं और इनका अधिक उष्मांक मान होता है।

अन्य उपयोग: मक्खियों के मकरंद आहार हेतु इसे मधुमक्खी पालन में भी उपयोग किया जाता है। इसकी लकड़ी से छड़ी बनाई जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में इससे बनाई कलम को लिखने के लिए भी उपयोग किया जाता था।

प्रवर्धन

गंगेरन का प्राकृतिक प्रवर्धन पक्षियों द्वारा खाये गये फलों के बीजों से होता है। अनुकूल स्थिति मिलने पर इसके बीज अंकुरित हो जाते हैं जो समय के साथ–साथ विकसित होकर झाड़ी का रूप ले लेते हैं। इसका प्रवर्धन बीजों से नर्सरी में पौध तैयार करके करते हैं। इसके बीज का छिलका कठोर होता है। अतः बीजों को बोने से पहले 24 घण्टे पानी में भिगोते हैं, जिससे अंकुरण अच्छा होता है। बीजों को फरवरी–मार्च में 1–2 से.मी. गहराई पर बोते है। अंकुरण प्रतिशत कम होने के कारण एक थैली में 3 से 4 बीज बोते हैं।

संभावनाएं

गंगेरन एक अत्यधिक सूखा अवरोधी, साथ ही पाले को सहन करने वाली झाड़ी है। हालांकि इसकी वृद्धि शुष्क जलवायु में धीमी गति से होती है लेकिन यह इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रतिकूल स्थानों पर भी पनपती है, इसका प्रभावकारी जड़ तंत्र पत्थरों की चट्टानों की शुक्ष्म दरारों में अन्दर प्रवेश कर जाता है। यह गहरी रेतीली दुमट में अच्छी पनपती है, लेकिन यह बहुत ही कम गहरी (छिछली) पथरीली व चिकनी मिट्टी में भी हो सकती है। अतः शुष्क क्षरित भूमि के पुर्नवसन में गंगेरन की प्रमुख भूमिका हो सकती है। पत्तियो के लिटर से मृदा की भौतिक व रसायनिक गुणधर्मो में सुधार होता है।

गंगेरन के फलों व अन्य प्रायोज्य भागों की बाजार में मांग है। इस तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आदिवासी व ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी का सहारा है। इससे टोकरिया बनायी जाती है। सूडान में इसके फलों को जंगली औषधिय व सुगंधित प्रजाती के रूप में व्यापार हेतु पहचाना गया है।

सारांश

गंगरेन एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी मरुस्थलीय झाड़ी है। इसके रेंजभूमि में रोपण से पशुओं विशेषकर भेड, बकरी व ऊंटों के चारे हेतु उपलब्धता रहेगी। इसको पौधो को बाड़ में लगाया जा सकता है, जिससे किसानों को फल, ईंधन व इसके दूसरे उत्पादों से आमदनी हो सकती है। औषधि हेतु भी इसकी मांग है। अत्यधिक चराई दबाव, रेंजभूमि अतिक्रमण, गैरटिकाउ उपभोग और दूसरी विकास गतिविधियों के कारण आज इस प्रजाति को खतरा है। यह अत्यधिक पशुचराई दबाव सहन करने के बावजूद भी अच्छा पुनर्जनन होता है। किसान बहुधा खेतों में इसे संरक्षित करते हैं। इस महत्वपूर्ण झाड़ी की बहुआयामी उपयोगिता देखते हुए आवश्यक है कि इसके जो प्राकृतिक परिवेश थार मरुस्थल में बचे हैं उनका स्वस्थाने संरक्षण किया जाये। साथ ही इसके संवर्धन की आवश्यकता है। इसके लिए भू–उपयोग के विभिन्न वैकल्पिक पद्धतियों में इसका समावेश किया जा सकता है। यदि इसके उपलब्ध जननद्रव्यों में अच्छे गुणवत्ता वाले फलों के पौधों का चयन किया जाता है तो शुष्क उद्यागिकी में इनका उपयोग किया जा सकता है।

जे.पी. सिंह, वेन्कटेशन के., महाराज सिंह एवं दलीप सिंह

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,
प्रादेशिक अनुसंधान स्थात्र, जैसलमेर

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल !
बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल !!

–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

शुष्क बागवानी के विकास में प्रसार गतिविधियों का महत्व

भाकृअनुप केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में पायी जाने वाली बागवानी फसलों (फल एवं सब्जियां) के उत्पादन एवं गुणवत्ता पर आधारित उनकी उत्पादकता में वृद्धि करने की तकनीक विकसित कर किसानों को उपलब्ध करवाने के प्रमुख केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है। यह संस्थान बीकानेर में प्रमुख रूप से बेर, आंवला, खजूर, अनार, बेल आदि फलों तथा काचरी, केर, सांगरी, मतीरा, फूटककड़ी आदि सब्जियों एवं फल आधारित फसल प्रणाली पर कार्य कर रहा है, जबकि इसके क्षेत्रीय केन्द्र, गोधरा पर बेल, आंवला, बेर, अनार, चीकू, आम, फालसा, सीताफल आदि फल तथा भिण्डी, कद्दू, सहजन, ग्वारफली, मिर्च, बेंगन, टमाटर, चवला, सेमफली, इत्यादि सब्जियों पर कार्य हो रहा है।

इस संस्थान की देख–रेख एवं समन्वय में देश के विभिन्न राज्यो (राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु) के 18 विभिन्न केन्द्रों पर शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में शुष्क फलों के विकास के लिए अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र समन्वित अनुसंधान परियोजना के अन्तर्गत कार्य हो रहा है। यह संस्थान तथा इसके सभी केन्द्र किसानों को शुष्क बागवानी की उन्नत तकनीकियां, प्रशिक्षण, पौध एवं बीज सामग्री के साथ उच्च प्रोद्योगिक सूचनायें उपलब्ध कराता है।

संस्थान द्वारा किसानों को उपलब्ध कराई जाने वाली शुष्क बागवानी की उन्नत तकनीकियां, तकनीक हस्तान्तरण एवं प्रसार–प्रचार कार्यक्रम संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है :–

शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए शुष्क बागवानी की उन्नत तकनीकियां उपलब्ध कराना

(अ) फल वृक्षों की उन्नत किस्में: संस्थान ने शुष्क क्षेत्रों के वातावरण तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, किसानों के लिए फलवृक्षों की कई उन्नत किस्में विकसित की हैं जिन्हें अपनाकर कम लागत में अधिक लाभ कमाया जा सकता है। ये किस्में शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के कठिन वातावरण में सरलता से उगाई जा सकती है और उच्च कोटि के फलों के साथ–साथ अधिक उत्पादन व अधिक लाभ कमाया जा सकता है। इनके अलावा संस्थान ने अपने अनुसंधान एवं परिक्षण कार्यो के आधार पर शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए बेर, आंवला, अनार, बेलपत्र, खजूर आदि विभिन्न फलवृक्षों की उन्नत किस्मों को उगाने की संस्तुति की हैं। इनके अतिरिक्त लसोड़ा, फालसा, शहतूत, कुछ नीबू वर्गीय फसलों के उत्तम गुणवाले जननदव्य विकसित किये हैं जो आने वाले समय में किसानों के लिए वरदान साबित होंगे।

(ब) सब्जियों की उन्नत किस्में: शुष्क तथा अर्द्ध –शुष्क क्षेत्रों में सब्जी उत्पादन को बढ़ावा देने तथा इन क्षेत्रों के किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से इस संस्थान द्वारा मतीरा, काकड़िया, काचरी, सलाद ककड़ी, खेजड़ी–सांगरी, ग्वार फली, लौकी, तोरई और कद्दू आदि विभिन्न सब्जियों की 12 किस्में तो विकसित की जा चुकी हैं और लगभग इतनी संख्या में उन्नत किस्में विकास के अन्तिम चरणों से गुजर रही हैं। विकसित किस्में शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिए वरदान सिद्ध हो रही हैं और इनके उन्नत बीज की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं।

इनके अलावा टिण्डा, ग्वारफली, सेम, बेंगन, मिर्च आदि की कई किस्में परिक्षण के अन्तिम दौर में चल रही हैं। नई किस्मों के विकास के अलावा संस्थान विभिन्न सब्जियों की प्रचलित किस्मों का पुनः परिक्षण करके शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिए संस्तुति करता है और प्रचलित सब्जियों की उचित किस्म को चुनकर उसकी खेती करने में तकनीक सहायता एवं सुझाव प्रदान करता है।

(स) पौध प्रवर्धन की उन्नत तकनीक: संस्थान ने गर्म–शुष्क कठिन वातावरण के अनुरूप सुविधाजनक, विशेषकर फलवृक्षों के पौध प्रवर्धन तथा पौधशाला प्रबन्धन की तकनीकिया विकसित की है जो किसानों तक पहुँचाई जा रही है। इनमें वानस्पतिक विधि, कलिकायन, ग्राफ्टिंग, गूटी, कलम तथा ऊतक संवर्धन विधियाँ प्रमुख है। उदाहरण के लिए बेर, आंवला, बेलपत्र, खेजड़ी, शहतूत,

लसोड़ा आदि के पौधे तैयार करने के लिए पेच, टी या आई कलिकायन विधियों को अपनाकर उन्नत पौधे तैयार करने की सलाह दी जाती है। इस तरह खजूर में अधोभूस्तारी या ऊतक संर्वधन विधि से पौधे तैयार करने की तकनीक विकसित की जा रही है जो शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिए खजूर उत्पादन में चमत्कारिक परिणाम देंगी। बेलपत्र, आंवला, खेजड़ी, केर, शहतूत तथा अनार में उच्च कोटि पौधे प्राप्त करने के लिए ऊतक संवर्धन एवं हरितगृह तकनीक विकसित की जा चुकी हैं एवं भविष्य में सृजनशील किसान, सरकारी एवं निजी संस्थाऐं व्यापारिक स्तर पर फलवृक्षों की कम समय व मेहनत से उन्नत किस्मों के पौधे कम समय व मेहनत में तैयार कर सकेंगे।

(द) संरक्षित बागवानी एवं हरितगृह तकनीकः इस संस्थान ने गर्म–शुष्क क्षेत्रों में शुष्क बागवानी को बढ़ावा देने तथा संरक्षित बागवानी से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार के हरितग्रह स्थापित किये हैं। विशेष प्रकार के हरितगृहों की सहायता से संरक्षित बागवानी एवं सब्जी उत्पादन की तकनीक विकसित की गयी है। इन हरितगृहों को शुष्क क्षेत्रों के गरीब किसानों की आवश्यकताओं, खर्चो तथा स्थान विशेष की समस्याओं को ध्यान में रखकर बनाया जा रहा है ताकि प्रत्येक किसान छोटे स्तर पर कम लागत में अच्छा हरितगृह बनाकर विपरीत परिस्थितियों में भी बागवानी फसल उगाकर अच्छा लाभ कमा सके। साधारण वानस्पतिक विधि से जहां फलवृक्षों के पौधों को तैयार करने में 6–12 महीने लग जाते हैं वहीं हरितगृह तकनीक को अपनाकर 1–2 महिने और किसी भी मौसम में मन चाहे उन्नत किस्म के पौधे तैयार किये जा सकते हैं। इस तकनीक को किसानों तक पंहुचाया जा रहा है।

(क) पौधशाला प्रबन्धन की उच्च तकनीकः संस्थान ने परिक्षण एवं अनुसंधान कार्यों के आधार पर पौधशाला प्रबन्धन एवं उसकी देख–रेख की उच्च तकनीक विकसित की है। उच्च तकनीक पौधशाला तकनीक पर संस्थान किसानों को समय–समय पर प्रशिक्षण देता है तथा उनका अवलोकन भी करवाता है। उच्च तकनीक पौधशालाओं में मौसम, तापक्रम, हवा, वर्षा, नमी आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन पौधशालाओं में कृत्रिम वातावरण बनाने की तकनीकिया विकसित की हैं जो पौधों पर बाह्यय वातावरण का कोई प्रभाव नहीं होता हैं और किसी भी मौसम में कोई भी पौधा तैयार किया जा सकता है। किसानों में यह तकनीकियां, धीरे–धीरे लोकप्रिय हो रही है जो शुष्क बागवानी विकास को बढाने में सहायक है। शुष्क क्षेत्र के किसान उच्च तकनीक पौधशाला की इन तकनीकियों को व्यावसायिक रूप में अपनाकर अच्छा धन लाभ कमाने के साथ–साथ शुष्क क्षेत्रों को बागवानी फसलों से हरा–भरा बनाने में काफी मदद कर सकता है।

(ख) मानक फसल प्रणालियों एवं सस्य क्रियाओं का विकास कर, किसानों को उपलब्ध कराना: संस्थान ने परिक्षण एवं शोध कार्यों के आधार पर शुष्क क्षेत्रों में फल व सब्जियों के सफल उत्पादन के लिए बहुत सी उन्नत सस्य क्रियाओं एवं शुष्क बागवानी आधारित फसल प्रणालियों के मानक प्रतिमान विकसित किये है जो शुष्क क्षेत्र के बागवानी करने वाले किसानों के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं। इनमें से प्रमुख उन्नत क्रियायें या प्रणालियाँ निम्न प्रकार से हैं:–

(अ) पौध रोपण एवं बीज बुवाई के मानक माप–दण्ड का विकास कर, किसानों को उपलब्ध कराना :

हम जानते हैं कि गर्म–शुष्क क्षेत्र जैसे पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी संसाधनों की कमी है अथवा इनकी उपलब्धता बहुत ही सीमित है। शुष्क क्षेत्रों में जहाँ पानी, भूमि की उर्वरा शक्ति, व अन्य संसाधन बहुत ही सीमित मात्रा में तथा वातावरण भी बहुत ही कठोर रहता है, वहाँ पर बागवानी फसल उगाकर लाभ अर्जित करना सरल कार्य नहीं है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए संस्थान ने उन्नत बागवानी फसल उत्पादन की मानक प्रणालियों एवं सस्य क्रियाओं का विकास किया हैं। फलवृक्षों का सही चयन, गड्ढे तैयार करने, सही समय व दूरी पर रोपण करने, आदि अन्य क्रियाओं के वैज्ञानिक माप–दण्ड (मानक) स्थापित किये जिन्हें अपनाकर शुष्क क्षेत्र के किसान अपने सीमित संसाधनों के साथ ही अच्छा लाभ कमा रहे है। सब्जी उत्पादन को बढावा देने के लिए संस्थान ने शुष्क क्षेत्र में सफलता से उगने वाली सब्जी की फसलों तथा उनकी किस्मों का चयन किया है और उनको उगाने की विभिन्न क्रियाओं के वैज्ञानिक मानक स्थापित किये हैं। इसके अलावा, विपरीत परिस्थितियों में फसल को होने वाले नुकसान से बचाने के लिए भी संस्थान समय–समय पर किसानों को सुझाव देता है और वैज्ञानिक तकनीकियों से अवगत करवाता है ताकि फसल को नष्ट होने से बचाया जा सके।

(आ) फसल पोषण प्रबन्धन की उन्नत तकनीकियाँ का विकास कर, किसानों को उपलब्ध कराना :

शुष्क क्षेत्रों की मृदा की उर्वरा शक्ति बहुत ही कमजोर है तथा कार्बनिक पदार्थो की मात्रा नगण्य होती

है। दूसरी ओर, अन्य फसलों की तुलना में, बागवानी फसलों को पोषक तत्वों की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः संस्थान नें शुष्क क्षेत्रों में उगाये जाने वाली सभी फल व सब्जियों की फसलों में उपयुक्त पोषण प्रबन्धन, खाद व उर्वरकों के उन्नत उपयोग के वैज्ञानिक मानक स्थापित किये जैसे खाद व उर्वरकों की प्रकृति एवं मात्रा, देने का समय एवं देने की विधि व माध्यम, भूमि में गहराई व दूरी आदि जिन्हें किसान अपने बागवानी फसल उत्पादन में अपनाकर, न केवल अपनी फसल के उत्पादन को बढ़ा रहे हैं बल्कि, अपने व्यय, श्रम, समय की बचत के साथ शुद्ध लाभ भी अधिक कमा रहे हैं और साथ ही साथ वातावरण पर उर्वरकों के कुप्रभावों को भी रोक रहे हैं।

(इ) शुष्क बागवानी में उन्नत जल प्रबन्धन की तकनीक विकसित कर किसानों को उपलब्ध कराना:

गर्म–शुष्क क्षेत्रों विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में पानी एक बहुमूल्य "हीरा" है। यहां पानी की मात्रा बहुत ही कम। ऐसी परिस्थितियों में बागवानी की फसलों को उगाना चुनौतिपूर्ण कार्य है। फिर भी, आज के विज्ञान एवं उन्नत तकनीकियों की सहायता से शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में बागवानी की फसलें लहराने लगी हैं। संस्थान ने कम पानी के उपयोग से बागवानी फसल उत्पादन की कई तकनीकियां विकसित की हैं। विभिन्न फसलों जैसे बेर, आंवला, अनार, बेलपत्र, लसोड़ा, शहतूत तथा कददूवर्गीय सब्जियों के अधिक उत्पादन तथा 60–70 प्रतिशत पानी को बचाने के लिए बूँद–बूँद सिंचाई के उन्नत प्रतिमान विकसित किये हैं जिनसे किसान बहुत लाभ उठा रहे हैं। संस्थान ने टेंक या डिग्गी आधारित फल व सब्जी उत्पादन की प्रणालियां भी विकसित की है जो शुष्क क्षेत्र के किसानों के लिए पानी, श्रम, ऊर्जा बचाने के साथ–साथ सतत उत्पादन के लिए वरदान सिद्ध हो रही हैं। इसके अलावा, संस्थान ने मृदा एवं मृदाजल संरक्षण के लिए भी कई उन्नत तकनीकियां विकसित की है जो जल की बचत के साथ–साथ भूमि का भी संरक्षण करने में सहायता करती हैं। इनमें प्रमुख है, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थो की पलवार, रसायनिक पदार्थो का उपयोग, हवा अवरोधक यन्त्र आदि।

(ई) बागवानी फसलों के संरक्षण की तकनीक का विकास कर किसानों को उपलब्ध कराना:

गर्म–शुष्क क्षेत्रों में फसलों पर जंगली जानवरों, कीड़ें–मकोड़ों, सुक्ष्म जीवों एवं बीमारियों के अन्य कारकों का प्रकोप भी होता है। संस्थान द्वारा बागवानी फसलों की सुरक्षा एवं संरक्षण की विकसित गई तकनीकियां को किसानों तक पंहुचाया जा रहा है, जो फसलों को बाहरी या आंतरिक कारकों से होने वाले नुकसान से बचाती है। इसमें मौसमी बीमारियों तथा कीड़ों के प्रकोप से बागवानी फसलों को बचाने के लिए उचित दवाइयों की समय सारणी एवं उनके उपयोग की विधियाँ तैयार की हैं जो बागवानी अपनाने वाले किसानों के लिए लाभदायक रहेंगी।

(उ) फलों की तुडाई एवं ग्रेडिंग के माप–दण्ड विकसित कर किसानों को उपलब्ध कराना:

किसान आज भी फसल उत्पादन एवं विपणन में अपनी प्रचलित पुरानी विधियों एवं तरीकों का ही प्रयोग करता है। वे अपनी खेती को न तो वैज्ञानिक तरीके से उगाते हैं और न काटतें, और विपणन करते है, जिससें उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ती है। संस्थान ने फल व सब्जियों की तुड़ाई, छंटनी, ग्रेडिंग, पैकिंग, रख–रखाव एवं विपणन के विभिन्न मानक व माप–दण्ड निर्धारित किये हैं। किसानों तक इन मापदण्डों को पंहुचाया जा रहा है ताकि वे अपनी फसल उत्पादों का बाजार प्रतिस्पर्दा में उचित मूल्य प्राप्त कर सके।

(ऊ) फल एवं सब्जियों के मूल्यसंवर्धन की तकनीक किसानों को उपलब्ध कराना :

साधारणतया, देखा यह जाता है कि जब फल व सब्जियों का उत्पादन अधिक हो जाता है तो किसानों को उनका उचित मूल्य नहीं मिलता है। दूसरी तरफ, फल व सब्जियां कृषि के ऐसे उत्पाद हैं जिनको किसान अपने स्तर पर बहुत समय तक सुरक्षित भी नहीं रख सकता क्योंकि अधिकतर फल व सब्जियाँ साधारण वातावरण में 2–3 दिन के अन्दर ही खराब हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में किसान के पास एक ही विकल्प बचता है और वह है "फल–सब्जियों का मूल्य संवर्धन"। अतः संस्थान ने किसानों की परिस्थितियों एवं भविष्य की समस्याओं को देखते हुए, शुष्क बागवानी में उगाये जाने वाले फलों एवं सब्जियों के मूल्य संवर्धन उत्पाद बनाने की तकनीकियां विकसित करने का कार्य किया और साथ में किसानों को भी इसका प्रशिक्षण व जानकारियां भी देने की व्यवस्था की है। इसके अन्तर्गत फल व सब्जियों के प्रमुख उत्पाद निम्नलिखित हैः–

सं.	फसल	उत्पाद जिनको बनाने की विधियों पर प्रशिक्षण या जानकारी दी जाती है
(अ)	**फल**	
1	आंवला	मुरब्बा, च्यवनप्राश, श्रेड्स, अचार, पाउडर, सूखे आंवले, ज्यूस, चटनी
2	खजूर	छुआरा, पिण्डखजूर, बिस्कुट, सब्जी, चटनी
3	बेलपत्र	ज्यूस, टॉफी, शेक
4	अनार	अनारदाना, ज्यूस
5	बेर	सूखे बेर, जैम, स्कैवश अचार
6	केर	अचार, सब्जी, चटनी
(ब)	**सब्जियाँ**	
1	काचरी	सूखी काचरी, पाउडर (कच चूर्ण), चटनी, अचार, सब्जी, गोटे
2	काकडिया	काकडिया के फोफले, सलाद, सब्जी, चटनी, पाउडर, मगजदाने, अचार
3	मतीरा	ज्यूस, सब्जी, मगजदाने, भुनेदाने
4	खेजड़ी सांगरी	सूखी सांगरी, अचार, सब्जी, पंचकुटा
5	टिण्डा	फोफले, सब्जी
6	ग्वारपाठा	ज्यूस, लड्डू, सब्जी, अचार
7	ग्वारफली	सूखी कली, सब्जी, अचार
8	गोंदा (लसोड़ा)	अचार, सब्जी

(ए) उच्च–तकनीक सूचना तंन्त्र का विकास कर किसानों तक पंहुचानाः

संस्थान, पूरे भारतवर्ष के लिए शुष्क बागवानी से सम्बन्धित सभी उन्नत तकनीक की जानकारी एवं उपलब्धता का प्रमुख सूचना केन्द्र का भी कार्य करता है। संस्थान ने शुष्क बागवानी की उच्च तकनीक सूचना केन्द्र की स्थापना की है जिसकी सेवा का विभिन्न संस्थाएं लाभ उठा रही है। किसानों को इस सूचना तंत्र से जोड़ा गया है। संस्थान में, किसानों को उनके तकनीक प्रश्नों का उत्तर एंव अन्य उन्नत तकनीको के बारे में समय–समय पर सूचना देने के उद्देश्य से एक कृषि विस्तार अनुभाग की स्थापना कर रखी है जो हमेशा किसानों की सेवा के लिए समर्पित रहता है।

(ऐ) उन्नत बीज एवं पौधरोपण सामग्री विकास कर, किसानों को उपलब्ध कराना :

संस्थान ने सुव्यवस्थित उच्च प्रौद्योगिक नर्सरी की स्थापना की है जिसमें शुष्क बागवानी के सभी फलवृक्षों जैसे बेर, आंवला, बेलपत्र, अनार, खेजड़ी, फालसा, लसोड़ा, नीबू, शहतूत आदि के प्रति वर्ष उन्नत किस्मों के हजारों पौधे तैयार किये जाते हैं और राजस्थान व अन्य राज्यों के किसानों को उपलब्ध कराये जाते है। इस प्रकार संस्थान ने शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों यथाः मतीरा, काकड़िया, काचरी, ग्वारफली, लौकी, खेजड़ी (सांगरी), सलाद ककड़ी आदि की 12 नई उन्नत किस्में विकसित की हैं जिनकी राज्यभर में भारी माँग है। संस्थान प्रतिवर्ष सब्जियों की उन्नत किस्मों के बीज तैयार करता हैं और किसानों, सरकारी व निजी संस्थाओं को उपलब्ध करवाता है। किसान इन उन्नत बीजों को बोकर 35,000 से 50,000 रू. प्रति हेक्टेयर से लाभ कमा रहे है। इन सब्जियों की उन्नत किस्म के फलों ने स्थानीय बाजारों के अलावा, जोधपुर, जयपुर तथा दिल्ली जैसे महानगरों की सब्जी मण्डियों में भी अपनी मांग बनाए रखी है।

2. किसानों को उन्नत तकनीकियों की जानकारी कराने, उनका ज्ञान बढ़ाने तथा तकनीक हस्तान्तरण के लिए कार्यक्रम आयोजित करना

यद्यपि, यह संस्थान आधारभूत रूप में एक अनुसंधान संस्थान है, फिर भी किसानों की उन्नत तकनीक हस्तान्तरण के लिए उच्च तकनीक प्रचार–प्रसार तंत्र स्थापित किया है, जो उन्हें शुष्क बागवानी की उन्नत तकनीकियों के बारे में जानकारी देने, शिक्षित करने तथा अपनाने में मदद करता हैं। किसानों के लाभ के लिए संस्थान द्वारा आयोजित किये जाने वाले प्रमुख कार्यक्रम निम्न प्रकार से हैः–

(क) कृषक प्रशिक्षण का आयोजन

(ख) कृषक भ्रमण का आयोजन

(ग) युवा कृषकों/छात्रों का भ्रमण और चर्चा

(घ) कृषि पर्यवेक्षकों/व्यवसायकों का भ्रमण और चर्चा–

(च) प्रक्षेत्र प्रदर्शन का आयोजन

(छ) तकनीक प्रदर्शनी का आयोजन

(ज) कृषक गोष्ठी एवं समूह–चर्चाओं का आयोजन

(झ) दूरभाष के माध्यम से प्रश्नोत्तरी एवं सुझाव

(ट) दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा समाचार पत्रों के माध्यम से तकनीकी ज्ञान का प्रसारण

(ठ) कृषकों के प्रक्षेत्रों का भ्रमण एवं तकनीकी सलाह

(ड) अनुसंधान–विस्तार–किसान–अंतराफलक बैठकें–

(ढ) किसान हितकर समूह/कमोडिटी हितकर समूह / स्वयं–सहायता समूह –

(त) प्रेक्षत्र नवोन्वेषण दिवस का आयोजन–

(थ) तकनीकी साहित्य उपलब्ध कराना

निष्कर्ष:

शुष्क बागवानी के विकास व उत्पादन क्षमता में स्थायित्व लाने का लक्ष्य पूरा करने में जल का वैज्ञानिक प्रबन्ध, विकृत भूमी का बहतर उपयोग, मृदा संरक्षण, जैव विविधता संरक्षरण, फसलों का विविधीकरण, उचित फसल/प्रजातियों का विकास व चुनाव, समनिवत पोषक तत्व प्रबन्ध, समन्वित कीट–व्याधि प्रबन्ध, उत्पाद मूल्य संवर्धन की तकनीकियों का विकास करना अति आवश्यक है। संयुक्त अनुसंधान, तकनीकी हस्तानान्तरण कार्यक्रम, किसान प्रशिक्षण, महिला प्रशिक्षण, अनुसंधान व हस्तानान्तरण कार्यक्रमों में किसानों की भागीदारी आदि शुष्क बागवानी के स्थाई विकास के लिए अति आवश्यक है।

शिवराम मीना
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान,
बीकानेर (राज.)

हिन्दी से किसी भारतीय भाषा को भय नहीं है !
यह सबकी सहोदर है !

–महादेवी वर्मा

मैं संसार की सब भाषाओं का सम्मान करता हूँ,
परन्तु, मेरे देश में हिन्दी का सम्मान न हो
यह मुझे सहन नहीं है !

–संत विनोबा भावे

स्वच्छ भारत अभियान और भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान का योगदान

स्वच्छता संयुक्त रूप से बहुत सारे घटकों द्वारा प्रभावित होने वाला शब्द है जो भौतिक, रासायनिक व जैविक घटकों से प्रभावित होती है एक व्यक्ति को स्वच्छता के संदर्भ में देखे तो वह व्यक्ति स्वच्छ कहलाता है जो शारिरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्णतया साफ सुथरा हो लेकिन आज के परिवेश को देखा जाए तो यह एक सोचना मात्र ही होगा कि कोई भी व्यक्ति/समाज या देश सभी घटकों से स्वच्छ हो सकता है।

स्वच्छ भारत अभियान को क्लीन इंडिया मिशन या स्वच्छ भारत अभियान भी कहा जाता है। यह एक राष्ट्रीय स्तर का अभियान है जो भारत सरकार द्वारा पिछड़े वैधानिक कस्बों व ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों में वैश्विक जागरूकता पैदा करना और सार्वजनिक स्वास्थ्य से जोड़ने के उद्देश्य से चलाया जा रहा है। इससे उनकी जीवनशैली की गुणवत्ता में सुधार व इससे जुड़े जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से समुदायों और पंचायती राज संस्थानों को प्रेरित करके स्थायी स्वच्छता का अभियान शुरू किया गया।

स्वच्छ भारत अभियान पूरे भारत में हमारे चारों ओर साफ–सफाई की बढ़ती हुई आवश्यकता को देखते हुए यह अभियान एक स्वर्णिम अवसर के रूप में करने के लिए हमें मिला है जिसमें भागीदार बन हम अपना कर्त्तव्य निभा सकते हैं। स्वच्छता अभियान में न सिर्फ स्वच्छता की ओर ध्यान दिया बल्कि ऐसे स्वच्छ भारत का निर्माण हो जिससे समाज में फैली हुई विभिन्न कुरीतियों का भी नाश संभव हो सके। स्वच्छता अभियान को बढ़ावा देने के लिए सरकार देशभर में फैले कचरे का उचित प्रबंधन करने के लिए कचरा पात्र व ठोस कचरे को दुबारा प्रयोग करने या रिसाइकिल करने के लिए प्रेरित करना व स्वच्छता और स्वास्थ्य के बारे में जानकारी लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाना और उसके प्रति जागरूकता लाने का कार्य मुख्य उद्देश्य के रूप में शामिल करना है। यह किसी एक व्यक्ति का व्यक्तिगत कार्य नहीं है बल्कि मिलकर किया जाने वाला कार्य है। इससे एक फायदा यह भी होगा कि जो आपसी द्वेष भावना धर्म या किसी अन्य किसी वजह से उत्पन्न हुई थी आपसी मेल मिलाप और समझ से मिटाया जा सकेगा।

सफाई केवल एक व्यक्ति या स्थान से जुड़कर नहीं बल्कि निकट भविष्य में अपने चारों ओर के वातावरण को स्वच्छ बनाने की सभी की जिम्मेदारी है। सिर्फ अभियान शुरू करना ही काफी नहीं है, परिणाम मायने रखता है। सिर्फ सरकार इसे सफल नहीं बना सकती सभी की भागीदारी उपयोगी साबित होगी। स्वच्छ वातावरण में स्वच्छ मन से अच्छे विचारों का समावेश होता है। अतः हम सभी प्रभावी रूप से इस आंदोलन का अनुसरण करे तो कुछ समय पश्चात् स्वच्छ भारत अभियान से पूरा देश में एक क्रांति के रूप में फैल जाएगा और इस परिवर्तन के प्रभाव से जो परिणाम होगा उससे हम अपने देश के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर सकते हैं। स्वच्छता कार्यम में भागीदारी को बढ़ाने के लिए कार्य योजना बनाकर पूरे मनोयोग से क्रियान्वित करने में जुट जाए जाएं तो अवश्यंभावी हमारा देश विकास की गति को चरम तक छू सकेंगें।

हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आजादी के आंदोलन के वक्त कहा था कि "स्वच्छता आजादी से अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रपिता ने एक सपना संजोया था कि हमारा देश आजाद होने के साथ एक निर्मल एवं स्वच्छता युक्त देश हो। इन्हीं विचारों को क्रियान्वित करने के लिए देश के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदीजी ने राष्ट्रपिता के 145 वें जन्मदिवस (2 अक्टूबर, 2014) पर स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत की। यह एक देश व्यापी अभियान है। जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक की भागीदारी होगी यह एक राजनैतिकता से स्वतंत्र अभियान है जो किसी एक दल या पार्टी का अभियान नहीं है जिसमें सभी लोग चाहे वो किसी भी धर्म के हों, अमीर, गरीब, बूढ़ा, जवान, बच्चे एवं महिलाएं शामिल होंगे।

प्रधानमंत्री के इस अभियान को सरकारी अमलीजामा पहनाने के लिए सरकार ने सभी मंत्रालय को निर्देशित किया कि इस अभियान को सफल बनाने के लिए वो उनके अधीन कार्यरत सभी विभागों, संस्थानों/स्वायतशासी निकायों, स्कूलों, कॉलेजो, अस्पतालों से पहल करके इस मिशन को कामयाब बनाए। इसी की अनुपालना में कृषि मंत्रालय से स्वच्छ भारत अभियान के निर्देश भारतीय कृषि

अनुसंधान परिषद् को मिलें व भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद मुख्यालय ने अधीनस्थ सभी संस्थानों को स्वच्छता अभियान को सफल बनाने के लिए आदेश दिये। भा.कृ. अनु.प. के आदेश/निर्देश दिनांक 10 जून, 2014 को हमारे संस्थान–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर को प्राप्त हुये इन निर्देश की अनुपालना में केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान ने अपने शत प्रतिशत प्रयास शुरू कर दिये।

भा.कृ.अनु.प. से दिनांक 10 जून, 2014 को अतिरिक्त सचिव, डेयर एवं सचिव, भा.कृ.अनु. परिषद् के हस्ताक्षर से प्रधानमंत्री द्वारा आदेशित निर्देश प्राप्त हुए जिसमें स्वच्छता से संबंधित 11 सूत्री बिन्दुवार कार्यवाही के निर्देश थे।

जिसकी अनुपालना में भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क बागवनी संस्थान, बीकानेर ने दिनांक 24.06.2014 को सभी संबंधित अनुभाग, विभागों, उपकेन्द्र व कृषि विज्ञान केन्द्रों को निर्देशित कर दिया व निर्देशों की अनुपालना की एक विस्तृत रिपोर्ट दिनांक 27.06.2014 तक अवश्य ही प्रस्तुत करने को कहा।

सभी ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना सहयोग देते हुए, उक्त रिपोर्ट समय पर प्रस्तुत कर दी।

- भा.कृ.अन.प. से दिनांक 24.09.2014 को स्वच्छ भारत अभियान में संस्थानों के अधिक कार्यरत सभी कृषि विज्ञान केन्द्रों को शामिल करने के निर्देश प्राप्त हुए थे। भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर से निर्देश तुरंत प्रभाव से कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल को पृष्ठांकित कर दिये और इसके संदर्भ में कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल ने स्वच्छता अभियान में सक्रिय रूप से भाग लेकर स्वच्छता अभियान में सफलतापूर्वक अपनी भागीदारी प्रदर्शित की ओर अभी भी प्रयासरत है।
- भा.कृ.अनु.प. से दिनांक 24.09.2014 को ही एक अन्य निर्देश प्राप्त हुए कि संस्थान परिसर में एवं इसके आसपास स्थित क्षेत्र, आवासीय कॉलोनियों में 25.09.2014 से एक स्वच्छता अभियान (संगोष्ठी) शुरू की जो लोगों में स्वच्छता की भावना जाग्रत करने के लिए अभिनव गतिविधियों को बढ़ावा देने के विचार लोगों में विकसित करे।
- उचित संदेश सभी लोगों तक जाए ऐसा करने के लिए संस्थान वेबसाइट व संस्थान फेसबुक पर जाग्रति फैलाई जावे।
- सभी संस्थान के कर्मचारी/अधिकारी स्वच्छता समय दिनांक 02.10.2014 को लेवे व इसका प्रिन्ट मिडिया में संदेश जाए।
- स्थानीय जनता को शामिल करने के लिए संस्थान पहल करे व इस कार्यक्रम को सफल बनाने में उनका भी सहयोग प्राप्त करे।

इन सभी बिन्दुओं को अमल में लाने/क्रियान्वित करने के लिए संस्थान का उच्च पदधारी अपनी सक्रिय भूमिका अदा करे। इसको पूर्णतया लागु करने के भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान के निदेशक ने दिनांक 26.09.2014 को स्वच्छ भारत अभियान के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के आयोजन की रूपरेखा बनाकर एक परिपत्र द्वारा सभी कार्मिकों के बीच परिचालित किया जिसमें संस्थान के विभिन्न स्थानों पर सफाई अभियान चलाने के निर्देश वर्णित थे और सभी तिथियों पर संस्थानों के निम्न कर्मचारी के लेकर उच्च अधिकारी तक शामिल होकर इस कार्यक्रम का सफल बनाया।

दिनांक 02.10.2014 को संस्थान परिसर के मुख्य गेट पर संस्थान के सभी कार्मिक स्वच्छता के संदर्भ में शपथ ग्रहण की कि वर्ष में सभी लोग एक सप्ताह में कम से कम 2 घंटे साफ–सफाई हेतु व्यतीत करेंगें।

- परिषद् के पृष्ठांकन दिनांक 29.06.2014 के तहत श्री रामदीन, प्रशासनिक अधिकारी को स्वच्छ भारत अभियान कार्यक्रम के लिए नोडल अधिकारी नामित किया जिन्होंने इस कार्यक्रम में चल रही संस्थान की सभी गतिविधियों से परिषद् को अवगत कराया।
- परिषद् के दिनांक 21.12.2014 के परिषद् के अनुसार संस्थान को वार्षिक व पंचवर्षीय एक्शन प्लान बनाने को कहा गया जिसकी अनुपालना में संस्थान के निदेशक महोदय ने एक समिति बनाई इस समिति ने संस्थान हेतु वार्षिक एवं पंचवर्षीय योजना बनाने को निर्देशित किया गया (18.12.2014)
- परिषद् के महानिदेशक से प्राप्त निर्देशों के अनुसार भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान में दिनांक 16.05.2016 से 31.05.2016 तक स्वच्छता पखवाड़ा मनाया गया। जिसमें विभिन्न कार्यक्रम रखे गये जैसे संस्थान के सभी कार्मिकों द्वारा परिसर हेतु पखवाड़े के दौरान हमेशा 2 घंटे श्रमदान किया गया व अन्य कार्यक्रम जैसे स्वच्छता जागरूकता या भाषण इत्यादि जिसकी रिपोर्ट परिषद् को प्रेषित की गई।

- दिनांक 29.09.2016 को प्राप्त निर्देशों के अनुसार दिनांक 02.10.2016 (रविवार) को स्वच्छता के संबंध में सुबह 8 से 10 बजे के बीच सफाई अभियान चलाया गया व 10.15 बजे के बाद स्वच्छता पर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी कार्मिकों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया इसकी अध्यक्षता संस्थान के प्रभारी निदेशक महोदय डॉ. बी. डी. शर्मा ने की।
- स्वच्छ भारत अभियान को अधिक कारगर बनाने के लिए संस्थान के निदेशक महोदय प्रो. (डॉ.) पी.एल. सरोज ने एक सात सदस्यों की समिति का पुनर्गठन किया तथा निर्देशित किया कि यह समिति सभी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर देश के माननीय प्रधानमंत्री श्रीमान नरेन्द्र मोदी द्वारा चलाये जा रहे इस अभियान को अधिक से अधिक प्रभावी ढ़ंग से संस्थान में लागू करने के लिए रूपरेखा व कार्यक्रम बनाए।
- दिनांक 10.10.2016 को प्राप्त निर्देशों के तहत भा. कृ.अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर ने दिनांक 16.10.2016 से 31.02.2016 तक एक पुनः स्वच्छता पखवाड़े का भव्य आयोजन किया गया। जिसमें सक्रिय रूप से संस्थान के सभी स्टॉफ ने भागीदारी दिखायी एवं इसमें विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम भी रखे गये जैसे प्रत्येक दिन 2 घंटे संस्थान परिसर में सफाई अभियान, भाषण प्रतियोगिता का आयोजन, स्वच्छता पर एक विशिष्ट अतिथि का अभिभाषण, योग कार्यक्रम, संस्थान के सभी कार्मिकों का स्वास्थ्य निरीक्षण इत्यादि।

इस प्रकार भारत को स्वच्छ, निर्मल एवं खूबसूरत बनाने वाले इस देशव्यापी अभियान को सफल बनाने के लिए राजस्थान राज्य में स्थित यह भा.क.अनु.पं. – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर सक्रिय रूप से भागीदार बनकर कार्यक्रम आयोजित करवा रहा है एवं 2019 तक निश्चित रूप से इस अभियान को चलाकर भारत देश के विस्तृत पहल पर अपनी चमक बिखेरेगा।

स्वच्छ वातावरण ही खुशनुमा माहौल का जनक है।

रामदीन
प्रशासनिक अधिकारी
भाकृअनुप–केशुबासं, बीकानेर

परिषद् गीत

जय-जय कृषि परिषद् भारत की,
सुखदप्रतीक हरित भारत की ।

कृषिधन पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध मत्स्य फल यंत्र सुवर्धन।

वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण।

सस्य श्यामला छवि भारत की,
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक।

हर पथ पर है मित्र कृषक की,
शिक्षा शोध प्रसार सकल तक।

आशा स्वावलम्बित भारत की,
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।
जय-जय कृषि परिषद् भारत की।

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर–334006 (राजस्थान)